हिन्दी

प्रत्यक्षशारीर

महामहोपाध्याय कविराज श्रीगणनाथ सरस्वती,
विद्यासागर, [illegible], प्राणाचार्य,
एम्. ए., एल्. एम्. एस्.
महोदय कृत
'प्रत्यक्षशारीर' ग्रन्थ का
हिन्दी अनुवाद

प्रथम भाग

[अस्थि, सन्धि और स्नायुओं का वर्णन]

मूल्य — रु० ४)

हिन्दी

प्रत्यक्षशारीर

निखिल भारतीय वैद्यसम्मेलन और आयुर्वेद विद्यापीठ के भूतपूर्व सभापति और बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेदिक फेकल्टि के डीन (शिक्षा परिषत् के अध्यक्ष)

महामहोपाध्याय कविराज श्रीगणनाथ सरस्वती,

विद्यासागर, वैद्यावतंस, प्राणाचार्य्य,

एम्. ए., एल्. एम्. एस,

महाशय कृत

संस्कृत प्रत्यक्षशारीर का

हिन्दी अनुवाद।

प्रथम भाग

(अस्थि-सन्धि-स्नायु वर्णन)

कल्पतरु आयुर्वेद भवन—कलकत्ता से

कविराज श्रीसुशीलकुमार सेन शर्म्मा,

भिषगाचार्य्य, एम्, एस्-सि द्वारा

प्रकाशित। सं० १९८०

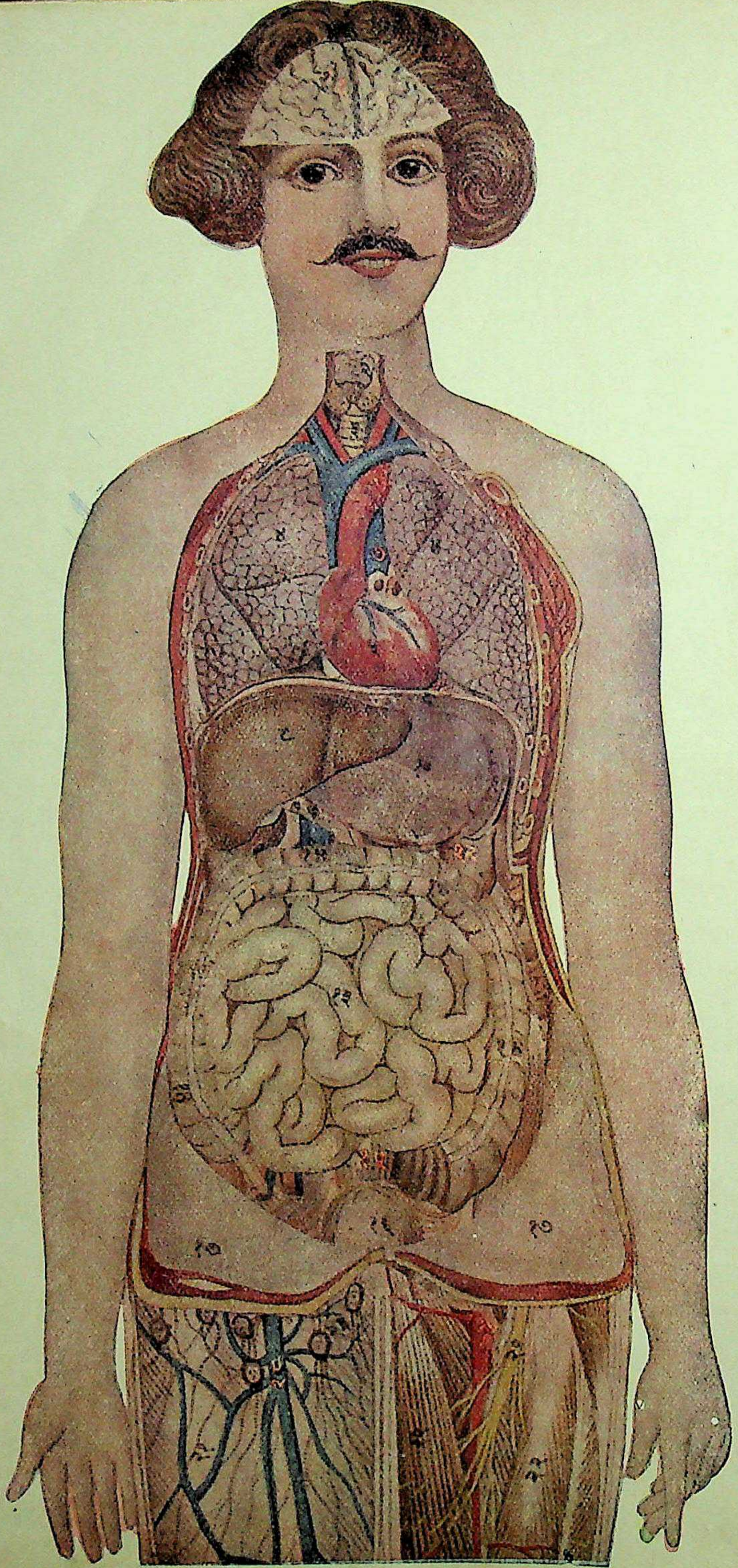

प्रथम भाग की विषय सूच।

	पत्रांक
प्रथम अध्याय।	
शारीरोपक्रमणीय ...	१
द्वितीय अध्याय।	
शारीरकी परिभाषायें ...	३
त्वक् ...	४
कला ...	४
पेशी ...	४
स्नायु ...	५
सिरा ...	६
धमनी ...	६
रसायनी ...	६
नाडी ...	६
स्रोत ...	७
धातु ...	७
रस ...	७
रक्त ...	७
[illegible]का ...	७
[illegible] ...	८
[illegible] ...	८
वसा ...	८
अस्थियां ...	८
मज्जा ...	८
शुक्र ...	८
आशय ...	८
शिरोगुहा ...	८
उरोगुहा ...	९
उदरगुहा ...	९
ज्ञानेन्द्रिय ...	१०
कर्ण ...	१०
नेत्र ...	१०
त्वचा ...	१०
रसना ...	१०
घ्राण ...	१०
कर्मेन्द्रिय ...	१०
वाक् ...	१०
पाणि ...	१०
पाद ...	१०
पायु ...	१०
उपस्थ ...	१०
नव द्वार ...	१०
मर्म ...	११
शिरोग्रीव के उपाङ्ग ...	११
मध्यभागके उपाङ्ग ...	११
शाखाओं के उपाङ्ग ...	११
तृतीय अध्याय (अस्थिखण्डारम्भ)।	
अस्थि सामान्य वर्णन ...	१२
अस्थि सामान्य स्वरूप— उपादान, कलायें, संघात, पोषण, वृद्धिक्रम, आकार भेद ...	१३।१४
अस्थि विभाग ...	१२
अस्थियों की संख्या—प्राचीन और नवीन मत का समन्वय ...	१४
अस्थियों की गणना ...	१५
शाखास्थियां ...	१५
मध्यशरीर की अस्थियां ...	१५
शिर की अस्थियां ...	१६
चतुर्थ अध्याय।	
अस्थियोंका विशेष वर्णन ...	१७

चित्र-व्याख्या ।

१ । मस्तिष्क
२ । स्वरयन्त्र
३ । श्वासपथ
४, ४ । दोनों फुस्फुस
५ । हृदय
६ । महाधमनी
७ । फुस्फुसगा धमनी
८ । महाप्राचीरिका नामकी पेशी
९ । यकृत्
१० । आमाशय
(उसके पृष्ठ में दृश्य सर्पाकार
अग्न्याशय है)
११ । प्लीहा
१२ । वृक्क (वाम)
१३ । क्षुद्रान्त्र
१४-१४-१४ । वृहदन्त्र (मलाशय)
१५ । उत्तर गुद
१६ । वस्ति (मूत्राशय)
१७ । उदरच्छदा कला
(काट कर दिखाया गया)
१८ । सिरा
१९ । धमनी
२० । नाड़ी
२१ । रसायनी
२२ । पेशी
२३ । रसायनियों के मूलस्थ
रस ग्रन्थियां

विशेष लक्षण—सिरा नीला, धमनी लाल, नाड़ी पीली, रसायनी पतली माला के आकार की दीखती हैं ।

[इनका विशेष वर्णन द्वितीय भाग आशय वर्णन में देखिये ।]

———

	पत्रांक
(चतुर्थ अध्याय—प्रथम परिच्छेद)	
शाखाओं की अस्थियां ...	१७
सक्थि की अस्थियां—	
पादाङ्गुलिओं की अस्थियां (Phalanges) ...	१८
पादांगुलि मूलशलाकायें (Matatarsus) ...	१८
पाद कूर्चास्थियां (Trasus) ...	२०
जङ्घास्थि (Tibia) ...	२२
अनुजङ्घास्थि (Fibula) ...	२३
जान्वस्थि (Patella) ...	२४
ऊर्वस्थि (Femur) ...	२५
बाहुकी अस्थियां—	
करांगुलि नलक (Phalanges)	२७
करांगुलि मूलशलाकायें (Metacarpus) ...	२८
कर की कूर्चास्थियां (Carpus)	२६
बहिःप्रकोष्ठास्थियां (Radius)	३१
अन्तःप्रकोष्ठास्थि (Ulna) ...	३२
प्रगण्डास्थि (Humorus) ...	३४
(द्वितीय परिच्छेद)	
मध्यकाय की अस्थियां ...	३७
पृष्ठवंश (Vertebral Column)	३७
कसेरुकाओं के सामान्य लक्षण	३७
ग्रीवा कसेरुकायें ...	३६।४०
पृष्ठ कशेरुकायें ...	४१।४२
कटि कशेरुकायें ...	४३
त्रिकास्थि (Sacrum) ...	४३
अनुत्रिकास्थि (Coccyx) ...	४४
श्रोणिफलक (Hip-Bone) ...	४५
जघन कपाल ...	४
कुकुन्दरास्थि ...	४७
भगास्थि ...	४८
अंसफलक (Scapula) ...	४६
अक्षकास्थि (Clavicle) ...	५२
उरःफलक (Sternum) ...	५३
पर्शुकायें—(Ribs) ...	५५
उरःपञ्जर (Thorax) ...	५८
(तृतीय परिच्छेद)	
शिरोऽस्थि विज्ञान ...	५८
शिरः सम्पुटास्थियां (Cranium)	५८
पश्चिम कपाल (Occipital Bone)	५६
पार्श्वकपाल (Parietal Bones)	६३
पुरःकपाल (Frontal Bone)	६५
शङ्खास्थियां (Temporal Bones)	६८
जतूकास्थि (Sphenoid Bone)	७२
झर्झरास्थि (Ethmoid) ...	७५
कपालचक्रक (Wormian Bones)	७७
मुखमण्डलास्थियां (Facial Bones)	७७
नासास्थियां (Nasal Bones)	७७
ऊर्ध्व हन्वस्थियां (Maxillæ)	७८
अश्रु पीठास्थि (Lachrymal B.)	८१
गण्डास्थियां (Malar Bones)	८१
तालवस्थियां (Palate Bones)	८४
शुक्तिकास्थियां (Inf. Conchæ B.)	८५
सोरिकास्थि (Vomer) ...	८६
अधोहन्वस्थि (Mandible) ...	८७
कण्ठिकास्थि (Hyoid) ...	६१
समग्र करोटि दृश्य विशेष ...	६२
करोटि पटल (Roof of Skull)	६२

पत्रांक

करोटि भूमि (Base of Skull) ... ९५

करोटि पीठ (Upper Surf. of Do) ९५

करोटि तल (Under Surf. of Do) १००

करोटि पक्ष (Side of Skull) १०५

करोटिका सम्मुखभाग (मुखमण्डल) १०७

नेत्र गुहा (Orbit) ... ११०

नासा गुहा (Nasal Cavity) ११२

समग्र करोटिदृश्य त्वाच भाग ११६

सन्धि-स्नायु खण्ड ।

प्रथम अध्याय ।

सन्धि-स्नायु सामान्य विज्ञान ... ११७

द्वितीय अध्याय ।

सन्धि विशेष विज्ञान ... १२२

अधोहनु सन्धान ... १२३

शिरोग्रीव सन्धि ... १२४

पृष्ठवंश की सन्धियां ... १२८

पर्शुका पृष्ठसन्धियां ... १३०

पत्रांक

पर्शुका पूर्वसन्धि ... १३२

अक्षकोरः सन्धि ... १३४

श्रोणिचक्र की सन्धियां ... १३४

शाखा सन्धियां ... १३७

ऊर्द्ध्व शाखा की सन्धियां —

अंस सन्धि ... १३७

कूर्पर सन्धि ... १४०

प्रकोष्ठान्तरीय सन्धि ... १४१

मणिबन्ध सन्धि ... १४२

करकूर्चान्तरीय सन्धियां ... १४४

करतल सन्धियां ... १४५

करांगुलि सन्धियां ... १४६

निम्न शाखा की सन्धियां —

वंक्षण सन्धि ... १४६

जानु सन्धि ... १४७

जङ्घान्तरीय सन्धि ... १५०

गुल्फ सन्धि ... १५१

पादकूर्चान्तरीय सन्धियां ... १५२

पादतल सन्धियां ... १५४

पादांगुलि सन्धियां ... १५४

चित्र-सूची ।

पुरश्चित्र (त्रिवर्ण)— आरम्भ में

		पत्रांक
कङ्काल चित्र (प्रथम)	...	१४
कङ्काल चित्र (दूसरा)	...	१६
पादास्थियां	...	१८
जङ्घास्थियां	...	२२
जान्वस्थि	...	२४
ऊर्वस्थि	...	२५
हाथ की अस्थियां	...	२७
प्रकोष्ठास्थियां	...	३१
प्रगण्डास्थि	..	३४
पृष्ठवंश	...	३७
पृष्ठकशेरुका	...	३८
ग्रीवाकशेरुका	...	३६
चूड़ावलया	...	३६
दन्तचूड़ा	...	४०
महाकण्टकिनी	...	४१
पृष्ठकशेरुका	...	४१
विशिष्ठ पृष्ठकशेरुका	...	४२
त्रिकास्थि	...	४३
अनुत्रिकास्थि	...	४४
श्रोणिफलक	...	४६
अंसफलक	...	५०
अक्षकास्थि	...	५२
उरःफलक और उपपर्शुका	...	५४
पर्शुका	...	५६
विशिष्ट पर्शुका	...	५७
करोटि	...	५६
पश्चिम कपाल (पुरस्तल)	...	६०
पश्चिम कपाल (पृष्ठतल)	...	६२
पार्श्व कपाल	...	६४
पुरःकपाल (वहिस्तल)	...	६६
पुरःकपाल (अन्तस्तल)	...	६७
शङ्खास्थि (वहिस्तल)	...	६६
शङ्खास्थि (अन्तस्तल)	...	७०
जतूकास्थि	...	७३
झर्झरास्थि	...	७६
नासास्थि	...	७७
उर्द्ध्व हन्वस्थि (वहिस्तल)	...	७८
उर्द्ध्व हन्वस्थि (अन्तस्तल)	...	७६
अश्रु पीठास्थि	...	८१
गण्डास्थि	...	८२
तालवस्थि	...	८४
सीरिकास्थि	...	८६
अधोहन्वस्थि	...	८८
कण्ठिकास्थि	...	६१
करोटि पटल (छोटे वच्चेका)		६३
करोटि भूमि का ऊर्द्ध्व तल	...	६६।६७
करोटि तल	...	१०२।१०३
करोटि पक्ष	...	१०६
मुखमण्डल (दक्षिणार्द्ध)	...	१०८
नासागुहा	...	११४

	पत्रांक		पत्रांक
अधोहनु सन्धि ...	१२३	कूर्पर सन्धि ...	१४०
शिरोग्रीव सन्धि (सामने से)	१२५	मणिबन्ध सन्धि ...	१४३
शिरोग्रीव सन्धि (पीछे से)	१२६	वंक्षण सन्धि ...	१४७
पर्शुका पृष्ठ सन्धि ...	१३१	जानु सन्धि ...	१४८
पर्शुका और उर की सन्धि ...	१३३	जानुसन्धिके अभ्यन्तर भाग ...	१४९
श्रोणिचक्र सन्धि ...	१३५	गुल्फ सन्धि ...	१५१
अंस सन्धि ...	१३८	पादतल सन्धि ...	१५३

प्रकाशक का निवेदन।

अनेक छात्रों की प्रार्थना और अध्यापकों के अनुरोध से "प्रत्यक्षशारीर" का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जाता है। ग्रन्थकार महामहोपाध्याय जी के शारीरिक अस्वस्थता और समयाभाव के कारण यह अनुवाद दूसरे से कराया गया है। परन्तु इसका संशोधन उन्होंने स्वयं ही यथाशक्ति बड़े परिश्रम से कर दिया है। हमें—खेद है कि—हमारी प्रूफ देखने की त्रुटि से कहीं कहीं वर्णाशुद्धियां रह गयी हैं, जिनको पाठक कृपा करके शुद्धिपत्र देख कर सुधार लेंगे। यदि और कोई अशुद्धि या असंलग्नता अध्यापकों की दृष्टि में आवे तो वे लोग कृपा करके हमें सूचना दें ताकि द्वतीयावृत्ति में उनका यथासम्भव सुधार कर दिया जाय।

प्रत्यक्षशारीरका संस्कृत उपोद्घात एक नवीन गवेषणापूर्ण अलग ही ग्रन्थ कहा जा सकता है। आयुर्वेद के इतिहास के सम्बन्ध में यह ग्रन्थ आधुनिक लेखों का प्रधान उपजीव्य और आधार है। उसका सम्पूर्ण हिन्दी अनुवाद करने से ग्रन्थ द्विगुण हो जायगा, इसलिये आगे इसका संक्षिप्त सारांश मात्र दिया जाता है। उसकी आलोचना से स्पष्ट प्रतीत होगा कि वारंवार राज्य विप्लवादि कारण से आयुर्वेद की प्राचीन संहितायें—विशेषतः उनके शारीरांश—कहां तक नष्ट हो चुके हैं, और वर्तमान सुश्रुत चरक आदि प्रतिसंस्कृत ग्रन्थों के छोटे छोटे चार पांच अध्यायों में जो कुछ शारीरवणन मिलता है, वह कहांतक असम्पूर्ण और (कहीं कहीं) असंलग्न वातों से भरा है। नागार्जुनादि वौद्ध आचार्यों ने दृढ़ वल आदि पण्डितों ने (जो कि स्वयं शव व्यवच्छेद करके शारीर वस्तुओं को प्रत्यक्ष नहीं देख सके) सुश्रुतादि का 'प्रतिसंस्कार' अर्थात् जीर्णोद्धार और आपूरण किया था, यह प्रमाण-सिद्ध है। इसलिये दृढ़ता पूर्वक कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में दीखने वाली त्रुटियां प्राचीन महर्षियों की नहीं हैं। ऐसे सिद्धान्त करने का और भी हेतु यह है कि अथर्ववेद आदि आयुर्वेद के मूल ग्रन्थों में जो जो विषय ठीक मिलते हैं, उनके विरुद्ध कई वातें वर्तमान सुश्रुत में दीखती हैं, और अथर्ववेद तथा तन्त्र ग्रन्थों में वर्णित गवीनी (Ureters), नाड़ीतन्त्र (Nervous System) आदि अनेक विषय वर्तमान सुश्रुत में नहीं दीखते हैं। (इन वातों के दृष्टान्त संस्कृत उपोद्घात में देखिये।)

परन्तु वैद्यों को यथार्थ प्रत्यक्षदृष्ट शारीर अवश्य सीखना चाहिये—ऐसा उपदेश सुश्रुत और चरक में स्पष्ट है यथा :—

"शरीरे चैव शास्त्रे च दृष्टार्थः स्याद् विशारदः।
दृष्टश्रुताभ्यां सन्देहमवापोह्याचरेत् क्रियाः॥"

"प्रत्यक्षतश्च यद् दृष्टं शास्त्रदृष्टञ्च यद् भवेत्।
समासत स्तदुभयं भूयो ज्ञानविवर्द्धनम्॥"

(सुश्रुत० शारीर० ६ अ०)

"प्रत्यक्षानुमानोपमानागमैरुच्यमानमुपधारय।"

(सुश्रुत० सूत्र० १ अ०)

"शरीरं सर्वदा सर्वं सर्वथा वेद यो भिषक्।
आयुर्वेदं स कात्स्न्र्येन वेद लोक सुखप्रदम्॥"

(चरक० शारीर० ६ अ०)

इन वातों से यही सिद्ध होता है कि शारीर विषयों में यदि प्रत्यक्षविरुद्ध वातें मिल जांय तो उनको छोड़कर प्रत्यक्षसिद्ध विषयों को ही ग्रहण करना चाहिये। ऐसी अवस्था में यह कैसे सम्भव है कि महर्षि लोग स्वयं ही प्रत्यक्षविरुद्ध और असंलग्न वातों को लिखकर अपने ग्रन्थों को कलङ्कित करेंगे? इसी लिये "प्रत्यक्षशारीर" ग्रन्थकार का कथन है कि—

"प्राचां विरोध इह नास्ति, कुतोऽथ भाति,
प्रत्यक्षवस्तुविषये सहनीय एष:।
आर्षे निवन्धृशतदुष्टवचोभिमृष्टे
शास्त्रेऽपि शस्यतुषभेदविदो विदः स्युः॥"

अर्थात्—"इस ग्रन्थ में प्राचीनों का विरोध नहीं है। यदि कहीं विरोध सा दिखाई पड़े तो प्रत्यक्ष वस्तु ओंके विषय में उसका सहन करना चाहिये, क्यों कि प्राचीन आर्ष शास्त्र अनेक निवन्धकारोंके (तथा प्रतिसंस्कारकों के) भ्रान्त वाक्यों से कण्टकित हो रहा है, उसमें शस्य और तुष का भेद शारीर के अभिज्ञ पण्डित लोग अवश्य समझ लेंगे।"

इस प्रसङ्ग में यह कहना उचित होगा कि इस ग्रन्थ में शारीर संज्ञाओं का प्रयोग किस प्रकार से किया गया है। इस ग्रन्थकी संज्ञायें कुछ कुछ प्राचीन

और अधिक संख्यामें नवीन हैं। प्राचीन संज्ञाओं का व्यवहार करने में कठिनता यह है कि—कई संज्ञाओंका व्यवहार वर्तमान—सुश्रुतादि ग्रन्थ में कुछ सुस्पष्ट और कुछ अत्यन्त अस्पष्ट हैं। दृष्टान्त यथा—"पेशी", "स्नायु" और "कला" शब्दों का व्यवहार प्रायः स्पष्ट है, कहीं कहीं अस्पष्ट है। "सिरा" और "धमनी" पदों कासुश्रुत में निरंकुश प्रयोग देखा जाता है, परन्तु शास्त्रार्थ संवाद करने से इन पदों के यथार्थ अर्थका पता लग जाता है।

अथर्ववेद में, उपनिषदों में और तन्त्रग्रन्थों में "गवीनी", "नाड़ी" आदि संज्ञायें मिलती हैं, इनका अर्थ उन ग्रन्थों में स्पष्ट है। इस लिये "प्रत्यक्ष-शारीर"-ग्रन्थकार ने अपने ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय में शारीर की प्रधान प्रधान संज्ञाओं के विषय में "अस्मिन् शास्त्रे" कह कर अर्थ का निरोध (Restriction of meaning) करके उन अर्थोंको स्पष्ट दिखलाया है। अतः किसी किसी प्राचीन संज्ञाओं के व्यवहरा के विषय में जो लोग व्यर्थ विवाद उठाते हैं, उन को स्मरण रखना चाहिये कि इस ग्रन्थ में "सिरा" "धमनी" और "नाड़ी"—इन तीनों पदों का व्यवहार—"प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति" इस न्याय से "अस्मिन् शास्त्रे" कह कर अर्थ विशेष में निरुद्ध कर दिया है। और 'कला,' 'पेशी', 'स्नायु',—इन पदों का व्यवहार प्राचीनों के मतानुसार प्रधान अर्थ में परिभाषित कर दिया गया है। प्रत्यक्ष शारीरके परिशिष्ट 'शारीर मीमांसा' प्रकरण में इन बातों की पूर्ण मीमांसा भी की गई है।

नवीन संज्ञाओं के विषय में यही वक्तव्य है कि ग्रन्थकार ने सर्वत्र निरर्थक और कठोर संज्ञाओं का वर्जन करके सार्थक और श्रुतिमधुर संज्ञाओं का निर्माण किया है, जिनका स्मरण रखना शिष्यों के लिये बहुत सुगम है।

प्रत्यक्ष दृष्ट शारीर का सम्यग् वर्णन थोड़े शब्दों से करना अत्यन्त कठिन है। अङ्गरेजी आदि भाषाओं में शारीर के बहुत बड़े बड़े ग्रन्थ मिलते हैं, ऐसे प्रत्येक ग्रन्थ प्रत्यक्षशारीर के चतुर्गुण या अष्टगुण आकार के हैं। वैद्यों के लिये वैसे विपुल-विस्तर ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक नहीं है। पक्षान्तर में अतिसंक्षेप करने से वर्णित विषय अत्यन्त अस्पष्ट और दुर्ज्ञेय होता है। इसलिये ग्रन्थकार ने यथोचित विषय संक्षेप करके और यथासम्भव प्राचीन और नवीन शारीर का समन्वय करके, प्रधानतः प्राचीन के आधार पर और प्राचीन शैली से इस ग्रन्थ का निर्माण किया है। इस ग्रन्थ के निर्माण में उनको कितना श्रम हुआ है सो

ग्रन्थकार लोग ही जान सकते हैं। इस ग्रन्थ में प्रत्यक्ष के अनुकल्प रूप अनेक उत्तमोत्तम चित्र भी दिये गये हैं, जिनको बनवाने में बहुत श्रम और अर्थव्यय हुआ है।

शेष में निवेदन है कि किसी—शारीर ग्रन्थ का मुद्रण जब तक कि अनेक आवृत्ति नहीं हो जाय, तब तक सर्वथा अशुद्धि वर्जित नहीं हो सकता है। इसलिये असम्भव नहीं है कि इस प्रथम आवृत्ति में कहीं कहीं भाषागत या विषयगत दोष कुछ रह गये हों। इस लिये पहिले ही पण्डितों से प्रार्थना कर चुके।

प्रत्यक्षशारीर परिभाषा और शारीर मीमांसा पृथग् ग्रन्थकार से छपायी जा रही हैं। कहीं सन्देह होने पर विद्वान् पाठक उनको अवश्य देखने की कृपा करें। इति—

सं १९८७,
पौष कृष्णा दशमी,
कलकत्ता।

विदुषामाश्रवस्य
श्रीसुशीलकुमार शर्मणः।

प्रत्यक्षशारीरम्।

प्रथम अध्याय

= शारीरोपक्रमणीय =

शरीर मन और आत्मा[1] के संयोग का नाम पुरुष है। पुरुष के साथ दुःखदायी अवस्थाओं के संयोग होनेसे व्याधियां होती हैं। यह संयोग दो प्रकार का है। यथा—शरीर के सम्बन्ध से और मन के सम्बन्ध से। अतः व्याधियां भी दो प्रकार की हैं, यथा—शारीर और मानस। इनमें शारीरिक व्याधियां शरीर सम्बन्धित उपायों से शान्त हो जाती हैं, और मानसिक व्याधियां स्नानादि शारीरिक उपायों से एवं मनकी एकाग्रता, मधुर वाक्य आदि मानसिक चिकित्सा के द्वारा शान्त होती हैं। यह दूसरे उपाय भी शरीर के द्वारा[2] ही प्रयुक्त होते हैं। अतः रोगों की एवं चिकित्सा की अधिष्ठानभूमि यह शरीरही है। इस कारण वैद्य के लिये इसका ज्ञान आवश्यक है। कहा भी है—"शरीरविचयः शरीरोपकारार्थमिष्यते भिषग् विद्येयम्। ज्ञाते हि शरीरतत्वे शरीरोपकारकेषु भावेषु ज्ञानमुत्पद्यते। तस्मात् शरीरविचयं प्रशंसन्ति कुशलाः।" (च० शा० ६ अ०)

अर्थात्—"शरीर की रक्षा के लिये शरीर का ज्ञान आवश्यक है। कारण—शरीर के ज्ञान होने पर ही शरीर के लिये हितकारी पदार्थों का ज्ञान हो सकता है। अतः पण्डित लोग शारीर ज्ञान की प्रशंसा करते हैं।"

यह शरीर गर्भाधान[3] कालीन माता पिता के शारीरिक एवं मानसिक भावों से भावित शुक्रशोणित के संयोग से उत्पन्न होकर क्रमशः कलल (मांस पिण्ड) आदि अवस्थाओं में से परिणत होता है। यही शरीर रस से लेकर शुक्र पर्य्यन्त सब धातुओं का तथा अनेक आशय-सिरा-धमनी आदि का आधार बन कर प्राणों को धारण करता है। प्राण शरीर का ही आश्रय करके रहते हैं। इसलिये प्राणों की रक्षा के लिये शरीर का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

इस शरीर को समझने के लिये दो प्रकार के साधन हैं। एक बाह्य और दूसरे आभ्यन्तरिक। बाह्य साधन पांचो ज्ञानेन्द्रिय (विशेषतः आंख) और उनके सहायक नाना प्रकार के यंत्र हैं। इनके द्वारा जीवित या मृत शरीर से ज्ञान प्राप्त किया जा

---

१ "सत्त्वमात्मा शरीरञ्च त्रयमेतत् त्रिदण्डवत्। लोकस्तिष्ठति संयोगात्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्।" (चरक० १ अ) २ यथा "समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः। संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।" (गीता) ॥ ३ गर्भाधान के समय माता पिता के आन्तरिक भाव जिसप्रकार के होते हैं, वैसे ही गर्भ के बनते हैं।

सकता है। दूसरा साधन दिव्यज्ञान से दीप्त योगियों से ही प्रयुक्त होना सम्भव है, जो कि स्थूलेन्द्रियों के विना ही ज्ञानचक्षु द्वारा[1] सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु का दर्शन कर लेते हैं। अतः हम जैसे व्यक्तियों के लिये तो प्रथम साधन ही ज्ञान का प्रधान उपाय है। कहा भी है—

"तस्मात्समस्तगात्रमविषोपहतमदीर्घव्याधिपीडितमवर्षशतिकं निःसृष्टांत्रपुरीषं पुरुषमवहन्त्यामापगायां निबद्धं पञ्जरस्थं मुञ्ज-वल्कल-कुश-शणादीनामन्यतमेना-वेष्टिताङ्गमप्रकाशे देशे कोथयेत्। सम्यक् प्रकुथितश्चोद्धृत्य देहं सप्तरात्रादुशीर-वाल-वेणु-वल्कलकूर्चीनामन्यतमेन शनैः शनैरवघर्षयंस्त्वगादीन् सर्वानेव वाह्याभ्यन्तराङ्गप्रत्यङ्गविशेषान् यथोक्तान् लक्षयेच्चक्षुषेति॥" (सु० शा० ६ अ०)

अर्थात्—"जो पुरुष विष या दीर्घ व्याधि से न मरा हो, एवं जिसकी अवस्था सौ वर्ष से कम की हो, ऐसे पुरुष के मृत शरीर को अन्त्र और मल से रहित कर के मूंज-वल्कल-कुश-सन आदि किसी एक से सर्वाङ्गवेष्टित करके स्थिर नदी के जल में बांध कर अंधेरे में गलाना चाहिये। जब सम्यक् प्रकार से गल जावे, तब उसे आठवें दिन निकालकर खस, वाल, वांस, वल्कल—इनमें से किसी एक की कूर्ची से धीरे धीरे रगड़ते हुवे वाहर अन्दर के त्वचा आदि सब अंग प्रत्यंगों को विशेष रूप में आंखो से देखना चाहिये[2]।" (सुश्रुत)

शरीर शास्त्र के विद्वान् इस शरीर को "षडङ्ग[3]" (छै अंगोवाला) कहते हैं। छ अंग—यथा दोनों हाथ दोनों पांव—यह चार शाखायें, मध्यशरीर, और शिर।

इनमें उठाने, रखने, पकड़ने एवं चलने आदि क्रियाओं के लिये शाखायें हैं। रक्तसंचार, श्वास, मूत्र निर्म्माण और पाचन आदि क्रिया करने के वाले आशयों का आधार स्थान मध्यभाग है, जो कि वृक्ष के प्रकाण्ड की भांति शिर और शाखाओं का आश्रय है।

---

१ इस बात को अन्ध विश्वास नहीं समझना चाहिये। ईश्वर की कृपा से ग्रन्थकार को इसके कई प्रत्यक्ष प्रमाण मिल चुके हैं। हिप्नोटिज्म (Hypnotism) की आगे की अवस्था क्लेयरभौयन्स (Clairvoyance) है, जब कि दिव्य दृष्टि का परिचय स्पष्ट मिलता है। २ यह प्राचीन शवच्छेद की विधि अस्थि-सन्धि-स्नायु तथा नाड़ीयां देखने के लिये सुगम होने पर भी आज कल मनोरम नहीं समझी जायेगी। परन्तु प्राचीनकाल में शवच्छेद की आवश्यकता को आचार्य लोग अच्छी प्रकार समझते थे, इसका प्रमाण स्वरूप यह वचन उद्धृत किया गया है। ३ "शाखाश्चतस्रो मध्यं पञ्चमं षष्ठं शिरश्चेति।" (सु० शा० ५ अ)

श्वास और अन्न का द्वार तथा मुखमण्डल की आधारभूमि, एवं संज्ञावहा और चेष्टावहा नाड़ीयों[1] की, और ज्ञानेन्द्रियों की अधिष्ठानभूमि शिर है। मस्तिष्क का आधार एवं ज्ञान का स्थान होने से इसको "उत्तमांग"[2] कहते हैं, क्योंकि मस्तिष्क ही सब प्रकार के ज्ञानों का खजाना है—परीक्षक लोग ऐसा मानते हैं।

संक्षेप से षडङ्ग शरीर का यह बीजरूप परिचय है, विस्तार से इसके आगे आयेगा। प्राचीनों ने कहा है—

"शरीरं सर्वदा सर्वं सर्वथा वेद यो भिषक्।
आयुर्वेदं स कात्स्र्न्येन वेद लोकसुखप्रदम्" ॥ (च० शा० ६ अ०)
"शरीरे चैव शास्त्रे च दृष्टार्थः स्याद्विशारदः।
दृष्टश्रुताभ्यां संदेहमवापोह्याचरेत् क्रियाः ॥
प्रत्यक्षतो हि यद् दृष्टं शास्त्रदृष्टञ्च यद् भवेत्।
समासतस्तदुभयं भूयो ज्ञानविवर्द्धनम्" ॥ (सु० शा० ६ अ)

भावार्थ—जो चिकित्सक सारे शरीर को सम्पूर्णरूप से सब समय जानता है, वही मनुष्यों के सुख देने वाले आयुर्वेद को पूर्ण रूप से समझता है। जिसने कि शरीर और शास्त्र का ज्ञान भली प्रकार प्राप्त कर लिया है, वही निपुण होता है। इसलिये ग्रन्थोक्त बातें प्रत्यक्ष रूप में देखकर निःसन्देह होकर चिकित्सा कार्य आरम्भ करना चाहिये। प्रत्यक्षतः आंखो से देखना और शास्त्र में भी उन्हीं विषयों का अवलोकन करना—इन दोनों के संमेलन से ज्ञान की विशेष वृद्धि होती है।

द्वितीय अध्याय।

=शरीर की परिभाषायें=

त्वक्, कला, पेशी, स्नायु, सिरा, धमनी, रसायनी, नाड़ी, और रस से लेकर शुक्र पर्य्यन्त सब धातु शरीर को बनाते हैं। श्वास, अन्नपाचन आदि क्रिया करने वाले बहुत से आशय हैं। पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं और पांच ही कर्मेन्द्रिय हैं। नौ छिद्र हैं। शिर, भ्रू, कपाल आदि उपांग है। यह संक्षेप विवरण मात्र हुआ। विस्तार से आगे कहते हैं—

---

१ नाड़ीयां दो प्रकार की हैं, एक संज्ञावहा और दूसरी चेष्टावहा। इनमें संज्ञावहा नाड़ीयां शब्दादि विषयों को मस्तिष्क में पहुंचाती हैं और चेष्टावहा नाड़ीयां मस्तिष्क से चेष्टाशक्ति को लेकर मांस पेशीयों को क्रियाशील बनाती हैं। २ "उर्ध्वमूलमधःशाखमृषयः पुरुषं विदुः। मूलप्रहारिणस्तस्माद् रोगान् शीघ्रतरं जयेत् ॥ सर्वेन्द्रियाणि येनाऽस्मिन् प्राणा येन च संश्रिताः। तेन तस्योत्तमाङ्गस्य रक्षायामादृतो भवेत् ॥ (वागभट, उत्तरस्थान, २४ अ)

त्वक्—सम्पूर्ण शरीरको ढांपने वाली स्पर्शेन्द्रिय की अधिष्ठानभूमि है। यह स्वेदवाहक स्रोतों का और लोमोंके साथ लोमकूपों का आश्रयस्थान है। स्थुल दृष्टि से इसकी दो स्तर हैं—एक वहिस्त्वक् और दूसरी अन्तस्त्वक्। इनमें से पहली वाह्यत्वचा वहुत ही पतली और कृष्ण-गौर आदि वर्ण का स्थान है। इसमें ही, अग्नि स्पर्श से छाला[१] होता है। और दूसरी अन्तस्त्वक् मोटी है। जो कि शरीर की रक्षा करती हुई स्नेहादि का आकर्षण करती है। यही मुख्यरूप से स्पर्शेन्द्रिय की और स्वेदवह स्रोतों की आधारभूमि है।

प्राचीन आचार्य सूक्ष्मदृष्टि से, दूध की मलाई की भांति सात[२] अथवा छैः त्वचायें मानते हैं। इनमें से प्रथम "अवभासनी" नाम की है, इसका वाह्यत्वचा से कोई भेद नहीं है। और शेषों का अन्तर्भाव अन्तस्त्वचा में होता है।

कला।—यह पतले रेशम के वस्त्र के समान भिन्न भिन्न प्रकारकी (पतली-मोटी) रचनावाली, और मांस, अस्थि एवं सव आशयों को अन्दर तथा वाहर से ढांपनेवाली झिल्ली है। स्थान और काय के अनुसार इनका नामकरण किया जाता है। प्राचीन आचार्यों की दृष्टि में कलायें रसादि धातु और आमाशयादि आशयों के वीच में व्यवधान[३] स्वरूप हैं। कहा भी है,—

"स्नायुभिश्च प्रतिच्छन्नान् सन्ततांश्च जरायुणा।
श्लेष्मणा वेष्टितांश्चापि कलाभागांस्तु तान् विदुः॥" (सु० शा० ४ अ०)

अर्थात्—सफेद पतले धागों से वनी, पतले जाल से व्याप्त, और (तर्पक) श्लेष्मा से आवेष्टित भाग की "कला" संज्ञा है।

यथास्थान कलाओं के भेदों का वर्णन किया जायेगा।

पेशी—प्राणियों की सम्पूर्ण चेष्टाओं का साधन हैं। यह मांस द्वारा वनी-होती हैं। ये प्रायः वीच से मोटी रज्जु की भांति हैं। और कोई कोई फैली हुई चद्दर[४] के समान होती हैं। पेशीयां क्रिया के भेद के कारण स्वतंन्त्र और

---

१ अग्नि से जलने पर जब छाला, फूंसि उत्पन्न होती है तव स्पष्ट रूप से दोनों तहों में भेद दिखाई देता है। २ चरक में छैः और सुश्रुत में सात त्वचायें मानी हैं। पाश्चात्य मत से भी अणुवीक्षण यन्त्र से इतनी ही देखने में आती हैं। प्रथम त्वचा की सुश्रुत ने 'अवभासनी' संज्ञा की है; और चरक ने 'उदकधरा' संज्ञा। कृष्ण-गौर आदि वर्ण को अवभासित करने से 'अवभासनी', एवं जलकर छाला बनने पर जल से भर जाने के कारण 'उदकधरा' नाम दिया है। ३ "धात्वाशयान्तरमर्यादा" सु० शा० ४ अ। [कला = Membrane (mucous, serous, synovial etc)]। ४ चद्दर के आकार की यथा—"ललाटसंकोचनी" पेशी, यह चद्दर के समान फैलकर शिर को ढांपती है।

परतंत्र[1] दो प्रकार की हैं। इनमें से प्रायः परतंत्र पेशीयों के दोनों सिरे प्रत्येक छोर पर अस्थि के साथ बंधे होते हैं। पेशीयों के आकुञ्चन और प्रसारण से शरीर की नाना प्रकार की चेष्टायें होती हैं। रस्सी के आकार की पेशीयों के सफेद चिकने दृढ़ प्रान्त को "कण्डरा" कहते हैं। ये देखने में स्नायु सूत्रों से बनी, चांदी जैसी सफेद, और बहुत भार सहने वाली हैं। इनका पेशीयों में अथवा स्नायुवों में अन्तर्भाव किया जाता है। कहा भी है—

"स्नायवो वृत्ताः कण्डरा भवन्ति"। (सू० शा० ५ अ०)

अर्थात्—"गोल (रज्जु के आकार की) स्नायु को कण्डरा कहते" हैं।

स्नायु—प्राय ठोस, चिकनी, सन के सूत्रों के आकारवाली, सन्धियों की बन्धनी हैं। "स्नायु[3]" शब्द दो अर्थ में प्रयुक्त होता है। एक "स्नायुसंहति" अर्थात् स्नायु गुच्छों के अर्थ में और दूसरा "स्नायुव्यक्ति"-अर्थात् तन्तु के अर्थ में। इनमें से प्रथम अर्थ अस्थि संधियों की बन्धनीयों में प्रयुक्त होता है और यही मुख्य अर्थ है। यथा—"प्रतानवतीभिर्हि स्नायुभिर्द्दढीकृताः सन्धयः" अर्थात् "सन्धियां शाखाओं से फैली हुई स्नायुवों से दृढ़ बनाई जाती हैं।" और दूसरा अर्थ स्नायुव्यक्ति रूप गौण है। इस अभिप्राय से कभी कभी सन के सूत्र की भांति श्वेत, दृढ़ सूक्ष्म सूत्रों को स्नायु कहते हैं। इसलिये प्रचीन आचार्यों ने कलाओं में,[4] कण्डराओं में, पार्श्व, पीठ और उर की पेशीयों में, तथा आमाशय, पक्वाशय और वस्ति के अन्तभागों में जो स्नायु शब्द प्रयुक्त किया है, वह इसी अर्थ को लेकर किया है, ऐसा समझना चाहिये।

कहा भी है—

"स्नायूश्चतुर्विधा विद्यात्तास्तु सर्वा निबोध मे।
प्रतानवत्यो वृत्ताश्च पृथ्व्यश्च शुषिरास्तथा॥
प्रतानवत्यः शाखासु सर्वसन्धिषु चाप्यथ।
वृत्तास्तु कण्डराः सर्वाः विज्ञेयाः कुशलैरिह॥
आमपक्वाशयान्तेषु वस्तौ च शुषिराः खलु।
पार्श्वोरसि तथा पृष्ठे पृथुलाश्च शिरस्यथ॥
नौर्यथा फलकास्तीर्णा बन्धनैर्बहुभिर्वृता।
भारक्षमा भवेदप्सु नृयुक्ता सुसमाहिता॥

---

१ स्वतंत्र—यथा अन्त्र, हृदय, आदि की पेशीयां, जो की हमारे इच्छा के अधीन नहीं हैं। और परतंत्र—यथा हाथ-पांव आदि की पेशीयां जो हमारे इच्छा के अधीन हैं। ३ स्नायु=Ligament (संहति अर्थ में); also Fibrous Tissue (व्यक्ति अर्थ में)। ४ कलाके लक्षण देखिये।

एवमेव शरीरेऽस्मिन् यावन्तः सन्धयः स्मृताः।
स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धास्तेन भारसहा नराः॥" (सु० शा० ६ अ०)

अर्थात्—स्नायु चारप्रकार की हैं यथा—एक लम्बी शाखावाली, दुसरी गोल, तीसरी चपटी और चौथी खोखली। इनमें से शाखाओं में और सन्धियों में लम्बी; कण्डराओं में गोल; आमाशय, पक्वाशय और वस्ति के प्रान्तों में खोखली; पार्श्व, छाति एवं शिर में चौड़ी स्नायु हैं। जिसप्रकार तख्तों से बनी, बहुत से बन्धनों से बन्धी हुई नाव पानी में मनुष्यों का भार सहने योग्य होती है, उसीप्रकार इस शरीर में जितनी भी सन्धियां हैं, वे सब स्नायुवों से दृढ़ बन्धी हुई हैं; अतः शरीर के भार को सह सकता है।

सिरा[1]—इस ग्रन्थ में "सिरा" शब्द का अभिप्राय उन प्रणालियों से है, जो कि शरीर के रक्त को हृदय की ओर ले जाती हैं। ये सम्पूर्ण शरीर में फैली हुई हैं और मलिन रक्त को बहाती हैं। इन सब का आश्रयस्थान हृदय है, जिस प्रकार की सब नदीयों का समुद्र है।

धमनी[2]—इस ग्रन्थ में 'धमनी' शब्द से अभिप्राय सम्पूर्ण शरीर में रक्त को बहानेवाली प्रणालियों से है। इन सब का मूल स्थान हृदय है। हृदय धमनीयों के द्वारा सम्पूर्ण शरीर में रक्त को धकेलता है। ये शरीर को, खेत को नालियों की भांति, जीवन रूपी रक्त से तृप्त करती हैं।

रसायनी[3]—लसीका नामक स्वच्छ-पतले द्रव को बहाने वाली प्रणालियां हैं। यह भी सम्पूर्ण शरीर में फैली हुई हैं और इनके साथ कक्षा वंक्षण, गले आदि में रत्ती, निम्बोली आदि फलों के आकार की ग्रन्थियां होती हैं।

नाडी[4]—इस ग्रन्थ में 'नाड़ी' शब्द से अभिप्राय कोमल सूक्ष्म धागे जैसे विना छिद्र के तन्तुवों से हैं, जिन के द्वारा संज्ञा एवं चेष्टायें विजली के तार में विजली की भांति चलती हैं। इनका अधिष्ठाता वायु[5] है। यही सर्वव्यापक और अचिन्त्य शक्तिवाला है। इसी के द्वारा शब्दादि विषय मस्तिष्क में पहुंचते हैं और यही सब प्रकार की चेष्टाओं की प्रवृत्ति कराता है। यह सब कार्य वायु संज्ञावहा और चेष्टावहा नाड़ीयों का आश्रय करके सम्पादित करता है। इन सब नाडीयों का मूल-स्थान मस्तिष्क और सुषुम्ना है।

---

१ सिरा = Vein (भेन्) २ धमनी = Artery (आर्टरि) ३ रसायनी = Lymphatic (लिम्फ्याटिक) 'इस ग्रन्थ में' कहने का मतलब यह है कि चरक-सुश्रुतादि में कहीं कहीं इन शब्दों का यथेच्छ प्रयोग हुआ है। (प्रत्यक्षशारीर का उपोद्घात—४र्थ पाद, ६५—६९ पृ० और परिशिष्ट देखिये)। ४ नाड़ी = Nerve (नर्भ) ५ वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः, प्राणोदानसमानव्याना-पानात्मा, प्रवर्त्तकश्चेष्टानामुच्चावचानाम् इत्यादि। (च० सू० १२ अ)

इनका विस्तार से वर्णन आगे नाड़ीखण्ड में आयेगा।

स्रोत—शरीर के मार्गों की साधारण संज्ञा है। जैसा कि चरक में कहा है, "स्रोतांसि खलु परिणाममापद्यमानानां धातूनामभिवाहीनि भवन्त्ययनार्थे" (च० चि० ५ अ)। अर्थात् "स्रोतस् परिणाम को प्राप्त होते हुवे धातुवों को लेजानेके लिये होते हैं।"

धातु—शरीर को पुष्टि और जीवन देते हैं, शरीर को धारण किये हुवे हैं एवं गर्भोत्पत्ति में कारण हैं। ये सात हैं, यथा—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र। इनको वैद्यक में 'दूष्य' और इनके अतिरिक्त स्नायु, नाड़ी आदि उपादान को 'जीववस्तु' ('टिशु') कहते हैं।

रस—भोजन के सम्यक् परिपाक द्वारा उत्पन्न हुवा सारभूत पदार्थ 'रस' है। "रस गतौ" इस धातु से रस शब्द बना है; जिसका अर्थ यह है कि जो सब समय गति[1] करता है। यह जलीय रस अन्नप्रणाली के अतिसूक्ष्म स्रोतों से खींचा जाकर यकृत् और प्लीहा में पहुंचता है, जहां कि उसका परिपाक और राग (रंग) दोनों होते हैं। और रंगने पर इसकी "रक्त" संज्ञा हो जाती है। कहा भी है—

"रञ्जितास्तेजसा त्वापः शरीरस्थेन देहिनः।
अव्यापन्नाः प्रसन्नेन रक्तमित्यभिधीयते॥" (सु० सू० १४ अ०)

अर्थात्—"शरीरस्थ तेज के द्वारा अविकृत जलीय रस जब रंगा जाता है तब रक्त कहालाता है।"

रक्त—सब धातुवों को पुष्ट करनेवाला, शरीर का सारभाग है। रस ही रंजक पित्त से परिवर्त्तित होने पर रक्त होता है। इसका संग्रहण[2] तथा प्रेरण का स्थान हृदय है। यही रक्त हृदय से धमनीयों द्वारा सम्पूर्ण शरीर में पहुंचकर शरीर को पुष्ट करता है, बढ़ाता है, जीवन देता है, और चलाता है। पश्चात् शरीर में भ्रमण करने के कारण मलिन हो कर फिर सिराओं द्वारा हृदय में पहुंचता है, और शुद्ध होनेके लिये फुस्फुस (फेफड़) में चला जाता है; वहां से शुद्ध होकर फिर हृदय में (दूसरे विभाग में) आता है।

लसीका[3]—रक्त का पतला-स्वच्छ द्रवभाग का नाम है। यह रसायनीयों में बहती है, और जालकों से रिस रिस कर सब धातुवों का पोषण करती है। [illegible] का रक्त में अथवा रसके अन्दर सामावेश होता है।

---

१ "रसवहानां स्रोतसां हृदयं मूलम्" (च० वि० ६ अ०)। "दश मूलसिराहृत्स्थास्ताः 'सर्वं सर्वतो वपुः। रसात्मकं वहन्त्योजस्तन्निबद्धं हि चेष्टितम्" इति (अष्टाङ्गहृ० शा०) २ "तस्य [illegible] हृदयं स्थानम्" (सु० शा० १४ अ)। ३ लसीका = Lymph (लिम्फ़).

मांस—पेशीयों का उपादान धातु है, जो कि कोमल लाल तन्तुवों से बना हुवा, तथा जौंक के शरीर की भांति सिकुड़ने और फैलने वाला है।

मेद---जमे हुवे घी के समान, शरीर का स्नेह धातु है। इसका स्थान उदर की झिल्ली[1] के अन्दर, और त्वचा[2] के नीचे झिल्लियों में है।

वसा—मांस के अन्दर प्रविष्ट हुवा स्नेह भाग का नाम वसा है। इसका मेद के अन्दर ही अन्तर्भाव होता है। कारण—दोनों का उपादान समान है।

अस्थि—यह शरीर का अवलम्बक स्थिर-कठिन धातु है। सम्पूण शरीर इसी के सहारे टिका हुवा है। विस्तार से वर्णन आगे होगा।

मज्जा—अस्थियों के मध्यवर्त्ती स्नेह का नाम है। यह दो प्रकार का है, पीला और लाल। इनमें से पीली मज्जा नलकास्थियों में और लाल मज्जा शेष अस्थियों में एवं नलकास्थियों के छोरों पर होती है। स्थूल दृष्टि से यद्यपि यह मेद से भिन्न नहीं है, तथापि कार्य्य और उपादान के भेद से पृथक् धातु है।

शुक्र—संतानोत्पत्ति करनेवाला अन्तिम धातु है। इसके उत्पत्तिस्थान मुष्क[3] हैं। इसके दो स्रोत हैं, जो कि शुक्र धारण करनेवाले स्रोतों के एवं मूत्रमार्ग के साथ दोनों ओर सम्बन्धित हैं। शुद्ध शुक्र स्फटिक के समान, उज्ज्वल, द्रव, स्निग्ध और मधुर गन्धवाला होता है।

ये रस से लेकर शुक्र पर्य्यन्त धातु का वर्णन हुवा।

आशय[4]—श्वसन, अन्नपाचन, रक्तसंचरण आदि क्रिया करनेवाले बहुत से आशय हैं। यह सब 'शिरोगुहा', 'उरोगुहा' और 'उदरगुहा' में रहते हैं। [ग्रन्थके प्रारम्भका चित्र देखिये]।

शिरोगुहा—इसके अन्दर मस्तिष्क, अनुमस्तिष्क और सुषुम्नाशीर्षक हैं। यह तीनों सम्पूर्ण चेष्टायों का मूलस्थान हैं। इसके नीचे की ओर पृष्ठवंश के मध्यवर्त्ती सुषुम्नाकाण्ड मिलता है। यह शिरोगुहा का संक्षेप से वर्णन हुवा।

---

१ उदर की झिल्ली के अन्दर—In the Omentum. २ मेदोधराख्य कला में जो कि सब देह ढांपे हुवे हैं—Superfical Fascia, ३ "यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षौ रसो यथा"—इ… कहने का अभिप्राय यह है कि सूक्ष्म शुक्र सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है जिस से दाड़ी म… के लक्षण उत्पन्न होते हैं। ४ आशय तीन प्रकार के हैं; सगर्भ—यथाआमाशय, … यकृत्, ईषद्गर्भ—यथा मस्तिष्क।

उरोगुहा—इस में दोनों फुस्फुस[1] और हृदय[2] मुख्य हैं। फुस्फुस श्वास क्रिया के लिये हैं, जो कि कण्ठ में से जाती हुई श्वासप्रणाली के दोनों विभागों के साथ छाती के दोनों पार्श्वों में पृथक् रूप से सम्बन्ध करके रहते हैं। रक्त को लेने और देने के लिये कमल के आकार वाला हृदय है। यह दोनों फुस्फुसों के बीचमें रहता है। इसके साथ दो महासिराओं के मूल, एवं फुस्फुसों से आई हुई चार सिरायें मिलती हैं।

उदर गुहा—खाये हुवे वस्तुओं का आधार, मशक के आकार वाला आमाशय[3] नाभि से उपर है। पके हुवे एवं पचने वाले भोजन का आशय अन्त्र[4] हैं, जो कि नाभि के नीचे और चारों ओर स्थित हैं। इनमें छोटी अन्त्र पच्यमानाशय हैं, और बड़ी अन्त्र पक्काशय या मलाशय कहलाता हैं। किसी मत से सब अन्त्रों की ही पक्काशय संज्ञा है। पाचक और रञ्जक पित्त को उत्पन्न करनेवाला यकृत्[5] है, इसके साथ पित्ताशय[6] लगा हुवा है। रञ्जक पित्त को उत्पन्न करनेवाली प्लीहा[7] है। यकृत और प्लीहा की स्थिति क्रम से आमाशय के दक्षिण और वाम पार्श्व में है। आमाशय से पश्चिम की ओर कुठारिका के आकारवाला अग्न्याशय[8] है। मूत्र को उत्पन्न करने वाले, बड़ी शिम्बी के बीज के आकारवाले, कटि के पार्श्व में दो वृक्क[9] हैं। दोनो वृक्कों से निकले हुवे दो मूत्रस्रोत[10] नीचे पेडू में वस्ति[11] या मूत्राशय से मिलते हैं। यह नाभि से नीचे हैं। योनि के उर्द्ध मुख से लगा हुवा, छोटे से घड़े के आकार का गर्भाशय[12] है, जो कि स्त्रियों में ही होता है। यह कुमारीयों में अपनी मुट्ठी के आकार का होता है, और गर्भ धारण होनेपर गर्भ के अनुसार वढ़ता जाता है। इसके दोनों पार्श्वों में दो बीजकोष[13] हैं। ये बीजस्रोतों[14] के द्वारा गर्भाशय के दोनों पार्श्वों में बंधे हुवे हैं। (ऐसे ही पुरुष में दीखनेवाले शुक्रोत्पादक[15] दो मुष्क हैं, परन्तु ये वाहर रहते हैं) यह तीसरी उदरगुहा का संक्षेप से वर्णन हुवा। इन तीन गुहाओं में ही सब आशयों का समावेश है।

---

१ फुस्फुस=Lungs. २ हृदय=Heart. ३ आमाशय=Stomach. ४ अंत्र=Intestines. क्षुद्रांत्र वा पच्यमानाशय=Small Intestines; बृहदंत्र वा पक्वाशय या मलाशय=Colon. ५ यकृत्=Liver. ६ पित्ताशय—Gall-Bladder ७ प्लीहा=Spleen ८ सब प्रकार के भोजन को जीर्ण करने की शक्ति रखने वाले रस विशेष का आश्रय होने से अग्न्याशय=Pancreas (क्लोम)। ९ वृक्क=Kidneys. १० मूत्रस्रोत=Ureters. ११ वस्ति=Bladder. १२ गर्भाशय=Uterus. १३ बीजकोष=Ovaries. १४ बीजस्रोतस्=Fallopian tubes. १५ मुष्क=Testicles.

ज्ञानेन्द्रिय पांच हैं। यथा—कर्ण, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण ।

कर्ण—दो हैं, जो कि श्रवणेन्द्रिय के आश्रय स्थान हैं, इसके अवयव दो कर्णशष्कुली[1], दो कर्णकुहर[2] और दो कर्णपटह[3] आदि हैं। इनका विस्तार से वर्णन इनके स्थान पर आयेगा ।

नेत्र—देखने के लिये दो हैं। प्रत्येक आंख में पक्ष्मों के सहित नेत्रपुट, नेत्रवर्त्म, अक्षिगोलक, और पेशीयों के गुच्छ हैं। अक्षिगोलक के अवयवों का वणन आगे आयेगा ।

त्वक्—इसका वर्णन पहिले आगया है, विस्तार से आगे आयेगा। यह स्पर्शेन्द्रिय की अधिष्ठानभूमि है ।

रसना—पेशीयों से वनी हुई एक है। इसमें स्वादवाहिनी नाडीयों के जाल विखरे हुवे हैं, जो कि स्वादांकुरों से सम्वन्धित हैं। वाग्यंत्र का भी साधन जिह्वा है। इस की पेशीयों में वाग्यंत्र को प्रवृत्त करने वाली नाडीयां फैली हुई हैं ।

घ्राण—दो हैं, जो कि अस्थि की दिवार से विभक्त हैं। इसके अवयव घ्राणपुट, घ्राणविवर, घ्राणकला और तीन भूमि वाला घ्राणपथ है। घ्राणकला में गन्धग्राहिणी नाडीयां फैली हुई हैं ।

कर्मेन्द्रिय पांच हैं। यथा—वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ ।

वाक्—जिह्वा और कण्ठस्थ स्वरयंत्र एवं वागिन्द्रिय इसकी अधिष्ठानभूमि है। कण्ठ से उत्पन्न शब्द नाना प्रकार जिह्वा के परिचालन से वाणी के रूप में परिवर्त्तित होता है। जिह्वा का परिचालन पेशीयों के द्वारा होता है।

पाणि और पाद—पकड़ने, उठाने चलने आदि काय के लिये हैं।

पायु—मलत्याग करनेके लिये वृहदन्त्र का अन्तिम भाग है।

उपस्थ—जननेन्द्रिय है—पुरुष में शिश्न और स्त्री में योनि ।

नवद्वार—दो आंख, दो नाक, दो कान, एक गुदा, और एक मूत्रमार्ग—ये नौ द्वार हैं। स्त्रियों में तीन छिद्र अधिक हैं, यथा—दो स्तन और एक योनि ।

---

१ कर्णशष्कुली = Pinna of the Ear. २ कर्ण कुहर = External Auditory Meatus.
३ श्रुति पटह = Ear-drum or Tympanic membrane.

मर्म—सुश्रुत में कहा है कि मांस, सिरा, स्नायु, अस्थि, सन्धि के विशेष स्थान का नाम मर्म है। इनमें स्वभाव से ही प्राण रहते हैं। इसलिये मर्म के पीड़ित होने पर स्थान भेद से पीड़ा विशेष होती है। यह मर्म पांच प्रकार के हैं। यथा सद्यः प्राण हरनेवाले, कालान्तर में प्राण हरनेवाले, अङ्गको विकल करनेवाले, तीव्र पीड़ा करनेवाले, और विशल्यघ्न—अर्थात् शल्य निकालने पर प्राणनाश करने वाले। शरीर में एकसौ सात मर्म[1] हैं। इनका विस्तार सुश्रुत में देखना चाहिये।

अब मुख्य मुख्य प्रत्यंगों का वर्णन करते हैं।

शिर और ग्रीवा के उपांग—ललाट, भ्रू, शंख, गण्ड, उर्ध्वहनु, अधो-हनु, ओष्ठ, अधर, चिबुक, ग्रीवा हैं।

मध्यभाग के उपांग—दो स्तन, वक्षस्थल, पार्श्व, पीठ, उदर, नाभि, वस्तिप्रदेश (पेड), कटि और त्रिक[2] हैं।

शाखाओं के उपांग—अंस, कक्षा, प्रगण्ड, कफोणी, प्रकोष्ठ, मणिबन्ध, करतल, और करपृष्ठ यह प्रत्येक बाहु के उपांग हैं। अंस—भुजका शिर है; भुजा और वक्षस्थल की सन्धि कक्षा है; अंस से लेकर कोहनी तक प्रगण्ड है; बाहुकी मध्यवर्त्ती सन्धि का नाम कफोणि है—इसको कूर्पर भी कहते हैं; कोहनी से लेकर कलई तक प्रकोष्ठ है; हाथ और प्रकोष्ठ की सन्धि मणिबन्ध है; मणिबन्ध से लेकर कनिष्ठिका तक हाथ का बहिर्भाग करभ है, मणिबन्ध से नीचे हाथ है, जिस को पाणि या कर कहते हैं। हाथ का सम्मुखवर्त्ती रेखांङ्कित भाग करतल, और पीछे का भाग करपृष्ठ है। अंगुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, और कनिष्ठिका—यह पांच अंगुलियां हैं।

जघन, वंक्षण, ऊरु, जानु, जंघा गुल्फ, पादसन्धि, पार्ष्णि, पादतल, प्रपद, पादपृष्ठ और अंगुलि—यह प्रत्येक सक्थि (निम्नशाखा) के उपांग हैं। जघन—श्रोणी के पार्श्ववर्त्ती अर्थात् सक्थि के शिरःस्थ भाग का नाम है। सक्थि और मध्यशरीर की सन्धि वंक्षण है। वंक्षण और जानु का मध्यवर्त्ती भाग ऊरू है। ऊरू और जंघा की सन्धि जानु है; जानु के नीचे जंघा;

---

१ मर्म के आहत होने से मृत्यु ही होती है, यह सन्देह नहीं करना चाहिये। २ त्रिक पृष्ठवंश का निचला भाग है, जहां कि दोनों श्रोणीफलक इसके साथ मिलते हैं।

जंघा के नीचले छोर के दोनों पार्श्वों में गुल्फ (गिट्टे) ; इसके नीचे पादसन्धि अथवा गुल्फ सन्धि है । इसके नीचे पाद (पांव) है । इसके अवयव,—पार्ष्णि—पांव का पिछला भाग (अर्थात् एड़ी), प्रपद —पांव का अगला भाग ; पादतल—पांव का रेखांकित भाग ; पादपृष्ठ—इस के उपर का भाग, और पादांगुलियां हैं, जो कि हाथ कि अंगुलियों के समान नाम वाली हैं ।

यह संक्षेप से शरीर शास्त्र की परिभाषायें कही गई हैं । इन को भली प्रकार जानने से अग्रिम शास्त्र अच्छी रीति से जाना जा सकता है । कहा भी है—

"अव्यक्तानुक्तलेशोक्त सन्दिग्धार्थप्रकाशिकाः ।
परिभाषाः प्रकथ्यन्ते दीपीभूताः सुनिश्चिताः ॥",

"शरीर संख्यां यो वेद सवावयवशो भिषक् ।
तदज्ञाननिमित्तेन मोहेन स न युज्यते ॥" (च० शा० ७ अ०)

भावार्थ—अस्पष्ट, न कहे हुवे, अथवा संक्षेप से कहे हुवे या सन्दिग्ध अर्थ वाले विषयों को परिभाषा स्पष्टता और निश्चय के साथ बताती है । यह अन्धकार में दीपक का कार्य करती है । जो वैद्य शरीर के सब अवयवों के विभाग कर शरीर की संख्या (अर्थात् शारीर वस्तुओं का विवरण) को भली प्रकार जानता है, वह कहीं भी धोखा नहीं खाता ।

तृतीय अध्याय

=अस्थिसामान्य वर्णनीय=

अस्थि—स्थिर, कठिन और शरीर की अवलम्बक धातु है, यह पहिले कह चुके हैं । अस्थियां शरीर को मुख्य रूप से सहारा देती हैं, अतः प्रथम इनको जानना चाहिये । कहा भी है—

"अभ्यन्तरगतैः सारैर्यथा तिष्ठन्ति भूरुहाः ।
अस्थिसारैस्तथा देहा ध्रियन्ते देहिनां ध्रुवम् ॥

तस्माच्चिरविनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम् ।
अस्थीनि न विनश्यन्ति साराण्येतानि देहिनाम् ।" (सु० शा० ६ अ०)

अर्थात्—"जिसप्रकार वृक्ष अन्तःसार पदार्थ से स्थिर रहते हैं, उसी प्रकार शरीर भी अन्तःसार—अस्थियों से स्थिर रहते हैं। इस लिये मांस, त्वचा आदि के नष्ट होने पर भी अस्थियां चिरकाल में नष्ट नहीं होती, ये शरीर का सार है।"

अस्थियों के दो उपदान कारण हैं, एक कोमल स्नायुवों से वना भाग, और दूसरा कठोर चूने से वना हुवा भाग। कोमल स्नायुवों के तन्तुजाल में भरे जाने से कठोर चूने के भाग के सब अस्थियां वनती हैं।

अस्थियों का आवरण दो प्रकार का है, वाह्य और आभ्यन्तर। इनमें से जो झिल्ली अस्थियों को ऊपर से ढांपती है वह "अस्थिधरा" नाम की कला[1] है। यही अस्थियों की जीवनभूमि है। और जो अस्थि के नलियों को अन्दर से घेरकर रखती है, वह "मज्जधरा" नाम की कला है।

अस्थियों के रचना भी दो प्रकार की है—एक "घनसंघात" (ठोस) और दूसरी 'शुषिरसंघात[2]'। इसमें "घनसंघात" रचना सब अस्थियों के वाह्य पृष्ठ पर है, विशेषकर नलकास्थियों के। और "शुषिरसंघात" रचना छोटी अस्थियों के भीतर तथा कपालास्थियों के अन्दर में, और नलकास्थियों के प्रान्तभाग में है।

अस्थियों का पोषण—अस्थियों में दिखाई देने वाले छिद्रों से धमनीयां प्रवेश कर के सूक्ष्म सूक्ष्म जालके रूप में चारों ओर फैल जातीं हैं।

बाल्यावस्था में सब अस्थियां कोमल एवं संख्या में अधिक होती हैं। पीछे ज्यों ज्यों आयु बढ़ती जाती है, अस्थियां भी कठोर होती जाती हैं। पचीस वर्ष में जाकर वहुत सी अस्थियां आपस में जुड़ जाती हैं। जिससे इनकी संख्या घट जाती है। श्वासमार्ग की अस्थियां सदा ही कोमल रहती हैं, वृद्धावस्था को छोड़कर। वृद्धावस्था में सदा कोमल रहने वाली कुछ अस्थियां भी कठोर हो जाती हैं और कठिन अस्थियां भंगुर हो जाती हैं, जिससे इस अवस्था में टूटी अस्थियों का जुड़ना कठिन हो जाता है।

अस्थियों में कठोरता कोमल अस्थियों के मध्यवर्त्ती केन्द्रों से आरम्भ होकर चारों ओर फैलती है। इन मध्य भागों को 'अस्थि-केन्द्र' कहते हैं। प्रायः नलकास्थियों के प्रान्त भाग केन्द्र से चारों ओर वढ़ते हैं। इस प्रकार बढ़ने वाली

---

१ अस्थिधरा कला (Periosteum), जो नष्ट होने पर अस्थि भी नष्ट हो जाती है, इस लिये यह अस्थियों की जीवनभूमि है। २ चूने के अधिक होने पर ठोसपन अधिक होता है और स्नायु अंश के अधिक होने पर सच्छिद्रता अधिक होती है; घन संघात = Compact tissue, शुषिर संघात = Cancellous tissue.

छोर की अस्थियों को "प्रान्तास्थि" नाम दिया गया है। शिशुवों के सन्धिभंग में प्रान्तास्थि, प्रायः मध्य नलकास्थि से पृथक् होजाती हैं।

प्राचीन आचार्य्यों ने अस्थियों को आकार भेद से पांच रूप में विभक्त किया है। यथा—"कपाल," "रुचक," "तरुण," "वलय" और "नलक"। कपाल के आकार वाली अस्थियां कपाल, यथा शिर की कड्ढी के आकार रुचक यथा दांत; नाक-कान आदि की तरुण पार्श्व, पीठ और छाती में वलय; और शाखाओं में अस्थियां नलक हैं।

और भी छोटी कठोर अस्थियां हैं, जिनका सुगमता से इनमें अन्तर्भाव नहीं हो सकता। उनको "विषम" नाम दिया गया है। यथा—हाथ और पांव का कूर्चास्थियां।

संख्या—चरक, याज्ञवल्क्य आदि वेदवादी ऋषि अस्थियों की संख्या तीन सौ साठ मानते हैं। और सुश्रुत भेल आदि शल्यतंत्र के ऋषि तीन सौ मानते हैं, पाश्चात्य विद्वान् दो सौ मानते हैं। यद्यपि ऋषियों की आपस में तथा पश्चिमीय विद्वानों की गणना में वहुत भेद पड़ता है, तथापि सूक्ष्म दृष्टि से विचारा जाय तो सभी की गणना ठीक है—क्योंकि गणना प्रकार में ही भिन्नता है। यथा—वेदवादी चरक आदि ऋषि नख, दांत आदि को भी अस्थियों के साथ गिनते हैं। दूसरे (सुश्रुतादि) इनको पृथक् रखते हैं। प्राचीन शल्यतंत्र के पण्डित तरुणास्थि और दांतो को गिनते हैं; यूरोपीय विद्वान् इनको नहीं गिनते। भेद का दूसरा कारण आयु की भिन्नता है। प्राचीन आचार्य्यों की अस्थिगणना पर ध्यान देने से प्रतीत होता है कि वे वालक वा किशोर की अस्थियां देखकर गिनते हैं, और अर्वाचीन लोग पूर्ण युवा व्यक्ति की अस्थियों को। क्योंकि बाल्यावस्था में अस्थियों के जो जो भाग पृथक् रहते हैं, बड़ी आयु में वे आपस में मिलकर एक हो जाते हैं। जिससे संख्या घट जाती है।

यहां पर प्रौढ़ावस्था की अस्थियां ही गिनी जायेंगी। कारण—वे थोड़ी हैं और सुगमता से गिनी जा सकती हैं। तरुणास्थि, नख, दांत आदि को छोड़ दिया जायेगा। कारण—तरुणास्थियां प्रायः असंख्य हैं,—इनकी संख्या भी स्थिर नहीं है। नख[१] और दांत त्वचा के ही परिणाम स्वरूप हैं। अतः यहां पर कठिनास्थियां चार ही प्रकार की हैं। यथा—कपाल, वलय, नलक और विषम।

---

१ बाल्यावस्था में नख और दांत त्वचा से ही बनते हैं। वेदवादीयों का इनको अस्थियों में गिनना ठीक ही है। कारण—दांतों के गंगाजल में फेंकने से अस्थि प्रक्षेप का फल माना है।

अस्थि गणना

शाखास्थियां (कंकाल चित्र १ देखिये)—पांव की प्रत्येक अंगुली में तीन, और अंगूठे मे दो, कुल मिलाकर चौदह[1] अस्थियां[2] हैं। पांचो अंगुलियों की मूल में पांच शलाकायें[3]। इनकी मूल में सात पादकूर्चास्थियां[4] हैं। जंघा[5] में दो, जानु[6] में एक, ऊरू[7] में एक। कुल मिलाकर एक सक्थि में तीस अस्थियां हैं। इसीप्रकार दूसरी सक्थि में भी। बाहु की अंगुलियों में चौदह, और पहले की भांति पांच शलाकायें[8] हैं। हाथ में आठ पाणिकूर्चास्थियां[9] हैं। प्रकोष्ठ[10] में दो, प्रगण्ड[11] में एक। इस प्रकार एक बाहु में तीस अस्थियां हैं। दूसरी में भी इसी प्रकार। इस प्रकार दोनों शाखाओं में कुल एक सौ बीस अस्थियां हैं।

मध्यशरीर की अस्थियां—शरीर के मध्यवर्त्ती भाग को सहारा देनेवाले पृष्ठवंश में कण्ठ से लेकर कटि तक चौवीस "कशेरुका"[12] हैं। इसके नीचे, त्रिक प्रदेश में एक "त्रिकास्थि"[13] है, जो कि पांच अस्थियों से मिलकर बनी है। इसके नीचे गुदा के पश्चिमभाग में "अनुत्रिकास्थि"[14] है, यह भी पांच (कहीं कहीं चार) अस्थियों से बनी है। श्रोणि प्रदेश में "श्रोणिफलक"[15] नामकी दो कपालास्थियां हैं। छाती के सन्मुख में एक "उरःफलक"[16] है, जो कि तीन या छैः अस्थियों से मिलकर बना है। इसके दोनों ओर ऊपर एवं सामने दो "अक्षकास्थियां"[17] हैं। इसकी पीठ की तरफ दो ही "अंसफलक"[18] हैं। छाती के एक एक पार्श्व में बारह (कुल मिलाकर चौबीस) पर्शुकायें[19] हैं। ग्रीवा के सामने जिह्वा की जड़ में अर्द्ध गोलाकर "कण्ठिकास्थि"[20] है। इस प्रकार मध्यशरीर में अट्ठावन (५८) अस्थियां हैं।

---

१ सुश्रुत में जहां कहा है कि पांव की एक एक अंगुलि में तीन तीन अस्थियां हैं, कुल मिला कर पन्द्रह; वह प्रत्यक्ष एवं अपने कथन के विरुद्ध होने से असंगत पाठ है जैसा कि सन्धि गणना में कहा है कि पांव की एक एक अंगुलि में तीन तीन और अंगूठे में दो सन्धियां—इस प्रकार चौदह सन्धि हैं (सु० शा०)। २ अंगुल्यस्थि = Phalanges. ३ पादांगुलिमूलशलाका = Metatarsals. ४ पादकूर्चास्थियां = Tarsal Bones. ५ जंघास्थियां = Tibia & Fibula (Leg Bones); ६ जान्वस्थि = Patella. ७ ऊर्वस्थि = Femur; ८ पांच करांगुलिमूलशलाकायें = Metacarpals; ९ पाणिकूर्चास्थि = Carpal Bones; १० प्रकोष्ठास्थि = Radius and Ulna; ११ प्रगण्डास्थि = Humerus; १२ कशेरुका = Vertebra; १३ त्रिकास्थि = Sacrum; १४ अनुत्रिकास्थि = Coccyx; १५ Os. Innominatum (Hip-bone); १६ Sternum; १७ Clavicles; १८ Scapulæ; १९ Ribs; २० Hyoid,

शिर की अस्थियां—शिर में चार कपालास्थियां हैं। यथा एक पुरःकपाल[१], दो पार्श्वककपाल[२], एक पश्चात्कपाल[३]। दोनों ओर शंखप्रदेश में दो शंखास्थियां[४]। शिर की तलैटी में दो अस्थियां हैं—एक जतूकास्थि[५] जो कि कण्ठ और तालु को ढांपती है; दूसरी झर्झरास्थि[६], जो कि छोटे छोटे छिद्रों वाली और नासा की जड़ में स्थित है। दो गण्डास्थियां[७]। दो ऊर्ध्व-हन्वस्थि[८]। एक अधोहन्वस्थि[९]। दो ताल्वस्थि[१०]। दो नासास्थि[११], जो कि नासा के मूल में दोनों पार्श्वों में हैं। दो शुक्तिकास्थि[१२]—जो नासा के अन्दर दोनों ओर हैं। एक सीरिकास्थि[१३] - जो कि नासा के मध्य में दिवार स्वरूप है। दो अश्रुकास्थि[१४]—जो कि आंख की कोटर और नासा के पार्श्वों के मध्य में अश्रुमार्ग के आश्रय हैं। और प्रत्येक कान के अन्दर तीन तीन (मिलाकर छैः) छोटी छोटी अस्थियां[१५] गुप्त हैं। इस प्रकार शिर में अट्ठाईस अस्थियां हैं।

इस प्रकार कुल मिलाकर शरीर में दो सौ छै कठोर अस्थियां हैं। अथवा कानों की गुप्त अस्थियों को छोड़कर गिना जाय तो दो सौ अस्थियां हैं।

कहीं कहीं कण्डराओं के प्रान्तों में चने जैसी छोटी अस्थियां भी मिलती हैं (चणकास्थि[१६]), उनकी पृथक् गिनती नहीं है। कारण—उनकी स्थिति निश्चित नहीं।

तरुणास्थियां[१७] यहां नहीं गिनी जायेंगी, यह पहिले ही कह चुके हैं। उदाहरण के लिये कहा जा सकता है कि—तरुणास्थि पृष्ठवंश की कशेरुकाओं के बीच में, सन्धियों में, पसलियों के अन्त में, नासा की दिवार में, कर्ण पालि में, श्वासमार्ग में, और उनकी शाखा प्रशाखाओं में मिलती हैं। इनका वर्णन यथा स्थान आयेगा। दांत बत्तीस हैं। इनमें पिछले चार युवावस्था में या अधिक आयु में उत्पन्न होते हैं। दांत त्वचा का ही परिणाम स्वरूप हैं, अतः इनको अस्थि नहीं कहना चाहिये।

---

१ Frontal; २ Parietal; ३ Occipital; ४ Temporal; ५ जतूका (चीमगादड़) के समान होती है इसलिये जतूकास्थि नाम है = Sphenoid; ६ Ethmoid; ७ Malar Bones; ८ Superior Maxillary; ९ Inferior Maxillary; १० Palate Bones; ११ Nasal Bones; १२ Inferior turbinated; १३ Vomer; १४ Lachrymal Bones; १५ Ossicles of the Ear; १६ चणकास्थि = Sesamoid; जहांपर कण्डरा अस्थि पर विशेष करके घिसती है, वहां पर प्रायः गोल, चिपटी, अस्थि बन जाती है, उसे चणकास्थि कहते हैं। १७ तरुणास्थि = Cartilage.

द्वितीय चित्र—नरकङ्काल (१) (सम्मुख से दृष्ट)।

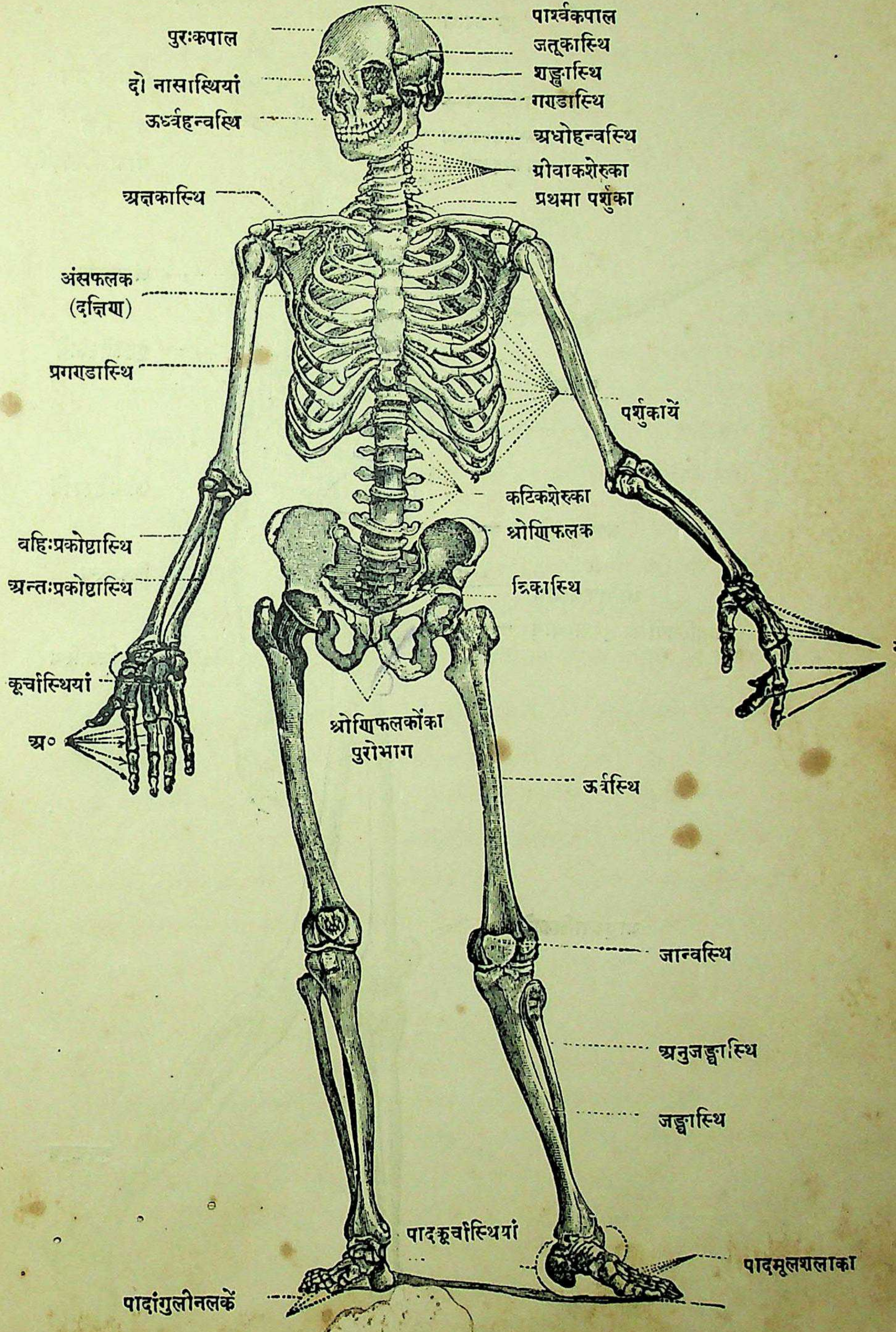

चित्रव्याख्या—मू० करम … । … कराङ्गलिनलकें। (To face page

तृतीय चित्र—नरकङ्काल (२)—(पार्श्व से दृष्ट)।

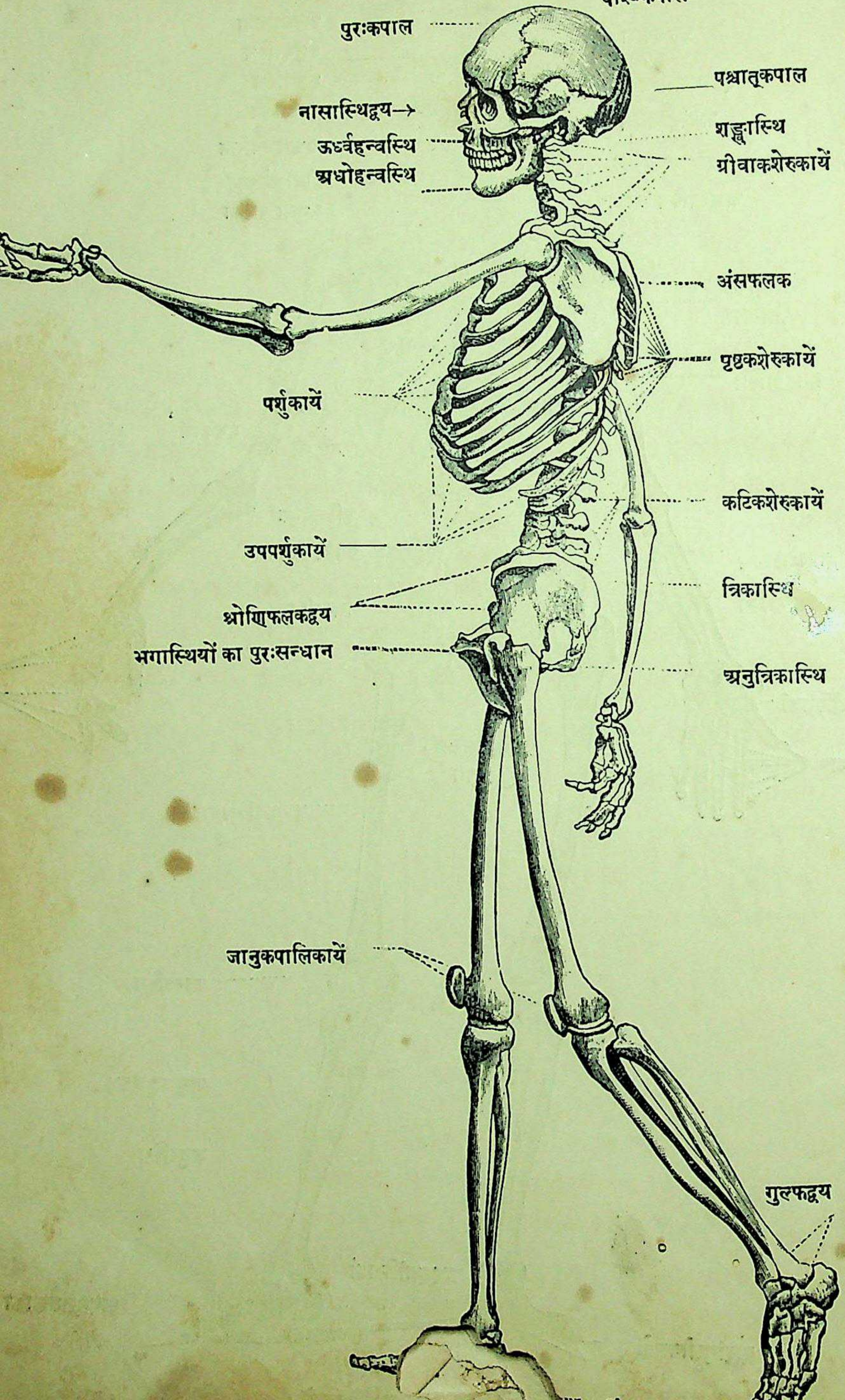

यह संक्षेप से सब अस्थियों का विभाग कहा गया, इसके आगे विस्तार से कहेंगे।

चतुर्थ अध्याय

=अस्थियों का विशेष वर्णन=

सामान्य रूप से अस्थियों का ज्ञान होने पर भी विशेष रूप से अस्थियों का परिज्ञान, सम्पूर्ण बोध के लिये, पेशियों की क्रिया जानने के लिये एवं टूटी अस्थियों को जोड़ने की कुशलता पानेके लिये आवश्यक है। उन्हीं का विभाग करके अब विशेष रूप से वर्णन किया जायेगा।

यदि कोई मनुष्य हाथों को चित्त करके खड़ा हो जाय तो उस की अपेक्षा से ऊर्ध्व, अधः, पुरः (सम्मुख) और पश्चात् व्यवहार शारीर शास्त्र में किया जाता है। भ्रू मध्य से ले कर नाभि तक जो सीधी रेखा खींची जाती है, उसे **'मध्यरेखा'** कहते हैं। इस रेखा के समीप की सीमा **'अन्तःसीमा'** और दूर की सीमा **'बहिःसीमा'** है।

प्रथम परिच्छेद

=शाखाओं की अस्थियां=

पकड़ने, धारण करने, चलने आदि क्रियाओं के लिये चार शाखायें हैं। जिन में दो बाहु और दो सक्थि हैं। प्रत्येक सक्थि में तीस अस्थियां हैं। यथा पांव की अंगुलियों में चौदह, पांव के बीच में पांच मूलशलाकायें, पादमूल में सात पादकूर्चास्थियां; इस प्रकार पांव में छब्बीस अस्थियां होती हैं। और जंघा में दो, जानु में एक, और ऊरू में एक।

पादास्थियां

[चतुर्थ चित्र]

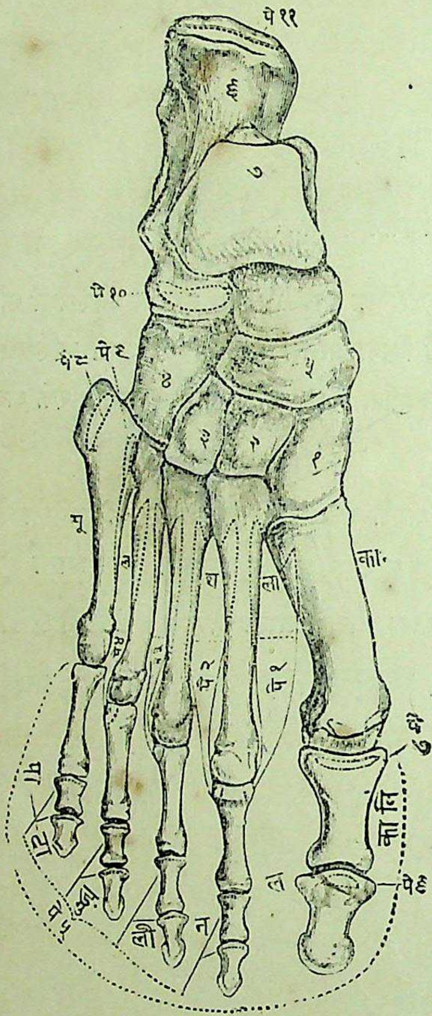

व्याख्या—१—७ कूर्चास्थियां। पे—इस चिन्ह से अङ्कित भागों पर पेशियां लगती हैं। यथा—पे १, पे २, पे ३, पे ४—उत्तरा शलाकान्तरीया। पे ५—प्रसारणी की दीर्घा कण्डरा। पे ६—पादाङ्गुष्ठ प्रसारणी दीर्घा। पे ७ पे १०—पादांगुली प्रसारणी ह्रस्वा (दोनों प्रान्त) पे ८ पे ९ पादविवर्त्तनी पेशी। पे ११ पिण्डिका-कण्डरा के लगने का स्थान।

पादांगुलियों की अस्थियां—

एक एक अंगुली में तीन तीन और अंगुष्ठ में दो अस्थियां हैं। इस प्रकार प्रत्येक पांव में चौदह "अंगुलीनलक" हैं। ये तीन श्रेणीयों में बंटे हुवे हैं। अग्रिम श्रेणी में पांच, मध्य में चार और पश्चिम में पांच। इन में से अगली पांच, नख धारण करने के लिये आगे से खुर जैसी चौड़ी हैं। अंगुष्ठ को छोड़ कर शेष चारों के पश्चिम प्रान्त मध्य नलकों से जुड़ते हैं, और अंगुष्ठ पश्चिम नलक से जुड़ता है। कारण—अंगुष्ठ में मध्य नलक नहीं है। मध्य श्रेणी के चार अंगुलीनलक दोनों ओर से जुड़ते हैं। पश्चिम श्रेणी में पांच हैं। वे भी इसी प्रकार दोनों ओर से जुड़ते हैं।

पादांगुलीमूलशलाका—

प्रत्येक पांव में अंगुलीयों की जड़ में पांच नलकास्थियां हैं। जिनसे कि प्रपद बनता है। जड़ में ये कूर्चास्थियों से जुड़ती हैं। और आगे से पश्चिमनलकों के साथ। इस लिये कूर्चास्थियों को प्राचीन आचार्य्य लोग "शलाकाधिष्ठान"[1] कहते हैं।

---

१ इसीलिये सुश्रुत में कूर्चास्थियों की "शलाकाधिष्ठान" संज्ञा की है।

प्रथमा—अंगुष्ठमूलशलाका—यह इन में सब से मोटी और सब से छोटी है। इसके द्वारा प्रपद की अन्तःसीमा बनती है। जड़ में यह आन्तर कोणक नाम की कूर्चास्थि से जुड़ती है। इसका मुण्ड मोटा होता है, और इसके पादतल प्रदेश के मध्य में दो खात[1] हैं। जिस में से "लघ्वी पादांगुष्ठसंकोचनी"[2] पेशी चणकास्थियों[3] के साथ जाती आती है। यह अंगुष्ठ की पश्चिम नलकास्थि से जुड़ती है।

द्वितीया—तर्जनीमूलशलाका—यह इनमें सब से लम्बी और जड़ में तीन सन्धि चिन्हों वाली है। इसकी सन्धि तीनों कोणक कूर्चास्थियों से होती है। इसका मुण्ड तर्जनी के पश्चिम नलक से मिलता है।

तृतीया—मध्यमामूलशलाका—इस का मूल मध्यमांगुली के पश्चिम नलक के मूल से मिलता है। इस की जड़ में सन्धि के चार निशान हैं। जिन में से अन्तःसीमा के दो सन्धि चिन्ह तर्जनीमूलशलाका के पार्श्वों से जुड़ने के लिये हैं। और बाह्यसीमा में एक सन्धि चिन्ह अनामिकामूलशलाका से जुड़ने के लिये, एवं मध्य में सब से बड़ा सन्धि चिन्ह बाह्यकोणक कूर्चास्थि से मिलने के लिये है।

चतुर्थी—अनामिकामूलशलाका—जड़ में यह घन और बाह्यकोणक-कूर्चास्थि से जुड़ती है। भीतर एवं बाह्य पार्श्वों में कनिष्ठिका और तर्जनी की मूलशलाकाओं के साथ मिलती है।

पञ्चमी—कनिष्ठकामूलशलाका—इस की जड़ में बाहर की ओर एक मोटा अर्बुद है। इसकी जड़ में दो सन्धि चिन्ह होते हैं। इन में से त्रिकोण सन्धिचिन्ह द्वारा घन नामकी कूर्चास्थि से मिलती है, और दूसरे चिन्ह से यह अनामिका मूलशलाका से मिलती है।

यह पांच पादांगुली मूलशलाकाओं का वर्णन होगया। इनकी अस्थियों के साथ सन्धि निम्न श्लोकों द्वारा याद रखना सुगम है—

सन्धीयते पादमूलशलाका मुण्डतः पुरः।
अंगुली पश्चिमनलैरथ कूर्चास्थिभिः क्रमात्॥—
प्रथमा संहितैकेन द्वितीया संहिता त्रिभिः।
तृतीयैकेन तुर्या तु द्वाभ्यामेकेन पञ्चमी॥
अन्योन्यमथ मूले तु सन्धिस्त्रिषु पार्श्वयोः।
एकतस्तु कनिष्ठायामंगुष्ठे[4] कचिदेव तु॥

---

१ खात=Fossa; २ Flexor Hallucis Brevis. ३ चणकास्थि=Sesamoid Bone

४ कहीं कहीं अस्थिपिञ्जर में अंगुष्ठमूलशलाकाकी तर्जनी मूलशलाका से सन्धि देखी जाती है, परन्तु बहुत कम जगह।

कूर्च्चास्थियां[१]—इनके द्वारा पांव का पश्चिम भाग बनता है। ये छोटी, स्थूल और विषम आकार की होती हैं। इनकी संख्या सात है। प्राचीनोंने इनकी "मूलशलाकाधिष्ठान" संज्ञा की है। इनके नाम क्रम से कूर्च्चशिर, पार्ष्णि नौनिभ, घन, अन्तःकोणक, मध्यकोणक और बहिःकोणक हैं।

कूर्च्चशिर[२]—(४र्थ चित्र में ७) यह सब कूर्चास्थियों के ऊपर रक्खी हुई है। इसका आकार प्रायः गोल है। यह पांव और जंघा को जोड़ती है। इसका मुण्ड गोल, कछुवे की पीठ के आकार वाला और जंघा की अस्थियों के निचले प्रान्तों से मिलने के लिये सन्धि चिन्ह युक्त है। इसके नीचे एक गहरी सीता (खाई) है। जिस में सन्धि की स्नायु रज्जु जुड़ती है। पार्ष्णि के शिर से, मिलने के लिये दो सन्धि चिन्ह हैं। अन्दर और बाहर की सीमा में गुल्फों से मिलने के लिये दो सन्धि चिन्ह हैं। सामने की ओर भी एक सन्धि चिन्ह है, जिस पर यह नौनिभ अस्थि से मिलती है।

पार्ष्णि[३]—(४र्थ चित्र में ६) सब से बड़ी कूर्चास्थि है। इस से पार्ष्णि (एड़ी) बनती है। यह शरीर के सारे भार को उठाये हुए है। इसके ऊर्द्ध्व भाग में सन्धि चिन्हों के बीच में एक गहरी सीता है। जिस में सन्धि की स्नायु रज्जु जुड़ती है। वहीं कूर्च शिर अस्थि से मिलने के लिये दो सन्धि चिन्ह हैं। इसका सामने का भाग विषम और छोटा है, और पीछे का भाग थोड़ा विषम और लम्बा है, इसी से पार्ष्णि मूलम् बनता है। इसकी अन्तःसीमा में "पार्ष्ण्योष्ठ" नामक ओष्ठाकार प्रवर्धन[४] है। इसके ऊपर "कूर्च शिर" से जुड़ने के लिये सन्धि चिन्ह है। इस प्रवर्धन के नीचे एक गहरी सीता है। जिसमें पादतलस्थ धमनी, नाड़ी और कण्डराओं के सिरे रहते हैं। इस अस्थि के साथ आठ मांस पेशियां जुड़ती हैं। जिन में से सात तल प्रदेश में और एक पीछेकी ओर पिण्डिका कण्डरा नाम की पेशी है। इसका वर्णन इनके स्थान पर आयेगा।

नौनिभ[५]—(४र्थ चित्र में ५) पांव की अन्तःसीमा में नौका के आकार की है। इस का सामने का भाग थोड़ा खातोदर और तीन सन्धि चिन्हों वाला है। इन चिन्हों पर क्रम से तीनों कोणक नाम की कूर्चास्थियां (४र्थ चित्र में १-२-३) जुड़ती हैं। इसका पिछला भाग खातोदर है। इस पर कूर्च शिर अस्थि का सन्मुख भाग मिलता है। इसकी बाह्यसीमा में छोटासा सन्धि चिन्ह

१—कूर्चास्थि = Tarsal Bones. २—कूर्च शिरः Talus or Astragalus. ३—पार्ष्णि = Calcaneum (Os Calcis). ४—प्रवर्धन (अस्थिका बढ़ा हुआ भाग) = Process., ५—नौनिभ = Navicular.

है, जहां पर घन नामक कूर्चास्थि से मिलती है। अन्तःसीमा में एक छोटा सा अर्बुद है। यहां पर जंघानुगा पेशी लगती है।

घन[2]—(४र्थ चित्र में ४) घन के आकार वाली[3], पांव की बाह्यसीमा में रहने वाली, कनिष्ठिका और अनामिका मूलशलाकाओं की आधिष्ठानभूत यह कूर्चास्थि है। इनके सन्मुख भाग में कनिष्ठिका और अनामिका मूलशलाकाओं से मिलने के लिये दो भागों में बंटा हुआ सन्धि चिन्ह है। इसके पिछले भाग में पार्ष्णि से मिलने के लिये स्पष्ट सन्धि चिन्ह होता है। इसकी अन्तःसीमा में बहिः कोणक कूर्चास्थि से मिलने के लिये सन्धि चिन्ह है। प्रायः यहीं पर पीछे की ओर एक दूसरा सन्धि चिन्ह है, जिसके द्वारा नौनिभ से जुड़ती है। इसके निचले भाग में स्पष्ट लम्बी सीता है, जिस में 'पादविवर्त्तनी' पेशी रहती है।

अन्तःकोणक[4]—(४र्थ चित्र में १) अंगुष्ठमूलशलाका की जड़ में रहने वाली प्रायः त्रिकोणाकार कूर्चास्थि है। इसकी अन्तःसीमा केवल त्वचा से ढंपी रहती है और बाह्यसीमा में तर्जनीमूलशलाका की जड़ से और मध्यकोणक अस्थि के पार्श्व से मिलने के लिये दो सन्धि चिन्ह होते हैं। इसका सन्मुखवर्त्ती सन्धि अंगुष्ठमूलशलाका से जुड़ने के लिये शिम्बी बीज के समान होता है। इसके अधोभाग में छोटा सा अर्बुद है। जहां पर जंघापुरोगा[5] और जंघानुगा[6] नाम की पेशीयों की कण्डरायें जुड़ती हैं।

मध्यकोणक[7]—(४र्थ चित्र में २) तर्जनी के मूल में रहने वाली, सब से छोटी, प्रायः त्रिकोणाकार कूर्चास्थि है। इसके सामने के भाग में तर्जनीमूलशलाका से मिलने के लिये सन्धि चिन्ह होता है। पार्श्वों में अन्तःकोणक और बहिःकोणक अस्थियों से मिलने के लिये दो सन्धि चिन्ह होते है। और पीछे की ओर नौनिभ से मिलने के लिये छोटा सा सन्धि चिन्ह है।

बहिःकोणक[8]—(४र्थ चित्र में ३) मध्यममूलशलाका की जड़ में रहने वाली, प्रायः त्रिकोणाकार होती है। इसके सन्मुख भाग में तर्जनीमूलशलाका, अनामिका मूलशलाका और मध्यमामूलशलाका से जुड़ने के लिये सन्धि चिन्ह होते हैं। पीछे की ओर नौनिभ से मिलने के लिये सन्धि चिन्ह है। पिछली तीनों कूर्चास्थियों को कोणक नाम दिया गया है। पांव की अस्थियों का वर्णन हो गया—इन अस्थियों पर लगने वाली पेशीयां चित्र में देखिये। विस्तारसे वर्णन पेशी अध्यायमें आयेगा।

---

१ Tibialis Posticus muscle. २ घन=Cuboid. घन—नेहाई जो कि लुहारों के यहां देखी जा सकती है। ३ Peroneus Longus. ४ Internal Cuneiform. ५ Tibialis Anticus. ६ Tibialis Posticus. ७ Middle Cuneiform. ८ External Cuneiform.

[पञ्चम चित्र--जङ्घास्थियां]

[ऊपरका भाग]

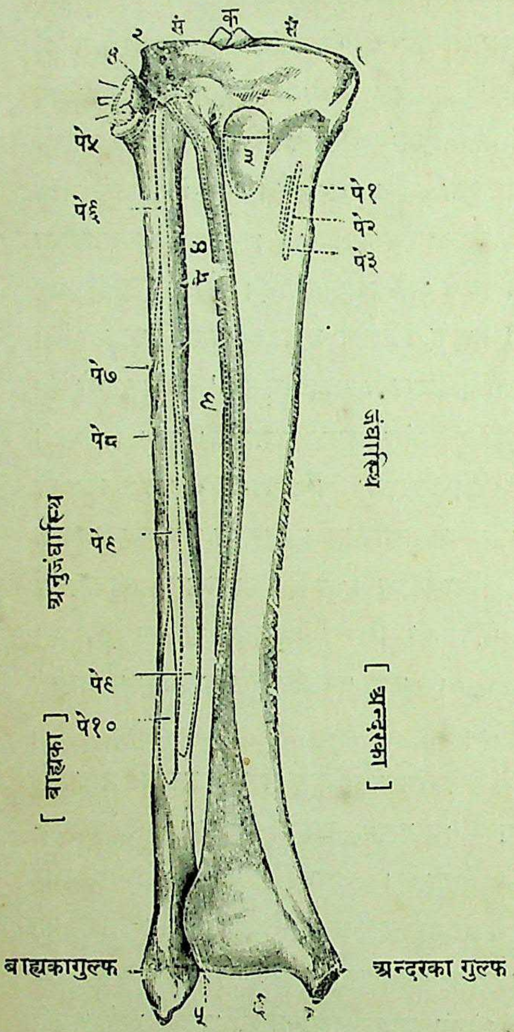

[नीचेका भाग]

व्याख्या—यहांपर निम्न पेशीयां लगती हैं। पे० १ दीर्घायामा (Sartorius), पे०२ ऊर्वन्तः पट्टिका (Gracilis), पे० ३ जानुकर्षणी कलाकल्पा (Seminiembranosus), पे० ४ जंघापुरोगा (Tibialis Anticus), पे०५ द्विशिरस्का (Biceips), पे० ६ पादांगुलीप्रसारणीदीर्घा (Extonsor Longus Digitorum), पे० ७ पादविवर्त्तनी दीर्घा, पे०८ पादविवर्त्तनी ह्स्वा, पे० १० पादविवर्त्तनी तृतीया (Peroneus Longus, Brevis and Tertius), पे० ९ पादांगुष्टप्रसारणी दीर्घा (Extonsor Hallucis Longus) ९ इत्यंकितेऽवकाशे जंघान्तराला कला।

जंघास्थियां

जंघास्थियां—दो हैं। एक जंघास्थि और दूसरी अनुजंघास्थि। साथ छोटे कपालके आकारकी एक जान्वस्थि है, जो कि जङ्घास्थियों के उपर जानुसन्धि के आगे की ओर रहती है।

जङ्घास्थि[1]—ऊर्वस्थि से उतर कर सब से लम्बी नलकास्थि है। इसके तीन भाग हैं—दो प्रान्त और मध्यनलक। इसके उपर के प्रान्त में दोनों पार्श्वों में दो उभार हैं। (५ वां चित्र १-२) इनके उपर दो सन्धि चिन्ह हैं, जो कि ऊर्वस्थि के अधोभागवर्त्ती दोनों कन्दों के साथ जुड़ने के लिये हैं। (५ वां चित्र सं०)। इन दोनों चिन्हों के बीच में दो मुख वाला कण्टक है (इसी चित्र में—क),—जिस से कि सन्धि के अन्दर रहने वाली अर्द्ध चन्द्राकार दो तरुणास्थियां जुड़ती हैं। और इसके आगे एवं पीछे सन्धि के अन्दर रहने वाली स्वस्तिक स्नायु के दोनों छोर लगते हैं। ऊर्द्ध्व-भाग के सामने में एक अर्बुद है (५ वां चित्र में ३), जिसके चारों ओर जानुकपालबन्धनी स्नायु लगती है। इसके ऊपर सामने में जान्वस्थि से मिलने के लिये

१ जंघास्थि—Tibia.

सन्धि चिन्ह हैं। ऊर्द्ध्व प्रान्त के पीछे जानुपश्चिम खात है, यहांपर पश्चिमा स्वस्तिक स्नायु लगती है। इसी के उर्ध्वप्रान्त की अन्तःसीमा में एक सीता दीखती है। इस पर जानुकर्षणी कलाकल्पा[1] नामकी पेशी के कण्डरा की छोर लगती है। इस की वाह्यसीमा में और पिछले भाग में एक छोटा सन्धि चिन्ह है (५ वां चित्र में ४), जहां पर अनुजङ्घास्थि का शिर जुड़ता है।

यङ्घास्थि का अधःप्रान्त—यह उपर के प्रान्त से छोटा है। इसके पीछे की ओर एक लम्बी सीता दीखती है। जिस में दीर्घा पादांगुष्ठ संकोचनी पेशी की कण्डरा की अन्तिम छोर लगती है। इसके वाह्य पार्श्व में अनुजङ्घास्थि के अधःप्रान्त से मिलने के लिये त्रिकोणाकार सन्धि चिन्ह है। (५ वां चित्रमें ५)। इसके अधःप्रान्त के नोचे के प्रदेश में खातोदर सन्धि चिन्ह (५ वां चित्रमें ६) है। जहां पर कूर्च्चशिर अस्थि से मिलती है। इसी के नीचले प्रान्त की अन्तःसीमा में अन्तर्गुल्फ को बनाने वाला एक प्रवर्द्धन है। इसी का अन्तःसीमा में कूर्चशिर की वाह्य सीमा से मिलने के लिये एक सन्धि चिन्ह है। इस अन्तर्गुल्फ के प्रवर्द्धन के पश्चात् भाग में एक सीता है, जिस मे जङ्घानुगा और दीर्घा पादांगुलि संकोचनी पेशीओं की कण्डराओं की छोरें गुजरती हैं। यहां पर प्रवर्द्धन में गुल्फ-सन्धि वन्धनी स्नायु लगती हैं।

मध्यनलक—(काण्ड) थोड़ा सा वक्र और वाह्य सीमा में खातोदर है। इस अस्थि की तीन धारायें[2] हैं। इन में से सामनेकी धारा त्वचा के नोचे अनुभव की जा सकती है। वाह्य सीमा की धारा पर दोनों अस्थियों के वीच में रहने वाली जङ्घान्तराला[3] कला लगती है। (५ वां चित्र में ६)। और पश्चिम धारा पर जङ्घा की पश्चिम पेशीयां लगती हैं।

अनुजंघास्थि—(५वां चित्र) लम्बी, छड़ी के आकार की, जङ्घास्थि के साथ रहने वाली, और जङ्घा को बनाने वाली दूसरी अस्थि है। इसके भी तीन भाग हैं—दो प्रान्त और एक मध्यनलक।

ऊर्द्ध्व प्रान्त—यह वाहर और पश्चिम में जङ्घास्थि के ऊपर के भाग से मिलता है (५ वां चित्र में ४)। इसका वाह्यसीमा में (५ वां चित्र ८) "जानुसन्धिबन्धनी" नामकी दीर्घ स्नायु के लगने के लिये एक उभार है। इसके पीछे की ओर चूड़ाकार प्रवर्द्धन है, जिस के साथ "द्विशिरस्का"[4] पेशी और "जानुसन्धिबन्धनी" ह्रस्व स्नायु जुड़ती है।

---

१ Semimembranosus (अर्द्धकलाकार). २ Borders. ३ Interosseus Membrane. ४ Biceps muscle.

अधःप्रान्त—इसके द्वारा बहिर्गुल्फ बनता है। इसके अन्तःप्रदेश में कूर्च्चशिर से मिलने के लिये त्रिकोणाकार सन्धि चिन्ह है। यहां पर एक दूसरा सन्धि चिन्ह जङ्घास्थि के निचले भाग के बाह्य पार्श्व से मिलने के लिये है। पीछे की ओर एक सीता है,—जिस में "पादविवर्त्तनी" नाम की दोनों पेशीयों की कण्डरायें गुजरती हैं। और इसके चारों ओर बहिःसीमा की गुल्फ सन्धि-बन्धनी स्नायु जुड़ती है।

मध्यनलक—कुछ मरोड़ा हुआ और तीन धाराओं वाला होता है। इसकी अन्तःसीमा में जो रेखा दीखती है यहां पर जङ्घान्तराला कला लगती है। इस मध्यमनलक में जङ्घा की आठ पेशीयां संयुक्त होती हैं। इनका विस्तार पेशीखण्ड में आयेगा।

[षष्ठ-चित्र—जान्वस्थि।]

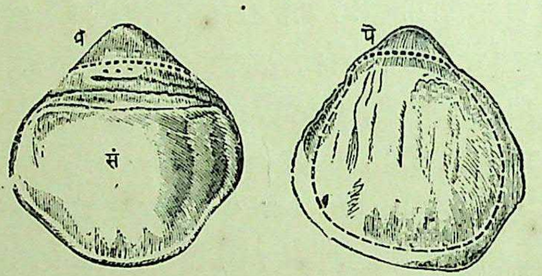

[पार्श्वका भाग] [सामनेका भाग]

जान्वस्थि[1]—(६ ठा चित्र) प्रायः गोलाकार, जानु के सन्मुख भाग में स्थित कपालास्थि है। कितनों का विचार है कि सक्थिप्रसारणी पेशीयों की सम्मिलित कण्डरा के छोर पर रहनेवाली बड़े आकार की चणकास्थि है। जान्वस्थि के सामने का भाग कुछ ऊँचा नीचा है। यहांपर सक्थि प्रसारणी की मिश्रित कण्डरायें[2] लगती हैं। (६ ठा चित्र पे०) पीछे का भाग बीच से उन्नत और सन्धि चिन्ह वाला है (६ ठा चित्र सं०) सन्धि चिन्ह का ऊपर का आधा भाग ऊर्वस्थि के निम्न छोर के सन्मुखवर्त्ती भाग से जुड़ता है, और निचला आधा भाग जङ्घास्थि के ऊपर के भाग के सन्मुखवर्त्ती भाग से संयुक्त होता है। जान्वस्थि के चारों ओर जानुसन्धि के सन्मुख भाग को ढांपनेवाला स्नायु प्रच्छद जुड़ता है।

---

१ Patella. २ ऊरुपिण्डिका कण्डरा।

ऊर्वस्थि

[७म चित्र]

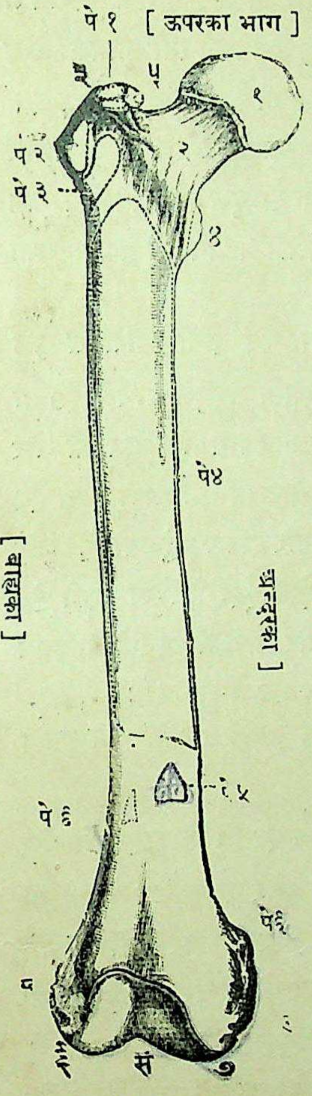

[नीचेका भाग]

ऊर्वस्थि[1]—(७ वां चित्र) शरीर की सब अस्थियों में सबसे दृढ़ एवं सबसे लम्बी तथा बहुत भार को सहनेवाली है। यह प्रायः गोल बांस के आकार की और कुछ टेढ़ी होती है। यह अस्थिपिञ्जर में श्रोणि के पार्श्व से लेकर जानुसन्धि तक तिरछी गई है, और नलकास्थियों की भांति इसके भी तीन भाग हैं—यथा—ऊर्द्ध प्रान्त, अधःप्रान्त और मध्यनलक।

ऊर्द्ध प्रान्त में दर्शनीय— प्रायः गोल मुण्ड (७ वां चित्र में १), इसके नीचे ग्रीवा (७ वां चित्र में २), इसके नीचे शिखर के आकारवाले, पीछे को मुख किये हुए महाशिखरक और लघुशिखरक नाम के दो प्रवर्धन (७ वां चित्र में ३-४) हैं।

<u>मुण्ड</u>[2]—(७ वां चित्र में १) इसमें प्रायः गोलाकार सन्धि चिन्ह होता है। यह उदूखल नामक वंक्षणसन्धि में घूमता है। इसके मध्यमें एक छिद्र होता है, जिसमें वंक्षणसन्धि की मध्यवर्त्ती स्नायुरज्जु जुड़ी रहती है।

<u>ग्रीवा</u>[3]—(७ वां चित्र में २) ऊर्वस्थिके ऊर्द्ध प्रान्त के पार्श्वसे टेढ़ा, उठा हुआ, ऊपर और अन्तर्मुख एक प्रवर्धन है। ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती जाती है, यह सीधा और भंगुर होता जाता है। इसमें अस्थिधमनीयों के बहुत से छिद्र दिखाई देते हैं।

<u>महाशिखरक</u>[4]—(७ वां चित्र में ३) मध्यनलक का शिखर बना हुआ, प्रायः चतुष्कोण प्रवर्धन है। जिसका बाहर का पार्श्व विषम है। इस विषम पार्श्व के एक भाग का आश्रय लेकर श्लेष्मधर कलापुटकके व्यवधान से "बड़ी नितम्बपिण्डिका[5]" नाम की पेशी गुजरती है। यहांपर छः नितम्ब-पेशीयां लगती हैं।

व्याख्या—१ मुण्ड, २ ग्रीवा, ३ महाशिखरक, ४ लघुशिखरक, ३—४ अंको के मध्यवर्त्ती सामने की रेखा शिखरान्तराला नाम की है। ५ महाशिखरक के आगे में स्थित कोटर, ६—७ दोनों उपार्बुद। ८—९ दोनों महार्बुद। सं—जानुसन्धि चिन्ह।

पेशीयां निम्न स्थानोंपर लगती हैं। पे० १ शुण्डिका, इसीके नीचे अन्तःस्था श्रोणिगवाक्षिणी, और दोनों यमला पेशी ; पे० २ मध्यमा नितम्बपिण्डिका ; पे० ३ ऊरुप्रसारणी अन्तःस्था ; पे० ४ ऊरुप्रसारणी मध्यस्था ; पे० ५ जानुकोचकर्षणी ; पे० ६ गरिष्ठा ऊरुग्रहिनी।

---

१ Femur. २ Head. ३ Neck. ४ Trochanter Major. ५ Gluteus Maximus.

महाशिखरककी अन्तः सीमामें अंगुलीके अग्रभागके घुसने योग्य एक कोटर है (७ वां चित्र ५), यहां पर 'वहिःस्था श्रोणिगवाक्षिणी[1] पेशी' संयुक्त होती है।

लघुशिखरक[2]—(७ वां चित्र में ४) ऊर्वस्थिमें ग्रीवाकी जड़के नीचे पश्चिम में स्थित छोटा प्रवर्धन है। यहां पर (७ वां चित्र में ४) 'कटिलम्बिनी[3]' नामकी पेशी लगती है। और इस शिखर के नीचे 'श्रोणिपक्षिणी[4]' नाम की पेशी संयुक्त होती है।

इन दोनों शिखरों के बीच में आगे और पीछे 'शिखरान्तराला' नाम की दो रेखायें हैं। इनके साथ वंक्षणसन्धि को ढांपनेवाले स्नायुकोष के सम्मुख और पिछला भाग संयुक्त होते हैं। 'पश्चिम शिखरान्तराला' नाम की रेखा नीचे मध्यनलक तक पहुंचती है। उसपर 'ऊरुचतुरस्रा[5]' नाम की पेशी लगती है।

मध्यनलक—सामने से धनुष की भांति कुछ टेढ़ा एवं दोनों छोरों से कुछ फैला हुआ और नीचे से प्रायः त्रिकोणाकार होता है। इसके सम्मुख भागमें (७ वां चित्र में पे ४) 'मध्यस्था ऊरुप्रसारिणी[6]' पेशी होती है। मध्यभाग में पश्चिम की ओर 'प्राकारिका[7]' नामकी रेखा है,—जो ऊपर और नीचे दो धाराओं में विभक्त होती है। इनमें से ऊपरकी दोनों धारायें महाशिखरक और लघुशिखरक तक पहुंचती हैं, और नीचेकी दोनों धारायें ऊर्वस्थिके अधःप्रान्तों में स्थित बड़े अर्वुदों से मिल जाती है। इसी चतुर्भुजी प्राकारिका रेखाके प्रान्त भागों में और नीचे में ऊरुके पश्चिम भाग की सब पेशीयां लगती हैं। इनका विस्तार पेशी खण्ड में आवेगा।

अधःप्रान्त—इसमें देखने योग्य दो महार्बुद (७ वां चित्र में ८-६), दो उपार्बुद (७ वां चित्र में ६-७) और एक अर्बुदान्तराल है।

महार्बुद[8]—दो हैं, इनको कन्द भी कहते हैं। यह अन्दर और वाहर की ओर स्थित हैं। इनसे जानुसन्धि वनती है। इनके पीछेकी ओर एक कोटर है, जिसमें जानुसन्धिकी मध्यवर्त्ती स्वस्तिक स्नायु प्रविष्ट होती है। वहांपर ही ऊपर दोनों पार्श्वोंमें 'जङ्घापिण्डिका[9]' नामकी पेशीके दोनों सिरे लगते हैं। इसके वीचसे 'जानुपृष्ठिका' नामकी धमनीका स्थान है। वाह्यार्बुदके पार्श्वमें 'जानुपृष्ठिका[10]' पेशी लगती है, दोनों अर्बुदों के वीच में सामने की ओर प्रायः त्रिकोणाकार सन्धि चिन्ह है। इसका आश्रय करके जानुकपाल की सन्धि वनती है।

उपार्बुद[11]—दो हैं। इन पर जानुसन्धि वन्धनी दो स्नायुरज्जु लगती हैं। इनमें से अन्दर की ओर के अर्वुद पर मटरके समान उठा हुआ भाग है। (७ वां चित्र में पे० ६) यहां पर 'गरिष्ठा ऊरूव्यूहिनी[12]' पेशी लगती है।

---

१ Obturator Externus. २ Trochanter minor. ३ Psoas Magnus. ४ Iliacus. ५ Quadratus Femoris. ६ Crureus or Vastus Intermidis. ७ Linea Aspera. ८ Condyles. ९ Gastrocnimius. १० Poplitieus. ११ Tuberosities. १२ Adductor Magnus.

एक सक्थि की तीस अस्थियों का वर्णन हो गया—इसी प्रकार दूसरी सक्थि में भी जानना चाहिये।

बाहु की अस्थियां—

प्रत्येक बाहु में तीस अस्थियां हैं। यथा—अंगुलीनलकों में चौदह, करतल में पांच शलाकायें, मणिवन्ध में आठ कूर्चास्थियां, इस प्रकार प्रत्येक हाथ में सत्ताईस अस्थियां हैं। प्रकोष्ठ में दो, प्रगाण्ड में एक अस्थि है। प्रथम करास्थियों का वर्णन—

(आठवां चित्र—हाथ की अस्थियां।)

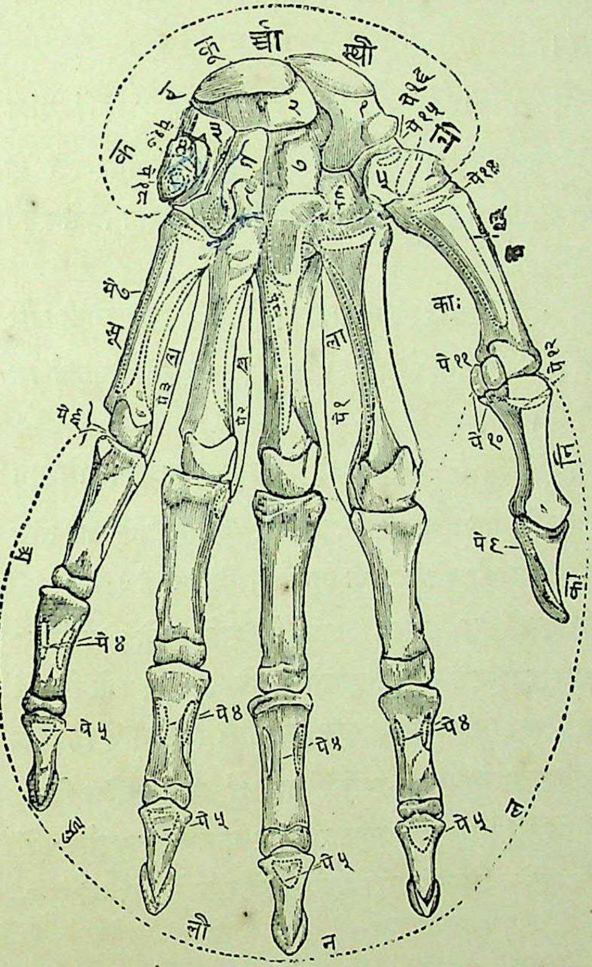

अंगुलीनलक—

प्रत्येक हाथ की अंगुली में तीन तीन और अंगुष्ठ में दो 'अंगुलीनलक'[1] हैं। इस प्रकार प्रत्येक हाथ में चौदह अंगुलीनलक हैं। यह तीन श्रेणियों में बंटे हुए हैं। अग्रिम श्रेणी में पांच, मध्य श्रेणी में चार, और पश्चिम श्रेणी में पांच हैं। इनमें से अग्रिम श्रेणी के अंगुलीनलक

व्याख्या—१ नौनिभ। २ अर्द्धचन्द्र। ३ उपलक। ४ वर्त्तुलक। ५ पर्य्याणक। ६ कूटक ७ मध्यकूटक। ८ फणाधर—ये आठ हाथकी कूर्चास्थियां हैं।

पेशीयां—पे० १, पे० २, पे० ३—यहां पर अग्रिमा शलाकान्तरीया पेशी लगती हैं, पे० ४ अङ्गुली संकोचनी मध्य पर्व्विका, पे० ५ अङ्गुली संकोचनी अग्रपर्व्विका, पे० ६ कनिष्ठापकर्षणी और ह्रस्वा कनिष्ठा संकोचनी, पे० ७ कनिष्ठा मूलकर्षणी, पे० ८ अङ्गुष्ठमूलकर्षणी, पे० ९ अङ्गुष्ठ संकोचनी दीर्घा, पे० १० अङ्गुष्ठ संकोचनी ह्रस्वा, पे० ११ अङ्गुष्ठमूलकर्षणी, पे० १२-पे १३ अङ्गुष्ठापकर्षणी, पे० १४-पे० १५ अङ्गुष्ठ जापिनी, पे०१६ अङ्गुष्ठ प्रसारणी दीर्घा, पे० १७ पणिसंकोचनी अन्तःस्था, पे० १८ कनिष्ठापकर्षणी।

१ अंगुलिनलकानि = Phalanges.

नखों को धारण करने के लिये आगे से फैले हुए हैं, और पीछे की ओर मध्य श्रेणी के अंगुली नलकों से मिलते हैं, परन्तु अंगुष्ठ में मध्यम अंगुलीनलक नहीं होने से वह पश्चिम श्रेणी के अंगुलीनलक से मिलता है। मध्य श्रेणी के अंगुलीनलक आगे और पीछे दोनों ओर अंगुली नलकों से सन्धियुक्त होते हैं। और पश्चिम श्रेणी के पांचों अंगुलीनलक आगे मध्यम अंगुलीनलकों से और पीछे मूलशलाकाओं से संयुक्त होते हैं।

करांगुलीमूलशलाका[1]—प्रत्येक हाथ में अंगुलियों के मूल में पांच शलाकायें हैं। इनके ही द्वारा करतल बनता है। यह पीछेकी ओर कूर्चास्थियों से और सामने पश्चिम श्रेणी के अंगुलीनलकों से संयुक्त होती हैं। इनकी विशेषतायें यह हैं—

प्रथमा—अंगुष्ठमूलशलाका—यह मूलशलाकाओं में सबसे छोटी और मोटी है। इसकी जड़ में एक सन्धि चिन्ह होता है। जिस चिन्ह से यह पर्य्याणक नाम की कूर्चास्थि से मिलती है।

द्वितीया—तर्ज्जनीमूलशलाका—इसकी जड़ में सन्धि के चार निशान होते हैं, जिनके द्वारा यह क्रमसे पर्य्याणक, कूटक और मध्यकूटक—इन तीन कूर्चास्थियों से एवं मध्यमामूलशलाका की जड़ के पार्श्व से मिलती है।

तृतीया—मध्यमामूलशलाका—इसकी जड़ में सन्धि के तीन चिन्ह होते हैं। मध्य चिन्ह के द्वारा मध्यकूटक नामक कूर्चास्थि से एवं पार्श्व के चिन्हों द्वारा तर्जनी और अनामिका की मूलशलाकाओं के मूल-पार्श्वों से मिलती है।

चतुर्थी—अनामिकामूलशलाका—इसकी जड़ में चार सन्धि चिन्ह होते हैं। जिन में से बीच के चिन्हों द्वारा मध्यकूटक और फणधर कूर्चास्थियों से मिलती है, और पार्श्व के दो सन्धि चिन्हों द्वारा मध्यमा और कनिष्ठका की मूलशलाकाओं से मिलती है।

पञ्चमी—कनिष्ठामूलशलाका—इसकी जड़ में दो सन्धि चिन्ह होते हैं। जिन में से एक फणधर से और दूसरा अनामिकामूलशलाका की जड़ के पार्श्व से मिलने के लिये है।

यह करतल की अस्थियों की व्याख्या हो चुकी। इनका आपस में सम्बन्ध याद करने के लिये 'पादास्थि' के श्लोकों में "पादमूलशलाका" के स्थान पर "करमूलशलाका" यह पाठ बदल लेना चाहिये।

---

१ करांगुलीमूलशलाका = Metacarpals.

कूर्चास्थियां[1]—इनके द्वारा मणिबन्ध बनता है। ये पतली, छोटी और विषम होती हैं। प्रत्येक हाथ में इनकी संख्या आठ हैं। मूलशलाकाओं का अधिष्ठान भूमि होने से प्राचीन आचार्य्यों ने इनको 'शलाकाधिष्ठान' नाम दिया है। ये दो श्रेणियों में विभक्त हैं। ऊपर की श्रेणी में क्रम से नौनिभ, अर्द्धचन्द्र, उपलक और वर्त्तुलक—ये चार अस्थियां हैं। निचली श्रेणी में पर्य्याणक, कूटक, मध्यकूटक और फणधर—ये चार अस्थियां हैं। इनमें ऊर्द्ध्व श्रेणी की चार अस्थियों में से पहली तीन मणिबन्ध सन्धि में भाग लेती हैं। चौथी वर्त्तुलक उक्त सन्धि से बाहर रहती है। इसको कोई कण्डरा की चणकास्थि मानते हैं।

नौनिभ[2]—(८ वां चित्र में १) नाव के आकार की है। ये इसी नाम की पांव की कूर्चास्थि के सदृश है। इसके बाहर की ओर एक छोटा अर्बुद होता है; प्रकोष्ठास्थि के निचले भाग से मिलने के लिये ऊपर की ओर सन्धि चिन्ह होता है। इसके पार्श्व में खातोदर सन्धि चिन्ह है, यहां पर अर्द्धचन्द्र और मध्य कूटक के पार्श्वों से सन्धि होती है। नीचे की सीमा में पर्य्याणक और कूटक अस्थियों के ऊर्द्ध्व प्रान्तों से मिलने के लिये सन्धि चिन्ह हैं। इस अस्थि के पश्चिम भाग में मणिबन्ध स्नायु सूत्रों के लगने के लिये ऊँची नीची रेखा है।

अर्द्धचन्द्र[3]—(८ वां चित्र में २) इस अस्थि के बाहर की ओर अर्द्धचन्द्र के आकार का सन्धि चिन्ह होता है। जिसके द्वारा नौनिभ अस्थि का संयोग होता है। इसके सिर पर दूसरा सन्धि चिन्ह बहिःप्रकोष्ठास्थि के प्रान्त से मिलने के लिये है। अन्य सन्धि चिन्हों द्वारा यह फणधर और मध्यकूट नामक कूर्चास्थियों से संयुक्त होता है।

उपलक[4]—इस अस्थि की पृष्ठ कछुवे की पीठ की भांति होती है। इसके ऊपर वाले सन्धि चिन्ह से मणिबंध सन्धि के बीच में रहने वाली त्रिकोण तरुणास्थि मिलती है। तीन और सन्धि चिन्ह हैं, वहां पर क्रम से अर्द्धचन्द्र, फणधर और वर्त्तुलक नाम की कूर्चास्थियां संयुक्त होती हैं।

वर्त्तुलक[5]—प्रायः गोल और सबसे छोटी कूर्चास्थि है। इसमें उपलक से मिलने के लिये एक सन्धिचिन्ह होता है।

---

१ Carpal Bones. २ नौनिभ=Scaphoid. ३ अर्द्धचन्द्र=Semilunar. ४ उपलक=Cuneiform. ५ वर्त्तुलक=Pisiform.

पर्य्याणक[1]—इसके पीछे की ओर पर्य्याणक (घोडेकी जीन) के आकार का सन्धि चिन्ह होता है, जिस पर अंगुष्ठमूलशलाका का मूल मिलता है। तीन और सन्धि चिन्ह क्रमशः नौनिभ, कूटक और तर्जनीमूलशलाका के मूलों से मिलने के लिये होते हैं। इसके बीच में गहरी सीता होती है, जो कि 'वहिःस्था पाणि-संकोचनी'[2] पेशी की कण्डरा के गुजरने के लिये है।

कूटक[3]—कूट के आकार की छोटी कूर्चास्थि है। इसमें चार सन्धि चिन्ह होते हैं। इनमें ऊपर की ओर का सन्धि चिन्ह नौनिभ के लिये, वहिःपार्श्व का पर्य्याणक के लिये, अन्तःपार्श्व का मध्यकूट के लिये और नीचे की ओर का तर्जनी की मूलशलाका की जड़ के मिलने से लिये है।

मध्यकूट[4]—सबसे बड़ी कूर्चास्थि है। इसके ऊपर एक सन्धि चिन्ह वाला मुण्ड है, जिस पर अर्द्धचन्द्र नाम की कूर्चास्थि जुड़ती है। वाह्य पार्श्व में दो भागों में विभक्त हुआ सन्धि चिन्ह है, जिस पर क्रमशः नौनिभ और कूटक अस्थियां मिलती हैं। अन्तःसीमा का सन्धि चिन्ह फणधर के पार्श्व से मिलने के लिये है। नीचे का सन्धि चिन्ह मध्यमा और अनामिका मूलशलाकाओं की मूल से मिलने के लिये है।

फणधर[5]—सर्प के फण के समान प्रवर्धन वाली और प्रायः त्रिकोण होती है। इसका ऊपर का नोकदार भाग मध्यकूट और उपलक अस्थि के बीच में घुसा होता है, और यह दोनों पार्श्वों में इन दोनों अस्थियों से मिलती है। नीचे की ओर दो भागों में विभक्त सन्धिचिन्ह अनामिका और कनिष्ठिका की मूलशलाकाओं की जड़ से मिलने के लिये होता है। इसके फण वाले भाग में 'अंगुलीसंकोचनी' पेशीयों की कण्डरायें गुजरती हैं।

मणिवन्ध की सम्पूर्ण अस्थियां सन्धि चिन्हों के विना और जगह मणिवन्ध सन्धि सूत्रों के बांधने के लिये ऊँची नीची होती हैं। इस प्रकार हाथ की सब अस्थियां कही गईं हैं।

---

१ पर्य्याणक = Trapezium. २ Flexor Carpi Radialis. ३ कूटक = Trapezoid. ४ मध्यकूट = Os magnum ५ फणधर = Unciform.

प्रकोष्ठास्थियां—प्रकोष्ठ में दो अस्थियां हैं, जो प्रायः बराबर मोटाई की हैं; इनमें से एक बाहर की ओर अंगूठे की तरफ रहती है—यह 'बहिःप्रकोष्ठास्थि' है। दूसरी प्रकोष्ठ के अन्दर की ओर कनिष्ठिका के पार्श्व में रहनेवाली 'अन्तः-प्रकोष्ठास्थि' है। इनमें से प्रथम निचले सिरे से मोटी है, इससे मणिबन्ध सन्धि बनती है। दूसरी अस्थि ऊर्द्ध्व प्रान्त में मोटी है, जिससे कूर्परसन्धि बनती है। चरक में इन दोनों को "अरत्नि"[1] नाम दिया गया है।

[नवां चित्र—प्रकोष्ठास्थि]
[ऊपरका भाग]

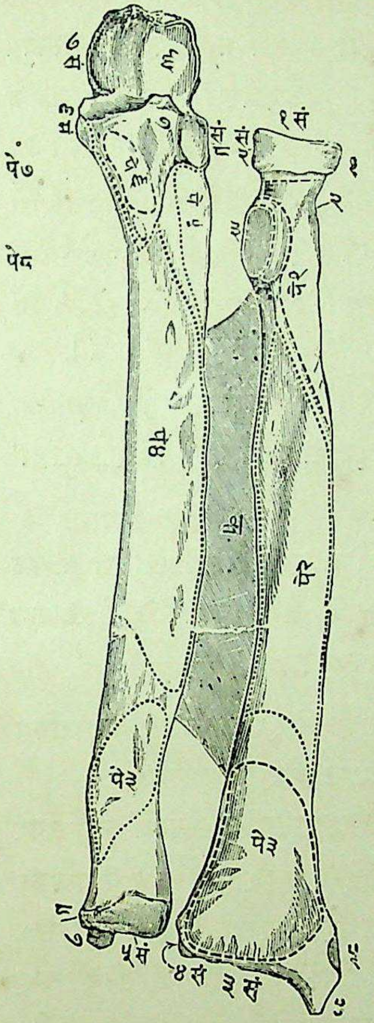

[नीचेका भाग]

बहिःप्रकोष्ठास्थि[2]—प्रकोष्ठ का बहिर्भाग बनाने वाली नलकास्थि है। इसके तीन भाग हैं,—ऊर्द्ध्व प्रान्त, अधः-प्रान्त और मध्यनलक।

<u>ऊर्ध्वप्रान्त</u>—इसका मुण्ड चक्राकार और खातोदर होता है। इस खात पर प्रगण्डास्थि के निचले भागकी कन्दली मिलती है। मुण्ड की अन्तः सीमा में अर्द्ध चन्द्राकार चक्रनेमि नामक सन्धि चिन्ह है (६ वां चित्र में २)—यह अन्तः प्रकोष्ठास्थि के ऊर्द्ध्व प्रान्त से मिलता है। इसीको आश्रय करके इस अस्थि का मुण्ड कूपर सन्धि में घूमता है।

व्याख्या—बहिःप्रकोष्ठास्थि--१ चक्रमुण्ड। २ ग्रीवा। १ सं० ऊर्वस्थि की कन्दली से मिलने वाला कोर। २ सं० अन्तःप्रकोष्ठास्थि के पार्श्व से मिलने वाला भाग। ३ अर्बुद का उठा हुआ भाग—द्विशिरस्का पेशी के लगने के लिये। ४ बहिर्मणिक। ४ सं० अन्तःप्रकोष्ठास्थि से मिलने का चिन्ह। ३ सं० मणिबन्ध का सन्धि चिन्ह। ५ सीता कण्डरा के घूमनेके लिये। अन्तःप्रको-ष्ठास्थि। ६ कूर्परकूट। ७ चञ्चुप्रवर्धन। ८ मणिमुण्ड। ९ अन्तर्मणिक। ५सं० बहिःप्रकोष्ठका सन्धि सूचक। ८ सं० चक्रनेमि गर्त्त का सन्धि चिन्ह। ७ सं० प्रगण्डास्थि के डमरु प्रवर्धन से मिलने वाला भाग। पे० १ पे० ५ इनपर करोत्ताननी, पेशी; पे०२ अङ्गुलीसंकोचनी दीर्घा, पे०३ करविवर्त्तनी दीर्घा, पे० ४ अंगुली संकोचनी अग्रपर्व्विका, पे० ६ कूर्पर द्वारिका, पे० ७ अंगुलीसंकोचनी मध्यपर्व्विका; पे० ८ करविवर्त्तनी अधरा। ३ इस अंक के चारों ओर द्विशिरस्का। क—प्रकोष्ठान्तराला कला।

---

१ देखिये चरक शरीरस्थान अध्याय ७। २ बहिःप्रकोष्ठास्थि=Radius.

मुण्ड की जड़ में ग्रीवा की भांति ग्रीवा है। इसके नीचे अर्बुदाकार उभार है। (६ वां चित्र में २-३) यहां पर 'द्विशिरस्का'[1] पेशी की कण्डरा का अन्तिम भाग लगता है।

अधःप्रान्त—नीचे अर्द्धचन्द्र और नौनिभ से मिलने के लिये त्रिकोणाकार एवं उठे हुवे किनारों वाला सन्धि चिन्ह है। अन्तःप्रकोष्ठास्थि के अधःप्रान्त के पार्श्व से मिलने के लिये अन्तःसीमा में एक दूसरा सन्धि चिन्ह है (६ वां चित्र में ४ सं०) बहिः पार्श्व में त्रिकोणाकार 'बहिर्मणिक' नामक प्रवर्धन है (६ वां चित्र में ४), जिसपर मणिबन्ध सन्धि की बाह्य स्नायु संयुक्त होती हैं। इसको त्वचा के नीचे अनुभव कर सकते हैं। इसके बाहर-पीछे की ओर सीतायें हैं। (६ वां चित्र में ५)—इनमें 'अंगुष्ठ प्रसारणी' पेशीयों की कण्डरायें आती जाती हैं।

मध्यनलक—बहिःप्रकोष्ठास्थि का मध्यनलक तीन धारों वाला, थोड़ा सा टेढ़ा और अन्तः पार्श्व में खुरदरा है। इसकी खुरदरी धारा पर 'प्रकोष्ठान्तराला'[2] कला लगती है। (६ वां चित्र में क)

मध्यनलक के सामने की ओर अस्थि धमनी के प्रवेश के लिये एक या अधिक छिद्र दिखाई देते हैं। इस मध्यनलक में प्रकोष्ठ की बारह पेशीयों में से आठ पेशीयां लगती हैं। जिनका वर्णन आगे दिया जायगा।

अन्तःप्रकोष्ठास्थि[3]—यह प्रकोष्ठ में अन्दर की ओर रहने वाली नलकास्थि है। इसके भी तीन भाग हैं—ऊर्द्ध्वप्रान्त, अधःप्रान्त और मध्यनलक।

ऊर्ध्वप्रान्त—यह अधिक मोटा और दो प्रवर्धन वाला है। इनमें से ऊपर के प्रवर्धन का नाम कूर्परकूट है (६ वां चित्र में ६), यह सर्प के फण के समान, सम्मुखवर्त्ती, बीच से उठे सन्धि चिन्ह से चिन्हित है। इसके शिखर की नोक प्रगण्डास्थि के अधःप्रान्तवर्त्ती पश्चिम खात में टिकती है। यहां का सन्धि चिन्ह प्रगण्डास्थि के अधःप्रान्तवर्त्ती डमरुक के आकार वाले सन्धि चिन्ह से मिलता है। इस प्रवर्धन के पीछे की ओर कूर्पर को बनाने वाला उभार है, जिसको त्वचा के नीचे टटोल सकते हैं। इसी प्रवर्धन की पार्श्ववर्त्ती रेखाओं पर 'त्रिशिरस्का'[4] पेशी लगती है। कूर्परकूट के जानुकपाल के समान होने से प्राचीन आचार्यों ने इसकी भी 'कूर्पर कपाल' संज्ञा कर दी है। बाल्यावस्था में यह अलग रहता है।

यहांपर नीचे की ओर चञ्चु के आकार का 'चञ्चु प्रवर्धन' है। इसको सम्मुखवर्त्ती नोक आगे से त्रिकोणाकार और शिर पर सन्धि चिन्ह वाली है। यह प्रग-

---

१ Biceps. २ Inter-ossecus membrne. ३ Ulna. ४ Triceps.

एडास्थि के अधःप्रान्तवर्त्ती डमरुक के आकार वाले सन्धिचिन्ह का आश्रय लेकर घूमती है। इस प्रवर्धन के अगले सामने के खातमें प्रगण्डास्थि का अधःप्रान्तवर्त्ती डमरुक सन्धिचिन्ह है (६ वां और १० वां चित्र देखिये)। इसके नीचे विषम प्रदेश है। यहां पर कूर्परद्धारिका[1] नाम की पेशी लगती है (६वां चित्र में पे० ६)।

अन्तःप्रकाष्ठास्थिके ऊर्ध्वप्रान्तकी वहिःसीमामें खातोदर सन्धिचिन्ह है (६ वां चित्र में ८)। जिसका आश्रय करके वहिःप्रकोष्ठास्थिके ऊर्ध्वप्रान्तस्थित 'चक्रनेमि' अपने सन्धिचिन्ह के ऊपर घूमती है (६ वां चित्र में २)। इस खातका नाम चक्रनेमि खात है।

इन दोनों प्रवर्धनों और चक्रनेमि खातकी परिधि में कूर्परसन्धिको वांधने वाला स्नायुकोष लगता है। चञ्चुप्रवर्धन की अन्तःसीमावर्त्ती उभार एवं मूलवर्त्तिनी रेखा पर क्रमसे 'अंगुली संकोचानी अग्रपर्व्विका', और 'करविवर्त्तनी दीर्घा'[2] नामकी पेशीयों की कण्डरायें लगती हैं।

मध्यनलक—यह तीन धारों वाला एवं वहिःसीमा में तीक्ष्णधारा युक्त है, इसके सम्मुखवर्त्ती भाग के वीच में अस्थिधमनी-छिद्र है। वहिःपार्श्व-स्थित तीक्ष्णधारा पर प्रकोष्ठान्तराला कला लगती है (६ वां चित्र में क)। इस भाग में प्रकोष्ठकी वारह पेशीयों में से नौ पेशीयां लगती हैं। इनका वर्णन आगे आयेगा।

अधःप्रान्त—अन्तःप्रकोष्ठास्थि के अधःप्रान्त में एकवर्त्तुल प्रवर्धन है, उसका नाम मणिमुण्ड[3] है (६वां चित्र में २)। उसकी अन्तःसीमा में एक नोक रहती है। इसका नाम 'अन्तर्मणिक'[4] है। यहां पर मणिवन्ध सन्धि की अन्तःसीमास्थित स्नायु-रज्जु लगती है। इसके पश्चिम ओर की सीता में 'अन्तःस्था करप्रसारणी'[5] पेशी की कण्डरा गुजरती है, और सन्धिचिन्ह वाला मणिमुण्ड पाश्व में वहिःप्रकोष्ठास्थि के निचले भाग से मिलता है (६वां चित्र में ४ सं०)। इसके नीचे मणिवन्धसन्धि के वीच में रहने वाली त्रिकोण तरुणास्थि जुड़ती है (६ वां चित्र में ५ सं०)।

---

१ Brachialis. २ Flexor Sublimis Digitorum and Pronator Teres.
३ मणिक नामक प्रवर्धनके धारण करनेसे मणिमुण्ड संज्ञा है। मणिक संज्ञा चरकमें की गई है। (च० शा० ७ अ०) ४ Styloid Process. ५ Extensor Carpi Ulnaris.

[दशवां चित्र—प्रगण्डास्थि]

[ऊपरका भाग]

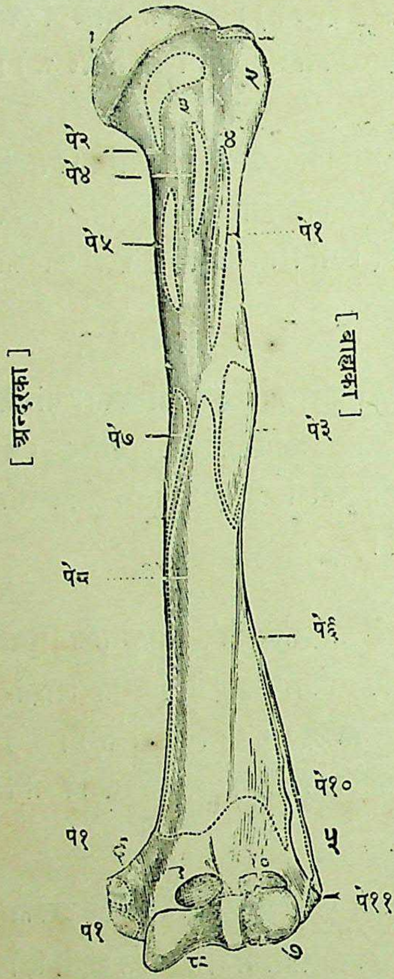

[नीचेका भाग]

प्रगण्डास्थि[1]—(१० वां चित्र) बाहुकी अस्थियों में सबसे मोटी नलकास्थि है। इसके भी तीन भाग हैं। ऊर्ध्वप्रान्त, अधःप्रान्त और मध्यनलक।

ऊर्ध्वप्रान्त—इसमें अन्दर की ओर मुख किये हुवे आधा गोलाकार मुण्ड है (१० वां चित्र १)। यह मुण्ड अंसफलक के अंसपीठ[2] में रहने वाले खात में रहकर अपने चिकने सन्धिचिन्ह से मिलता है। इसके चारों ओर अंससन्धि को बांधने वाला स्नायु कोष बंधता है।

इस मुण्ड के नीचे दो उभार हैं, एक बाह्यसीमा में और दूसरा सामनेके भाग में। वाह्यसीमा का उभार महापिण्डक, और सामने का लघुपिण्डक कहलाता है (१०वां चित्र में २-३)। इस महापिण्डक के शिखर एवं पीठ से क्रमशः 'अंसपृष्ठिका उत्तरा'[3] (१० चित्र में पे १), 'अंसपृष्ठिका अधरा'[4] और असांधरिका लध्वी'[5] तीन पेशीयां उत्पन्न होती हैं। लघुपिण्डक पर 'अंसान्तरिका'[6] नाम की पेशी लगती

व्याख्या—१ मुण्ड, २ महापिण्डक, ३ लघुपिण्डक, ४ दोनों पिण्डों के बीचमें जानेवाली परिखा, ५ बाह्यार्बुद, ६ अन्तरार्बुद, ७ कन्दली, ८ डमरुक, ९-१० सामने के दोनों गड्ढे (पुरःखात)।

पेशीयां—पे० १ अंसपृष्ठिका उत्तरा। पे० २ अंसान्तरिका। पे० ३ उरःप्रच्छदा गरिष्ठा। पे० ४ कटिपार्श्वप्रच्छदा। पे० ५ अंसाधरिका बृहती। पे० ६ अंसपिण्डिका। पे० ७ काकोष्ठिका। पे० ८ कूर्परद्वारिका। पे० ९ दीर्घा बाहुसंकोचनी। पे० १० दीर्घा करप्रसारणी। पे० ११ करप्रसारणी नामकी चार और करोत्तानती पेशी। पे० १२ दीर्घा करविवर्त्तनी। पे० १३ पाणिसंकोचनी नाम की दो पेशीयां, अङ्गुलीसंकोचनी मध्यपर्व्विका और करतलप्रसारणी पेशीयां लगती है।

---

१ Humerus २ अंसकपाल का प्रदेशविशेष का नाम अंसपीठ हैं, इसका वर्णन यथास्थान में देखिये। ३ Sup a-spinatus ४ Infra-spinatus ५ Teres-minor ६ Sub-scapularis

है (१०वां चित्र में पे० २)। दोनों पिण्डों के बीच में परिखा है (१०वां चित्र में ४)। यहां पर 'द्विशिरस्का'[१] पेशी की कण्डरा गुजरती है। इसके वाहर के किनारे पर 'गरिष्ठा उरःप्रच्छदा'[२] पेशी (१०वां चित्र में पे० ३) लगती है। इसके अन्दर के किनारे पर 'कटिपार्श्वप्रच्छदा'[३] पेशी (१०वां चित्र में पे० ४) और इसके नीचे 'अंसाधरिका वृहती'[४] (१०वां चित्र में पे०५) पेशी लगती है।

मध्यनलक—ऊपरके भाग में दण्ड के आकार का और नीचे प्रायः तीन धारों वाला होता है। इसके मध्यभाग की वाह्यसीमामें कुछ उठा हुआ स्थान होता है (१०वां चित्र में पे०६), यहां पर 'अंसपिण्डिका'[५] नाम की पेशी लगती है। इसके नीचे पश्चिम की ओर उथली सीता है जिसमें 'गम्भीरप्रगण्डिका'[६] नाम की धमनी आदि रहती है। इस सीता के किनारे से 'त्रिशिरस्का'[७] पेशी उत्पन्न होती है। इस भाग के अन्दर की ओर 'काकोष्ठिका' पेशी लगती है (१०वां चित्र में पे० ७)। मध्यनलक के निचले आधे भाग के सामने से 'कूर्परद्वारिका'[८] नाम की पेशी (१०वां चित्र में पे० ८) उत्पन्न होती है।

मध्यनलक के निचले भाग में अन्तः और वाह्यसीमा में दो धारायें हैं। वाह्य धारामें क्रमसे 'दीर्घा वाहुसंकोचनी'[१०] और 'दीर्घा करप्रसारणी'[११] पेशी (१०वां चित्र में पे० ९-१०) लगती हैं। दोनों धारायें क्रम से वाहर और अन्दर के अर्वुदों से नीचेमें मिली हुई हैं।

अधःप्रान्त—इसमें देखने योग्य क्रमशः अन्तः और वाह्यवर्त्ती दो अर्वुद, कन्दली, डमरुक, कूर्परखात और दो पुरःखात हैं। इनमें प्रथम—

वाह्यार्वुद—(१०वां चित्र में ५) वाह्यसीमा में उठा हुआ उभार है। यहां पर वहिःस्था कूर्परसन्धिबन्धनी स्नायु लगती है। सम्मिलित मूलों वाली करप्रसारणी चार पेशियां एवं 'करोत्तानी'[१२] पेशी भी यहीं से उत्पन्न होती हैं (१० वां चित्र में ११)। इसीके पीछे 'कूर्परपृष्ठिका'[१३] नाम की पेशी का प्रभव स्थान है।

---

१ Biceps. २ Pectoralis-Major. ३ Letissimus Dorsi. ४ Teres major. ५ Deltoid. ६ Arteria Profunda-Brachii and Musculo-spiral Nerve. ७ Triceps. ८ Coraco Brachialis ९ Brachialis १० Supinator Longus ११ Extensor Carpi Radials Longior १२ Supinator Brevis १३ Anconeus.

आन्तरार्बुद—(१०वां चित्र में ६) अन्तःसीमा में स्पष्ट दीखने वाला प्रायः त्रिकोणाकार अर्बुद है। यहां पर कूर्पर सन्धिकी अन्तःपार्श्व की स्नायुरज्जु लगती है। इसके ऊपर के भाग से 'दीर्घा करविवर्त्तनी'[1] पेशी उत्पन्न होती है (१०वां चित्र में पे० १२); इसके नीचे से (१०वां चित्र में पे० १३) 'पाणिसंकोचनी'[2] नाम की दो पेशियां एवं 'मध्यपर्व्विका अंगुलीसंकोचनी'[3] और 'करतलप्रसारणी'[4] पेशियां उत्पन्न होती हैं।

कन्दली—(१०वां चित्र में ७) बाह्यार्बुद के सन्मुखवर्त्ती सन्धिचिन्ह वाला भाग है, जिसका आश्रय करके कूर्परसन्धि के बीच में वहिःप्रकोष्ठास्थि का खातोदर मुण्ड घूमता है (६वां चित्र में १)

डमरुक—(१०वां चित्र में ८) डमरु के आकार का, बीच से दबा हुआ सन्धि-चिन्ह वाला भाग है। यह अन्तःप्रकोष्ठास्थि के ऊर्ध्वप्रान्तस्थित दोनों प्रवर्धनों से मिलता है। (६ वां चित्र में ६-७)

पुरःखात—सन्धिचिन्ह वाले भाग के ऊपर एवं सामने, अन्दर और बाहर की सीमा में दीखने वाले दो खात हैं। बाहु की संकुचितावस्था में इनमें क्रमसे अन्तःप्रकोष्ठास्थि के ऊर्ध्वप्रान्त में स्थित चञ्चुप्रवर्धन (६वां चित्र में ७) और वहिःप्रकोष्ठास्थि का मुण्ड लगता है।

कूर्परखात—प्रगण्डास्थि के निचले प्रान्त में पश्चिम खात है। बाहु को फैलाने पर 'कूर्परकूट[5]का अगला सिरा' यहां पर टिकता है।

एक भुजा की तीस अस्थियों की व्याख्या हो गई। इसी प्रकार दूसरी में भी समझिये। इस प्रकार चार शाखाओं की एक सौ बीस अस्थियां हुई।

इति शाखास्थिविज्ञानीय प्रथम परिच्छेद।

---

१ Pronator Teres २ Flexor Carpi Radialis and Ulnaris ३ Flexor Sublimis Digitorum ४ Palmaris Longus ५ अन्तःप्रकोष्ठास्थिका ऊर्ध्वप्रवर्धनका कूर्परकूट है [६वां चित्र में ६]।

[११ वां चित्र—पृष्ठवंश ।]

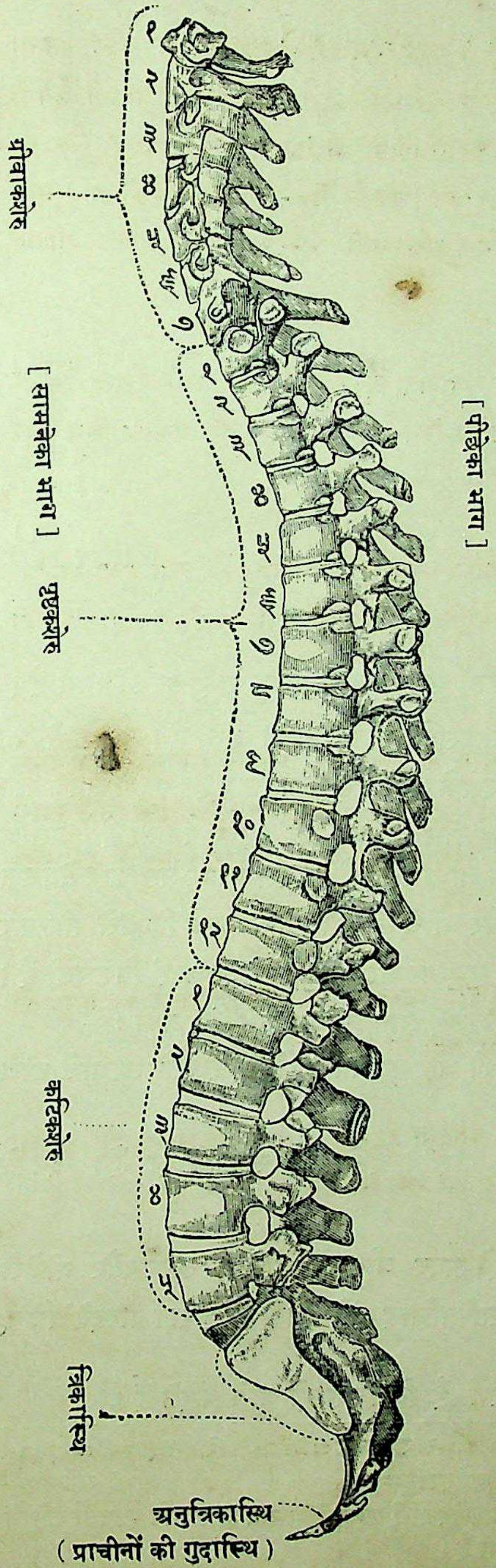

द्वितीय परिच्छेद

मध्यकाय की अस्थियां ।

पृष्ठवंश[1]—मध्य शरीर का अवलम्बन है, चारों शाखाएं और शिर इसीका आश्रय करके रहते हैं। यही सुषुम्ना काण्डको अपने अन्दर धारण करता है। यह चौबीस कशेरुवोंसे बनता है, जो कि चूड़ीके समानतरऊपर एक दूसरे पर चिने हुए हैं। अतः यह वांसके पोरों की भांति, बीचसे खोखला और उत्तरोत्तर नीचेकी ओर मोटा होता चला गया है।

यह ऊपरकी ओर शिरसे और नीचे त्रिकास्थिसे मिलता है (देखिये दूसरा कंकाल चित्र)। अस्थि पिंजर में सामने की ओर से देखने पर इसमें तीन स्थानोंपर धनुष की भांति वक्रता दिखाई देती है। इनमें ग्रीवा और कटिप्रदेश कछुवे की पीठके समान भीतर से उठे हुए हैं, और पीठ का स्थान वाहर उठा हुआ है। (११वां चित्र)।

ग्रीवा में सात कशेरु हैं, पीठ में वारह और कटि में पांच, इस प्रकार कुल मिलाकर चौबीस कशेरु हैं। त्रिकास्थि और अनुत्रिकास्थि जो क्रमशः इसके नीचे लगती हैं, वे अलग ही हैं।

कशेरुका[2]—ये पृष्ठवंशके वनाने वाले अस्थिके कड़े हैं। सामान्यतः प्रत्येक कशेरुमें मुख्यरूप से दो भाग होते हैं। एक कशेरुपिण्ड, और दूसरा प्रवर्धनोंसे युक्त कशेरुचक्र। (१२वां चित्र)

---

१ Vertebral Column or Spine.

२ Vertebrac.

(१२वां चित्र—पृष्ठकशेरुका।)

[सामने से]

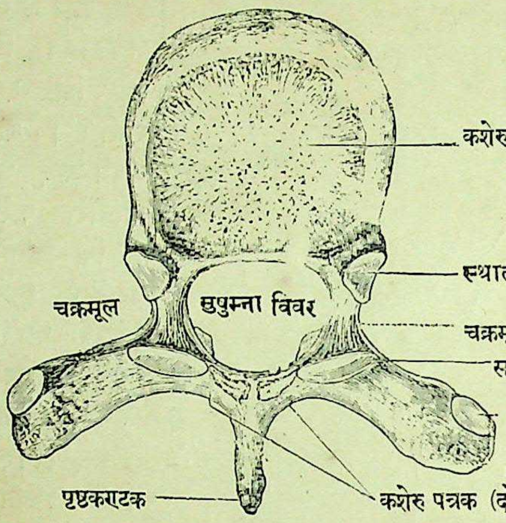

[पीछे से]

कशेरुपिण्ड[1]—यह पिण्डाकार, कम ठोस, कशेरुका सन्मुखवर्त्ती भाग है।

कशेरुचक्र[2]—इसकी व्याख्या इसके नामसे ही हो जाती है। यह कशेरुका का पश्चिमवर्त्ती परार्द्ध भाग है। इसके मध्यमें सुषुम्ना छिद्र है। यह कशेरुचक्रका कशेरुपिण्डके साथ दोनों ओर चक्रमूलोंसे मिलकर दो 'पत्रक'[3] बनाता है। प्रत्येक चक्रमूलके ऊपर और नीचो एक एक आधा छिद्र है। इस प्रकार प्रत्येक कशेरुचक्र में चार आधे छिद्र हैं। ये ऊपर और नीचेके कशेरुओंके आधे छिद्रोंसे मिलकर चार पूर्ण छिद्र बनाते हैं, जिनमेंसे सुषुम्ना की शाखाएं प्रशाखाएं निकलती हैं।

प्रत्येक कशेरुचक्र में निम्न-लिखित सात प्रवर्धन होते हैं। यथा :—

पृष्ठकण्टक[4]—यह पीछे की ओर का प्रवर्धन है। इसको त्वचाके नीचे टटोलकर अनुभव कर सकते हैं।

कशेरुबाहु[5]—ये प्रत्येक पार्श्वमें होते हैं, संख्यामें दो हैं। इनको बाहु-प्रवर्धन भी कहते हैं।

सन्धिप्रवर्धन[6]—चार हैं, दो ऊपर और दो नीचे। ऊपर और नीचेके कशेरुओंसे मिलनेके लिये इनपर सन्धिचिन्ह होते हैं। (यह सब बारहवें चित्र में देखा जा सकता है)

ये लक्षण सब कशेरुओंमें साधारण हैं, विशेष रूपसे आगे कहदे हैं।

---

१ कशेरुपिण्ड=Body of a Vertebra. २ कशेरुचक्र=Arch. ३ पत्रक=Laminae. ४ पृष्ठकण्टक=Spinus process. ५ कशेरुबाहु=Transverse process. ६ सन्धिप्रवर्धन=Articular Process. यद्यपि सब कशेरुओंमें यह बातें समान हैं, तथापि पृष्ठवर्त्ती कशेरुमें अधिक स्पष्ट होने से उसीका चित्र यहां दिया है।

[१३वां चित्र—ग्रीवाकशेरु ।]

(सामनेसे)

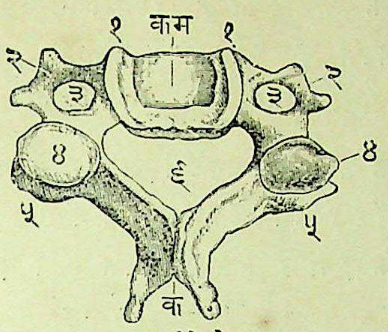

(पीछे से)

व्याख्या—क-म कशेरुपिण्ड। १-१ कशेरु पिण्ड के दोनों ओष्ठ। २-२ दोनों बाहु प्रवर्धन। ३-३ दोनों मातृका छिद्र। ४-४ ऊपरके दोनों सन्धि प्रवर्धन। ५-५ नीचेके दोनों सन्धि प्रवर्धन। ६ सुषुम्ना विवर। क—पृष्ठकण्टक।

ग्रीवाके कशेरु[१]—ग्रीवामें सात कशेरु हैं, इनको और कशेरुओं से निम्न लक्षणों द्वारा भिन्न कर सकते हैं।

[१] इन कशेरुओं का पिण्ड छोटा, अधिक ठोस, दोनों पार्श्वों में चौड़ा और ओष्ठवाला होता है। (१३वां चित्र में क-म)

[२] इनके पत्रक पतले, छोटे, और नीचे के कशेरुओं के पत्रकों को ऊपरसे ढाँपने वाले होते हैं। सुषुम्ना छिद्र त्रिकोणाकार होता है। (१३वें चित्र में ६)

[३] पृष्ठकण्टक आगेसे दो भागों में विभक्त होता है, और क्रमशः नीचे नीचे लम्बा होता चला गया है (१३वें चित्र में क)

[४] बाहु-प्रवर्धन छोटे, दो भागों में विभक्त। (१३वें चित्र में २-२) और दो 'मस्तिष्क मातृका'[२] धमनीयों के जाने के लिये दोनों पार्श्वों में छिद्र वाले होते हैं। इसलिये इन छिद्रों की (१३ वां चित्र ३-३) "मातृकाछिद्र" संज्ञा की गई है।

[५] सन्धि प्रवर्धन सबसे छोटे और उताने होते हैं। (१३वें चित्र में ४-४, ५-५)।

ग्रीवाके सात कशेरुओं में पहला, दूसरा और सातवां यह तीन कशेरु विशेषता वाले होते हैं :—

[१४ वां चित्र—प्रथम ग्रीवाकशेरु—चूड़ावलया]

(सामनेसे)

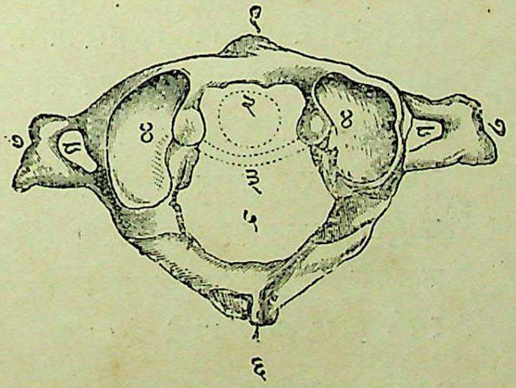

(पीछे से)

व्याख्या—१ कशेरुपिण्ड, २ दन्त प्रवर्धनसे सन्धि सूचक, ३ मध्यरज्जुका नामकी स्नायुका संस्थान सूचक ; ४-४ पश्चात् कपालकी, मूल कोटिओं से मिलने के सन्धि चिन्ह, ५ सुषुम्ना विवर, ६ पृष्ठकण्टक, ७-७ दोनों बाहु प्रवर्धन, ८-८ दोनों मातृका छिद्र।

प्रथम ग्रीवाकशेरु—चूड़ावलया[३]—यह कशेरु पृष्ठवंश की चूड़ा में कड़ेके आकारवाला है, अतः इसकी 'चूड़ावलया' संज्ञा की गई है। यह ऊपरकी ओर पश्चिम कपाल से और नीचेकी ओर 'दन्त-चूड़ा' नामकी द्वितीय ग्रीवा कशेरुका से मिलता है। इसमें ये विशेषतायें हैं :—

---

१ Cervical Vertebra. २ मस्तिष्कमातृका धमनियां = Vertebral Arteries. ३ Atlas.

[१] कशेरुपिण्ड छोटा और गुटिका के आकार का है (१४वें चित्र में)। इसके पीछेको ओर दन्तचूड़ा नामक कशेरुके दन्तप्रवर्धनसे मिलने के लिये सन्धिचिन्ह होता है। (१४वें चित्र में २ खाली स्थान)

[२] चक्रमूलके ऊपर पश्चिम कपाल की मूल कोटियों से मिलने के लिये शिम्बीबीज के आकारवाले दो सन्धिचिन्ह हैं। (१४वें चित्र में ४-४) इनके बीच में "मध्यरज्जुका" नाम की स्नायु के दोनों छोरों से मिलनेके लिये दो 'कलायक' हैं।

[३] पृष्ठकण्टक—पतला और गुटिकाके आकार का है। (१४वें चित्र में ६)

[१५ वां चित्र]

(दूसरा ग्रीवाकशेरु-दन्तचूड़ा)

पार्श्वकी ओरसे देखने पर

[ऊपरका]

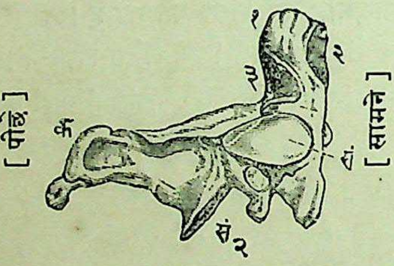

[नीचेका]

व्याख्या—१ दन्तप्रवर्धनक, २ चूडावलया नामक कशेरुका पिण्ड के सन्धि चिन्हसे मिलनेका चिन्ह, ३ दोनों मध्यरज्जुका स्नायुओंके घूमनेका खात, क—पृष्ठकण्टक, सं० १ ऊपर का सन्धिप्रवर्धन, सं० २ नीचेका सन्धिप्रवर्धन।

द्वितीय ग्रीवाकशेरु—दन्तचूड़ा[1]—

इसकी चूड़ामें दांतके समान प्रवर्धन होनेसे यह नाम दिया गया है (१५वां चित्र)। यह प्रवर्धन सुषुम्ना विवर में घुसकर चूड़ावलया के साथ सन्धिको प्राप्त होता है, इसपर सामने और पीछे दो सन्धिचिन्ह हैं, सामनेका सन्धिचिन्ह चड़ावलया कशेरुके पिण्ड में रहनेवाले सन्धिचिन्हसे मिलता है, और पीछे के सन्धिचिन्हको आश्रय करके मध्यरज्जुका स्नायु रहती है। दन्तप्रवर्धनके पार्श्वमें भी दो स्नायुसूत्र लगते हैं और पश्चिम कपालकी मूलसे मिलनेके लिये शिखरमें दूसरी स्नायु लगती है। इस प्रकार दन्तप्रवर्धनसे चार स्नायुका सम्बन्ध है। एक ऊपरकी (पश्चिम कपालवन्धनी), दो दोनों पार्श्वों में, और एक इसके पृष्ठपर आड़ी रहती है।

स्मरण रखना चाहिये कि चूड़ावलयके साथ मिली हुई कटोरी इसी प्रवर्धन को मध्यकील कर पृष्ठ वंशके ऊपर घूमती है।

---

१ Axis or Epistrophius.

(१६ वां चित्र)

[सातवां ग्रीवाकशेरु—महाकण्टकिनी।]

सामने से

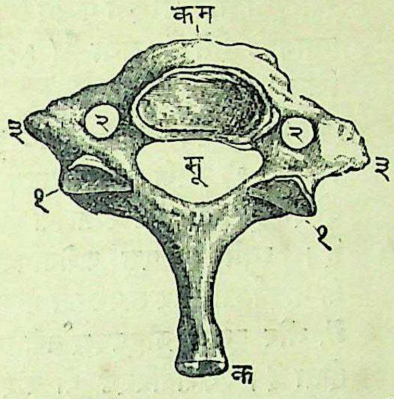

व्याख्या—क-म-कशेरुपिण्ड। सु—सुषुम्ना विवर। क—पृष्ठकण्टक। १-१, ऊपर के दोनों सन्धिप्रवर्द्धन। २-२—दोनों मातृका-छिद्र। ३,३—दोनों बाहुप्रवर्द्धन।

(१७ वां चित्र)

[पीठ का कशेरु—पार्श्व से देखने पर]

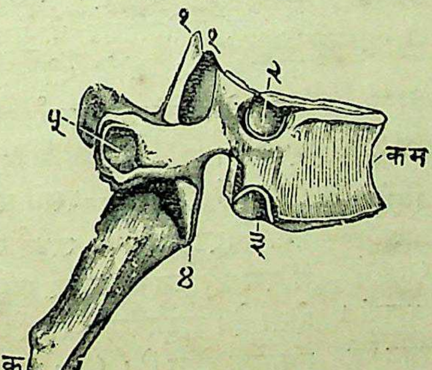

व्याख्या—कम-कशेरुपिण्ड। १—१ ऊपर के दोनों सन्धिप्रवर्द्धनक। २-३ कशेरुपिण्ड के पार्श्ववर्त्ती दोनों स्थालक। ४ नीचे का (दक्षिण) सन्धिप्रवर्द्धनक ५। बाहुप्रवर्द्धनक के ऊपर वाला स्थालक।

सातवां ग्रीवाकशेरु—

महाकण्टकिनी[1]—(१६ वां चित्र) —इसका पृष्ठकण्टक सबसे लम्बा होता है—इसलिये इसका यह नाम दिया गया है। इस महाकण्टक के साथ 'ग्रीवाधरा'[2] नाम की स्नायुरज्जु संयुक्त होती है। ग्रीवा की अन्य कशेरुओं की भांति यह महाकण्टक आगे से विभक्त नहीं होता। तथापि इसमें 'मातृका-छिद्र' आदि चिह्न अन्य ग्रीवा कशेरुवों की भांति दिखाई देनेसे हम इसको पहिचान सकते हैं।

पृष्ठकशेरु—पीठ में बारह कशेरु हैं। जिनमें ये विशेषताएं होती हैं (१७वां और १२वां चित्र)

[१] इन कशेरुओं के पिण्ड न बहुत छोटे और न बहुत बड़े, मध्यम आकार के और प्रायः अर्द्ध-गोलाकार होते हैं। प्रत्येक कशेरु पिण्ड में पीछे की तरफ दो सन्धिचिन्ह होते हैं—जिनपर दो पर्शुकाओं के मूल मिलते हैं (१७ वां चित्र २-३)।

[२] बाहुप्रवर्द्धनक प्रायः आगे से गोलाकार और स्थालक नामक सन्धिचिन्ह से चिन्हित होते हैं (१७ वां चित्र ५)। यहां पर पर्शुकाओं के अर्बुद मिलते हैं, अतः प्राचीन आचार्यों ने बाहुप्रवर्द्धनकों का नाम 'स्थालक'[3] रखा है।

---

१ Vertebra Prominens. २ Ligamentum Nuchae. ३ जैसे चरक में (शा० ७अ०)

[३] पृष्ठकण्टक उत्तरोत्तर नीचे के कण्टक को ढांकनेवाले, दीर्घ एवं गोल मुख ़ाले होते हैं (११ वां चित्र) ।

(१८ वां चित्र—पीठके विशेष कशेरु)

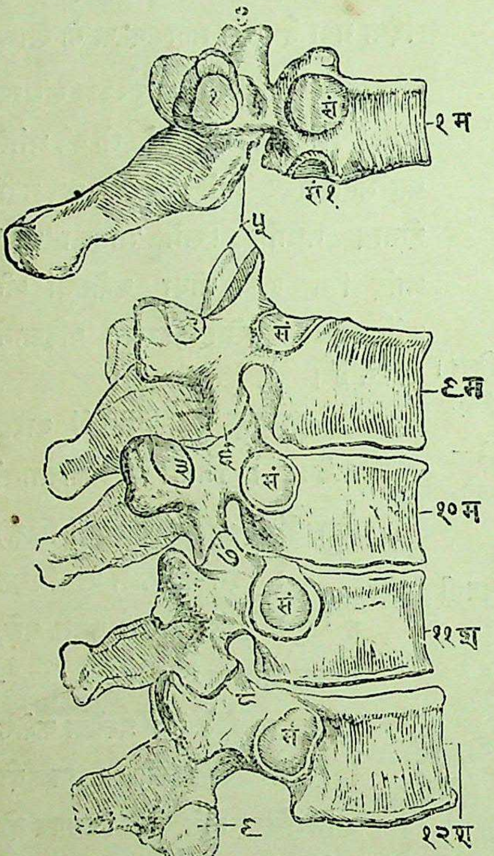

व्याख्या—१म-पीठका पहला कशेरु। ९म-नवां। १०म-दशवां। ११श-ग्यारहवां। १२श-बारहवां। १, २, ३—कशेरुओं की बाहुओं में स्थालक पर्शुकाओं से मिलने के लिये। ५, ६, ७, ८, ९—सन्धिप्रवर्द्धनक। सं—पूर्ण चक्राकार स्थालक। सं १—अर्द्ध-चक्राकार स्थालक।

इनमें पहला, नवां, दसवां, ग्यारहवां और बारहवां कशेरु विशेषतावाले होते हैं। यथा—(१८ वां चित्र)

प्रथम पृष्ठकशेरु—(१८ वां चित्र में १) इसके प्रत्येक पार्श्व में दो-दो पूर्णचन्द्राकार स्थालक होते हैं। इनमें से एक कशेरुपिण्ड के पार्श्व की ओर ऊपर की सीमा में, और दूसरा बाहुप्रवर्द्धनक पर होता है। कशेरुपिण्ड के पार्श्व की नीचली सीमा पर एक दूसरा अर्द्धचक्राकार स्थालक होता है।

दूसरे से लेकर आठवें तक प्रत्येक कशेरु के पार्श्व में तीन तीन स्थालक (१७ वां चित्र में) होते हैं। इनमें से बाहुप्रवर्द्धनक वाला स्थालक पूर्ण गोल होता है, और कशेरुपिण्ड के पार्श्व में ऊपर और नीचे की सीमावर्त्ती दोनों स्थालक अर्धचक्राकार होते हैं।

नवां पृष्ठकशेरु—इसमें प्रत्येक कशेरुपिण्ड के पार्श्व ऊर्ध्व सीमा में एक ही अर्द्धचक्राकार स्थालक होता है। बाहुप्रवर्द्धनक पर दूसरा स्थालक होता है। (१८ वां चित्र में ९ वां)

दसवां पृष्ठकशेरु इसमें कशेरुपिण्ड के प्रत्येक पार्श्व में पूर्णचक्राकार एक स्थालक होता है। दूसरा स्थालक बाहुप्रवर्द्धनक पर है। (१८ वां चित्र में १०)

ग्यारहवां और बारहवां पृष्ठकशेरु—(११ वां और १२ वां) इनमें कशेरुपिण्ड के प्रत्येक पार्श्व में पूर्णचक्राकार एक एक स्थालक है, और बाहुप्रवर्धनक में सर्वथा स्थालक नहीं होता। विशेषतः बारहवें पृष्ठकशेरु में कटिकशेरुओं की भांति तीन

मुखवाले बाहुप्रवर्द्धनक होते हैं।

कटिकशेरु—इनमें निम्नलिखित विशेषताएं हैं। (११ वां चित्र)

१—कशेरुपिण्ड सबसे बड़े और पार्श्वों में चौड़े होते हैं।

२—पार्श्वप्रवर्द्धनक छोटे और तीन मुखवाले और पङ्ख के समान फैले होते हैं।

३—पृष्ठकण्टक मोटे, छोटे और परशु के समान मुख वाले होते हैं।

इनमें से पांचवां कशेरु ऊर्ध्व मुखवाले बाहुप्रवर्द्धनकों वाला और आगे से पतले पृष्ठकण्टक वाला होने से पहचाना जाता है।

इस प्रकार यह चौवीस कशेरुओं का वर्णन हो गया।

(१६ वां चित्र—त्रिकास्थि)

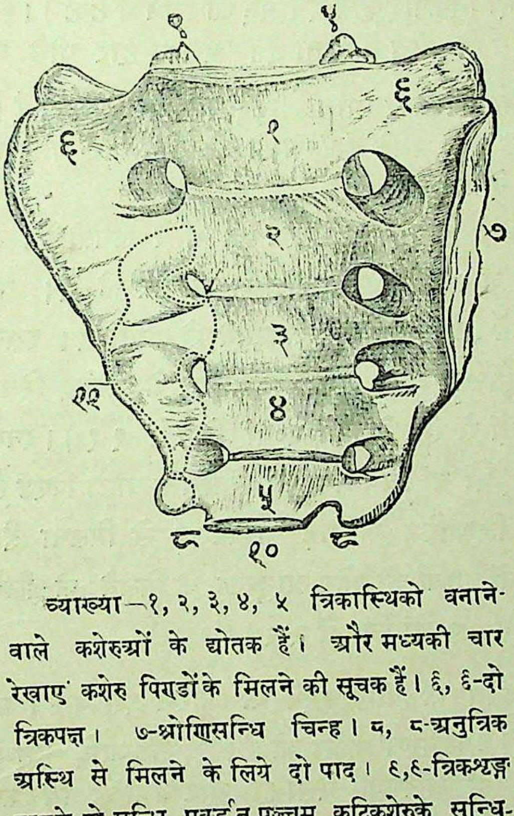

व्याख्या—१, २, ३, ४, ५ त्रिकास्थिको बनानेवाले कशेरुओं के द्योतक हैं। और मध्यकी चार रेखाएं कशेरु पिण्डोंके मिलने की सूचक हैं। ६, ६-दो त्रिकपक्ष। ७-श्रोणिसन्धि चिन्ह। ८, ८-अनुत्रिक अस्थि से मिलने के लिये दो पाद। ९,९-त्रिकशृङ्ग नामके दो सन्धि प्रवर्द्धन पञ्चम कटिकशेरुके सन्धिप्रवर्द्धनकों से मिलने के लिये। सामने बीच में त्रिकोष्ठ है। १० त्रिकमूल ११ शुण्डिका नामकी पेशी का उत्पत्तिस्थान।

त्रिकास्थि[१]—पृष्ठवंश के नीचे लगी हुई दो श्रोणिफलकों के बीचमें स्थित, कछुवे की पीठ के समान पीछे की ओर उन्नत, प्रायः त्रिकोणाकार अस्थिफलक है। (प्रथम कङ्काल चित्र देखिये)। यह पांच कशेरुओं के जुड़नेसे बनी है। (१६ वां चित्र में १-२-३-४-५)। इसमें पांचों कशेरुओं के मिलने के चिन्ह चार रेखाओं के रूपमें आगे की ओर दिखाई देते हैं। बाल्यावस्था में ये पांच कशेरु पृथक् पृथक् रहते हैं। इनमें ये विशेषताएं होती हैं।

(१) सामने की ओर चार रेखाओं से मिले हुए सन्मुखवर्त्ती आठ छिद्र (एक एक ओर चार चार) होते हैं। इन में से त्रिक के सामने जाने वाली नाड़ियां निकलती हैं।

(२) पीछे की ओर चार रेखाओं से मिले हुए पश्चिमवर्त्ति आठ छिद्र (एक एक ओर चार चार) होते हैं। इनमें से त्रिक के पीछे जानेवाली नाड़ियां निकलती हैं।

१ त्रिकास्थि = Sacrum.

(३) त्रिकास्थि के शिरपर सामने की ओर 'त्रिकोष्ठ' है। इसके दोनों ओर दो त्रिकशृङ्ग हैं, जो पांचवीं कटिकशेरुका के अधोवर्त्ती दोनों सन्धिप्रवर्द्धनकों से मिलते हैं (१६वां चित्र में ६-६)।

(४) पीछे की ओर पांच कण्टक हैं।

(५) दोनों ओर दो त्रिकपक्ष हैं (१६वां चित्र में ६-६), जिनके पार्श्व की ओर दोनों श्रोणिफलकास्थियों से मिलने के लिये दो सन्धिचिन्ह होते हैं (१६वां चित्र में ७)।

(६) त्रिकमूल—त्रिकका अधःप्रान्त रूप होता है और यही अनुत्रिकास्थि के शिखर पर मिलता है (१६वां चित्र में १०)। इसके दोनों ओर अनुत्रिकशृङ्ग से मिलने के लिये दो त्रिकपाद होते हैं (२६ वां चित्र में ८-८)।

(७) त्रिकगुहा—त्रिकास्थि के बीच में रहती है। इसका द्वार पीछे की ओर है। इस त्रिकगुहा में सुषुम्ना का अन्तिमभाग ('सुषुम्ना चामर'[१]) रहता है।

त्रिकास्थि में पेशियों के आठ जोड़े लगते हैं—सामने को तीन और पीछे को पांच (इनका वर्णन पेशीखण्ड में देखिये)।

अनुत्रिकास्थि[२]—(२०वां चित्र) त्रिकास्थि के नीचे लगती है। यह त्रिकोण और कौवे की चोंच के आकार की है। यह चार छोटे छोटे कशेरुओं[३] के जुड़ने से बनती है। इसके ऊर्ध्वभागवर्त्ती दोनों शृङ्ग त्रिकास्थि के नीचे स्थित दोनों पादों से मिलते हैं (२०वां चित्र में १-१)। इनके बीच में (२० वां चित्र में म) सन्धिचिन्ह वाला पिण्ड है, जो कि त्रिकास्थि की जड़ के पिण्ड से मिलता है। इसके दोनों पार्श्वों की ओर स्नायुरज्जु के मिलने के लिये दो प्रवर्द्धन (२०वां चित्र में २-२) हैं।

(२० वां चित्र)
अनुत्रिकास्थि।

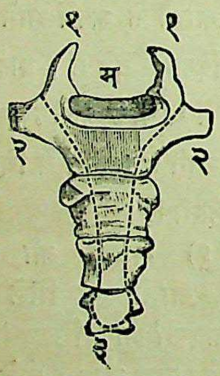

व्याख्या—१ १, दोनों शृङ्ग। म—अनुत्रिकपिण्ड। २-२-स्नायु रज्जु बन्धन के लिये दो प्रवर्धनक, ३ अनुत्रिकाग्र।

गुदाभाग के पीछे रहने के कारण इस अस्थि की प्राचीनों ने 'गुदास्थि' संज्ञा की है। गौ आदि पशुओं की पूंछ की अस्थियां ऐसी ही गुटिकाओं से मिलकर बनती है। असल में यह मनुष्य की सूक्ष्मरूप से स्थित पूंछ की अस्थि है, ऐसा प्राणिशास्त्रज्ञ पण्डित कहते हैं।

इसमें पांच पेशियां लगती हैं जिनमें से चार जोड़े हैं, और एक अकेली है। इनका वर्णन पेशीखण्ड में किया जायगा।

---

१ Cauda Equina. २ अनुत्रिकास्थि = Coccyx. ३ कभी कभी पांच कशेरुओं से भी बनती देखी गयी है। कशेरु गुटिकाओं की सन्धि अन्दरकी रेखाओं से पृथक देखी जा सकती है।

श्रोणि-फलक।

श्रोणिफलक[1]—(२१ वां चित्र)—त्रिक, नितम्ब और सक्थि को धारण करनेवाली अस्थियों में ये दो अस्थियां सब से बड़ी हैं। एक एक पार्श्व में एक एक अस्थि सक्थि के सिरे से लेकर कमर तक तिरछी लगी रहती है। ये दोनों अस्थियां सामने में परस्पर और पीछे की ओर त्रिकास्थि को बीच में रख कर जुड़ती हैं। (देखिये दोनों कङ्काल चित्र)। इस प्रकार मिलने पर इनकी संज्ञा **'श्रोणि[2]चक्र'** होती है। इस चक्र के बीच वाली गुहा का नाम **श्रोणिगुहा** या **बस्तिगुहा**[3] है। यही वस्तिगुहा पुरुषों में गहरी और कम चौड़ी होती हैं; स्त्रियों में उथली और बड़ी एवं चौड़ी होती है। यह विशेषता श्रोणिफलकों के निर्म्माण भेद के कारण होती है।

यौवन के प्रारम्भ में सब व्यक्तियों में प्रत्येक श्रोणिफलक तीन खण्ड अस्थियों के मिलने से बना हुआ दिखाई देता है। इनका जोड़ वंक्षणोदूखल सन्धि में तीन रेखाओं से सूचित होता है। इस लिये तभी से इनके तीन भाग होते हैं। यथा **(१)जघनकपाल**[4]—जो कि पङ्ख के समान फैला हुआ ऊपर का भाग है। **(२) कुकुन्दरास्थि**[5]—यह कुकुन्दरपिण्ड वाला नीचे का भाग है। **(३) भगास्थि**[6] जो कि भगादि का अधिष्ठानभूत भाग है। ये तीनों अस्थियां यौवन में मिल कर एक हो जाती हैं, और तीनों रेखाएं क्रमशः लुप्त हो जाती हैं। तथापि वर्णन की सुगमता के लिये तीनों अस्थियोंका पृथक् पृथक् वर्णन करना उत्तम होगा। (तीनों भाग २१ वें चित्र में तीन रेखाओं से स्पष्ट अलग अलग दिखाये गये हैं)।

सम्पूण श्रोणिफलक में दो वस्तुएं विशेषतः लक्षणीय हैं—एक वंक्षणोदूखल और दूसरा श्रोणिगवाक्ष।

वंक्षणोदूखल[7]—श्रोणिफलक के बाह्यपार्श्व के मध्य में स्थित ऊखल के समान गहरा कोटर है। (२१वां चित्र में १-२-३-४)। इसके बीच में स्नायु रज्जु से बंधा हुवा ऊर्वस्थि का मुण्ड जुड़ता है और इस कोटर की परिधि में इस सन्धि को बांधने वाला स्नायुकोष लगता है। इस कोटर के बीच में अस्थियों के संयोग को दिखाने वाली तीन रेखाएं यौवन में स्पष्ट रहती हैं।

श्रोणिगवाक्ष[8]—यह भगास्थि और कुकुन्दरास्थि दोनों के सम्मिलित मुण्ड से बनी हुई, गौकी आंख के आकार की, खाली जगह है। जीवितावस्था में यह कला से ढंकी रहती है। यह पुरुषों में बड़ी होती है, और स्त्रियों में छोटी एवं त्रिकोणाकार होती है।

यह पहले ही कहा जा चुका है, कि श्रोणिफलक के तीन भाग होते हैं। आगे इन भागों का पृथक् पृथक् वर्णन होगा।

---

१ Os Innominate. २ Pelvis ३ Pelvic Cavity. ४ Ileum. ५ Ischium. ६ Pubes. ७ Acetabulum. or Cotyloid Cavity. ८ Obturator foramen.

(२१ वां चित्र)

श्रोणि-फलक।

चित्रव्याख्या—

१-२-३-४, वंक्षणोदूखल। इसमें १ भगास्थि का भाग, २ जघनकपालास्थि का भाग, ३ कुकुन्दरास्थि का भाग है, ४ तीनों अस्थियों के मिलनेकाकेन्द्र। इसके पश्चात् तीन पार्श्वों से आनेवाली रेखाएं (सं-सं-सं) इनकी सन्धि को दिखाते हैं। ५ जघनकपालास्थि की सीमा, ६ भगास्थि (उत्तरशृङ्ग) ७ कुकुन्दरास्थि। ८ श्रोणिगवाक्ष; ९, १० जघनकपाल के ऊपर और नीचेके पुरःकूट; ११, १२ भगास्थि के मुण्ड (भगपीठ), १० से १५ तक ऊपरका [illegible] जघनधारा एवं जघनधारा है। १३ जघनचूड़ा। १४, १५ ऊपर और नीचे का पश्चिम जघनकूट। १६ गृध्रसीद्वार १७ कुकुन्दरकण्टक। १८ कुकुन्दरद्वार। १९ कुकुन्दरपिण्ड। २० भगास्थि का निचला शृङ्ग।

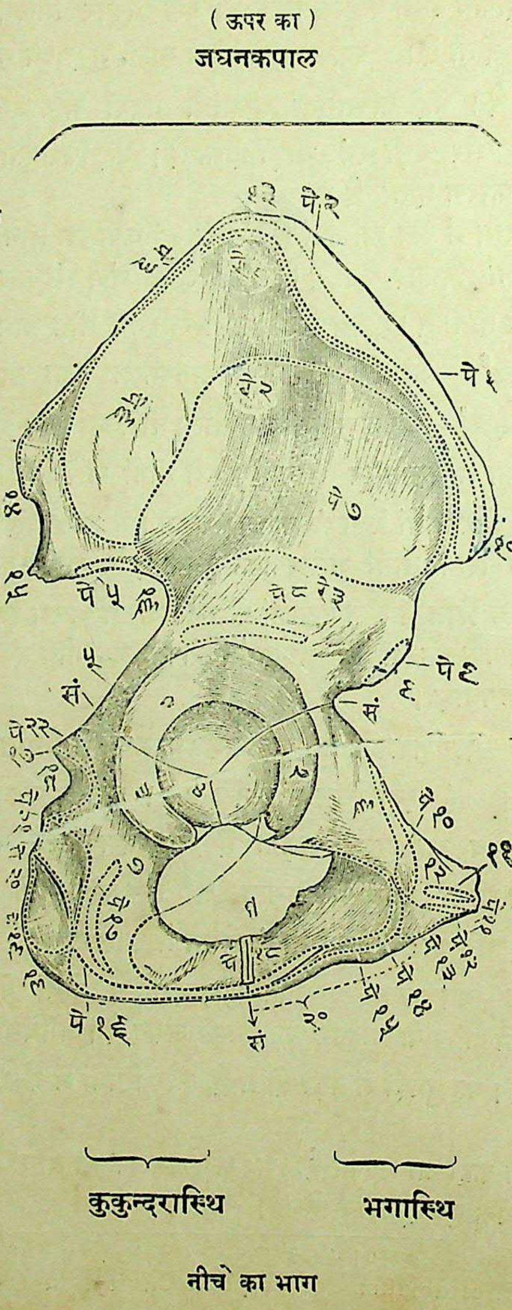

पेशियां—

पे १ पे २ दोनों उद्रच्छदा तिर्य्यञ्चीना। पे ३ कटिप्रच्छदा। पे ४ (१४ संख्या के ऊपर) गरिष्ठा नितम्बपिण्डिका। पे ५ शुण्डिका। पे ६ मध्यमानितम्बपिण्डिका। पे ७ कनिष्ठा नितम्बपिण्डिका। र १ पेशीके उत्पत्तिस्थानों को पृथक् करने वाली प्रथम रेखा; र २ वही दूसरी, रे० ३ वही तीसरी। पे ८ पे ९ सक्थिदण्डिका (दोनों मूल), पे १० कङ्कतिका। पे ११, पे १२, उदरदण्डिका। पे १३ ऊरुसंव्यूहनी दीर्घा। पे १४ ऊरुसंव्यूहनी ह्रस्वा। पे० १५ ऊर्व्वन्तःपार्श्विका, पे १६ ऊरुसंव्यूहनी गरिष्ठा। पे १७ ऊरुचतुरस्रा, पे १८ श्रोणिगवाक्षिणी बाह्या। पे १९ जानुकर्षणी कण्डराकल्पा और ऊरुद्विशिरस्का; पे २० जानुकर्षणी कलाकल्पा। पे २१, पे२२, दोनों यमला।

(१) जघनकपाल—यह सब से मुख्य ऊपर का भाग है (२१ वें चित्र में ५ से लेकर ६ अङ्क तक ऊपर से घुमाकर देखिये)। इसके दो भाग हैं। एक जघनपक्ष और दूसरा वंक्षणोदूखलांश। इसमें से जघनपक्ष—पक्ष के समान फैला हुआ जघनकपाल के ऊपर का मुख्य भाग है। इसके बाह्य और आन्तर दो तल हैं; जिन में से बाह्य तल का नाम 'जघनपृष्ठ' है। यहां से नितम्बपिण्डिका[१] नाम की तीन पेशियां उत्पन्न होती हैं (२१वां चित्र में पे ४, पे ६, पे ७)। और यहां पर पेशियों के प्रभवस्थान को विभक्त करने वाली तीन रेखाएं स्पष्ट दिखाई देती हैं (२१वां चित्र में रे १, रे २, रे ३)। आन्तर तल का नाम 'जघनोदर' है, जिस के बीच में थोड़ा सा गढ़ा है। यहां से श्रोणिपक्षिणी[२] नाम की पेशी उत्पन्न होती है। और इसकी नीचली सीमा में वस्तिगुहा की ऊर्ध्व सीमा बनाने वाली मोटी उठी हुई रेखा है, जिसका नाम वस्तिकण्ठिका[३] है। और उससे पहले पीछे की ओर कान के आकार की त्रिकसन्धि का स्थालक है, जिसे त्रिकस्थालक कहते हैं। तथा इसके पीछे त्रिकपृष्ठिका और कटिचतुरस्रा[४] नाम की पेशियों का प्रभव स्थान है।

जघनपक्ष की परिधि बनानेवाली जघनधारा नाम की धारा है। इसके सामने की ओर पुरःकूट[५] नामक दो उभार हैं। इनका ऊर्ध्व और अधः संज्ञा से भेद किया गया है। इसी प्रकार पीछे की ओर भी पश्चिमकूट[६] नामक दो उभार हैं। उनकी भी ऊर्ध्व और अधः संज्ञा है। जघनधारा के बीच में जघनचूड़ा नामक उन्नत प्रदेश है। इसके सामने की ओर जघनधारा में 'उदरच्छदा'[७] नाम की दो तिरश्चीन पेशियां लगती हैं, और इसके पीछे की ओर 'कटिप्रच्छदा'[८] नाम की पेशी लगती है।

जघनपक्ष के पश्चिम में तोरण के समान आकार वाला एक द्वार है। उसका नाम गृध्रसीद्वार[९] है। इस में से गृध्रसी[१०] नाम की नाड़ी एवं उसके साथ जाने वाली सिरा, धमनी आदि और शुण्डिका[११] नाम की पेशी निकलती है।

वंक्षणोदूखलांश—जघनकपाल के पांव जैसा होता है, जो वंक्षणोदूखलमें प्रविष्ट हो जाता है। इसका वर्णन वंक्षणोदूखल के वर्णन में प्रथम आगया है।

(२) कुकुन्दरास्थि—(२१वां चित्र) नितम्बमूल को आश्रय देनेवाला, श्रोणिफलक का अधोवर्त्ती भाग है। यह प्रायः अर्द्ध चन्द्राकार होता है। इसके द्वारा श्रोणिगवाक्ष की निचली आधी परिधि बनती है। इसके तीन भाग हैं। यथा—वंक्षणोदूखलांश, कुकुन्दरपिण्ड और कुकुन्दरकूट। इनमें से—

वंक्षणोदूखलांश का वर्णन—वंक्षणोदूखल के बर्णन में आगया है। इसके पश्चिम में प्रायः त्रिकोणाकार कुकुन्दरकण्टक[१२] नामक (२१वां चित्र में १७) प्रवर्द्धनक

१ Gluteus Maximus, Medius, and Minimus २ Iliacus ३ Ileo-pectineal Line. ४ Sacro-Spinalis or Erector Spinæ. & Quadratus. Lumborum. ५ Anterior Iliac Spine—Superior and Inferior. ६ Posterior Iliac Spine—Superior and Inferior. ७ Ext. Oblique and Int. Oblique Muscles. ८ Latissmus Dorsii. ९ Great Sacro-sciatic Notch. १० Sciatic Nerve. ११ Pyriformis. १२ Spine of Ischium.

है। इसके चारो ओर से 'यमला'[१] नामकी पेशी उत्पन्न होती है। इसके नीचे छोटे तोरण के आकार का गढ़ा है जिसका नाम कुकुन्दरद्वार[२] है (२१वां चित्र १८)। इसमें से होकर 'श्रोणिगवाक्षिणी'[३] पेशी और इसके साथ जाने वाली सिरा, धमनी एवं नाड़ियां वस्तिगुहा में प्रविष्ट होती हैं।

कुकुन्दर पिण्ड[४]—(२१वां चित्र १६) नाम से ही स्पष्ट है। मनुष्य इसी पर भार रखकर बैठता है। यहां ऊरु और जानुमें जानेवाली चार पेशियों का प्रभवस्थान है।

कुकुन्दरकूट[५]—कुकुन्दर पिण्ड के ऊपर सामने जाने वाला शृङ्ग है जो भगास्थि के अधोमुख शृङ्ग के साथ मिलकर श्रोणिगवाक्ष की परिधि को बनाता है (२१वां चित्र १६ से २० तक]। इसके बाहर के भाग से 'बहिःस्था श्रोणिगवाक्षिणी'[६] पेशी [२१वें चित्रमें १८] और 'गरिष्ठा ऊरू संव्यूहनी'[७] पेशी उत्पन्न होती हैं। अन्दर के भाग से 'अन्तःस्था श्रोणिगवाक्षिणी' पेशी।

(३) **भगास्थि**—भग का अधिष्ठानभूत और श्रोणिफलक का सन्मुखवर्त्ती भाग है (२१वां चित्र)। इसके तीन भाग हैं—मुण्ड, उत्तरशृङ्ग और अधरशृङ्ग।

मुण्ड[८]—मध्यपिण्ड का नाम है। कहीं कहीं इसको भगपीठ वा लिङ्गपीठ नाम भी दिया गया है। इसकी अन्तःसीमा में दूसरी भगास्थि से मिलने के लिये खुरदरा स्थालक है। सामने के उभार में 'उदरदण्डिका' नाम की पेशी का निवेश[९] स्थान है। और इसके चारों ओर पेशी स्नायु आदि लगती हैं।

उत्तरशृङ्ग[१०]—(२१वां चित्र में ६) मुण्ड से पीछे की ओर वंक्षणोदूखल तक पहुंचता हुआ भाग है। इसके द्वारा श्रोणिगवाक्ष की ऊर्ध्व परिधि बनती है। और इसकी ऊपर की सीमा अन्तस्तल में रहने वाली 'वस्तिकण्ठिका' नाम की रेखा से मिलकर वस्तिगुहा की ऊर्ध्व सीमा बनाती है।

अधरशृङ्ग[११]—(२१वां चित्र २०) भगास्थि के मुण्ड के नीचे से निकलकर कुकुन्दरकूट से मिलता है और श्रोणिगवाक्ष की सामनेकी परिधि को बनाता है। इसके बहिस्तल से 'ऊरुसंव्यूहना'[१२] नाम की तीन पेशियां और 'बाह्य श्रोणिगवाक्षिणी' नाम की पेशी उत्पन्न होती है। अन्तःस्तलमें 'अन्तःस्था श्रोणिगवाक्षिणी' पेशी का प्रभव स्थान है। और इसके सामने की धारा में 'शिश्नप्रहर्षणी'[१३] पेशी का मूल और शिश्नमूल आदि संयुक्त होते हैं।

यह संक्षेप से सम्पूर्ण श्रोणिफलक का वर्णन हो गया।

---

१ Gemelli. २ Lesser-Sacro-Sciatic Notch ३ Obturator Internus ४ Tuberosity of Ischium. ५ Ascending Ramus of Ischium. ६ Obturator Exlrnus. ७ Adductor Magnus. ८ Body of Pubes ९ Rectus Abdominis. १० Ascending Ramus of Pubes. ११ Descending Ramus of Pubes. १२ Adductor Magnus, Longus, and Brevis. १३ Erector Penis.

अंसफलक (Scapula)

अंसफलक[1]—(२२ वां चित्र) प्रायः त्रिकोणाकार पंखके समान फैला हुआ अस्थिफलक है। यह प्रत्येक कन्धे के पीछे रहता है। यह आधी पीठ को सातवीं पर्शुका के मूलतक ढंकता हुआ तिरछी दशामें स्थित है। बाहरी सीमा में सामने की ओर यह अक्षकास्थि और प्रगण्डास्थि से मिलती है। और अन्तःसीमा में केवल पेशियों से बन्धी होकर स्वच्छन्द भाव से आगे पीछे तथा नीचे ऊपर चलती है।

अक्षकास्थि से मिले हुए अंसफलक की संज्ञा 'अंसचक्र'[2] है। अंसचक्र अंससन्धि के ऊपर छदकी भांति रहता है। यह सन्धि की रक्षा करने के लिये तथा पेशियों और स्नायुओं के संयुक्त होने के लिये आधार बना हुआ है। (देखिये प्रथम कंकाल चित्र)।

प्रत्येक अंसफलक के पांच भाग हैं। यथा—अंसप्राचीरक, अंसकूट, अंसतुण्ड, अंसपीठ और अंसकपालिका। इनमें—

अंसप्राचीरक[3]—(२२ वां चित्र में १ से ६) अंसकपालिका के पीछे से तिरछा उठकर बाहर को मुख किये हुए रहता है। यह हाथसे स्पर्श करने के योग्य है। इससे अंसकपालिका-पृष्ठतल के दो विभाग हो जाते हैं और इन दोनों भागों को 'उत्तर'[4] और 'अधर अंसपृष्ठ'[5] कहते हैं।

अंसकूट[6]—(२२ वां चित्र में १) यह अंसप्राचीरक का अग्रिम एवं सर्पके फण की भांति फैला हुआ खुरदरा शिखर भाग है। यहां पर 'अंसतुण्डसंयोजनी'[7] स्नायु लगती है। यह 'अंसच्छदा' और 'पृष्ठच्छदा'[8] पेशियों का प्रभव स्थान है। (२२ वां चित्र में पे १, पे २)

अंसतुण्ड[9]—(२२ वां चित्र में २) अंसफलक के शिखर में हंसकी चोंचके समान निकला हुआ प्रवर्द्धनक है। इसके आगे और पीछे की तरफ 'द्विशिरस्का'[10] और 'काकोष्ठिका'[11] पेशियोंका उत्पत्तिस्थान है। (२२वां चित्र में पे३)। और सामने से 'लघ्वी उरश्छदा'[12] पेशी उत्पन्न होती है। यहां पर 'तुण्डाक्षकसंयोजनी'[13] और 'तुण्डांसकसंयोजनी'[14] स्नायु मिलती है। (२२वां चित्र में पे ३)।

---

१ Scapula = अंसफलक। यह प्राचीनोंकी संज्ञा है। (देखिये चरक शा० अ ७) २ Shoulder-girdle. ३ Spine of Scapula. ४—५ Supra-spinous & Infra-spinous fossæ. ६ Acromion Process. ७ Coraco-acromial ligament. ८ Deltoid & Trapazeus. ९ Coracoid Process. १० Biceps. ११ Coraco-Brachialis. १२ Pectoralis Minor. १३ Coraco-clavicular Ligament. १४ Coraco-acromial Ligament.

[२२ वां चित्र]

अंसफलक (वाम)

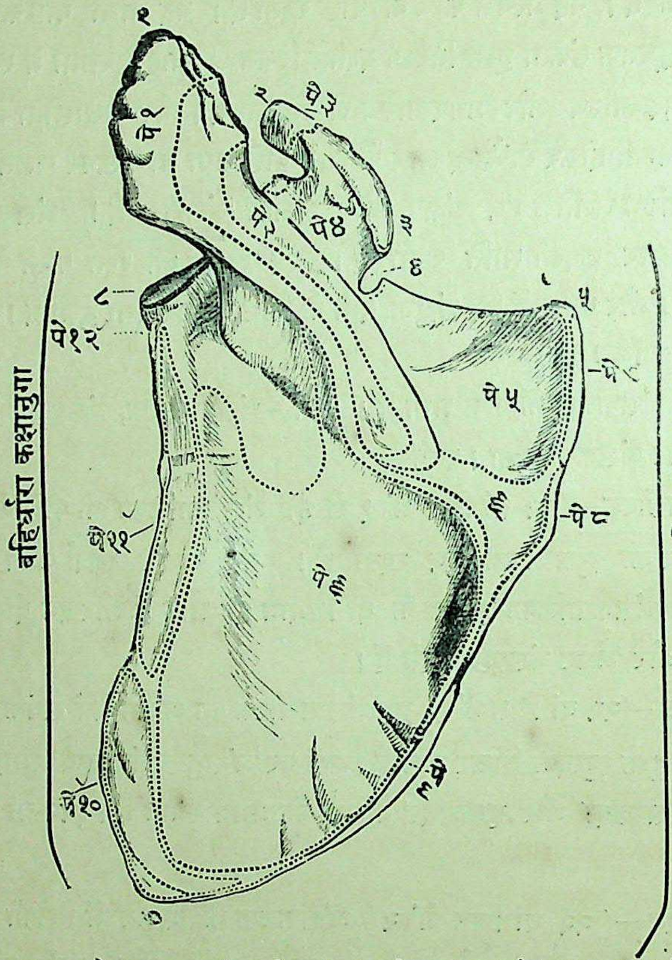

व्याख्या—१ से ६ तक—अंसप्राचीरक। १ अंसकूट। २ अंसतुण्ड। ३ अंसाक्षकसंयोजनी और तुण्डांसकसंयोजनी स्नायु का उत्पत्तिस्थान। ४ अंसशिरःकोटर। ५ अन्तःकोटि। ६ अंस-प्राचीर का मूलप्रदेश। यहां पर पृष्ठच्छदा पेशी श्लेष्मधर कलापुटक के व्यवधान से घूमती है। ७ अधःकोटि। ८ 'अंसपीठ' नामक बहिःकोटि के ऊपर वाला स्थालक।

पेशियां—पे १ अंसच्छदा। पे २ पृष्ठच्छदा। पे ३ द्विशिरस्का का ह्रस्वमूल और काकोष्ठिका। पे ४ द्विशिरस्का का दीर्घमूल। पे ५ अंसपृष्ठिका उत्तरा। पे ६ अंसपृष्ठिका अधरा। पे ७ अंसोन्नमनी। पे ८ अंसापकर्षणी छोटी। ९ अंसापकर्षणी बड़ी। पे १० अंसाधरिका बड़ी। पे ११ अंसाधरिका छोटी। पे १२ त्रिशिरस्का।

अंसपीठ[1]—(२२ वां चित्र में ८) अंसकूट के नीचे और अंसफलक की वाह्य-कोटि में स्थित वड़ा स्थालक है। इस पर प्रगण्डास्थि का मुण्ड घमता है और इसकी परिधि में सन्धिको धारण करनेवाला स्नायुकोष बंधता है। इसकी ऊर्ध्वसीमा में 'द्विशिरस्का पेशी' का दीर्घमूल[2] (२२ वां चित्र में पे ४) और अधः-सीमा में 'त्रिशिरस्का[3] पेशी' का मूल लगता है (२२ वां चित्र में पे १२)।

अंसकपालिका[4]—(२२ वां चित्र में त्रिकोणाकार ८ – ७—५) यह अंसफलक का मुख्यभाग है और देखने में प्रायः त्रिकोणाकार है। इसके दो तल हैं—पुरस्तल और पश्चिमतल। पुरस्तल से 'अंसान्तरिका[5]' नाम की पेशी उत्पन्न होती है। पश्चिमतल अंसप्राचीरके द्वारा दो भागों में विभक्त रहता है। इस के ऊर्ध्वभाग में 'उत्तरा अंसपृष्ठिका[6]' नाम की पेशी का प्रभवस्थान है (२२ वां चित्र में पे ५) और अधोभाग से 'अधरा[7] अंसपृष्ठिका' नाम की पेशी उत्पन्न होती है (२२ वां चित्र में पे ६)। अंसकपालिका की तीन 'धारा[8]'एं और तीन ही 'कोटियां[9]' हैं—ऊर्ध्वधारा, अन्तर्धारा और वहिर्धारा। ये तीन धाराएं क्रम से ऊर्ध्वसीमा, अन्तःसीमा और वहिःसीमा को वताती हैं। इनकी तीन कोटि को वहिःकोटि, अन्तःकोटि और अधःकोटि—कहते हैं। (२२वां चित्र में ८-५-७)। इनमें से वाह्यकोटि ही अंसपीठ वन गयी है, और शेष दोनों कोटियां त्वचाके नीचे टटोली जा सकती हैं।

ऊर्ध्वधारा पर अंसतुण्ड की जड़ में एक कोटर है, जिसका नाम अंसशिरःकोटर[10] है (२२ वां चित्र में ४)। यह 'अंसारोहिणी[11]' नाम की नाड़ी के पीछे की ओर निकलने का द्वार है। वहिर्धारा अंसकपालिका की वाह्य-सीमा (२२ वां चित्र में ८-७) है। यह कक्षा की पश्चिम सीमाको वताती है, अतः इसे 'कक्षानुगा[12] धारा' कहते हैं। इसके सामनेसे अंसपीठके अधःप्रदेश में 'त्रिशिरस्का' पेशी का प्रभवस्थान है और इसके नीचे 'अंसाधरिका[13] लघ्वी' एवं 'बृहती' दोनों पेशियां उत्पन्न होती हैं (२२वां चित्र में क्रमसे पे१२, पे११, पे१०)। इसकी अन्तर्धारा (२२ वां चित्र में ५ –७) धनुष के समान टेढ़ी और पृष्ठवंश के साथ साथ जाने-वाली 'वंशानुगा[14]' नाम की है। इसके सामने से 'अरित्रा[15]' पेशी एवं पीछे से 'अंसोन्नमनी[16]' तथा 'अंसापकर्षणी[17] लघ्वी' और 'बृहती'—पेशियां उत्पन्न होती है (२२ वां चित्र में पे ७, पे ८, पे ६,)।

---

१ Glenoid cavity. २ Long Head of Biceps. ३ Triceps ४ Dorsum of Scapula. ५ Sub-scapularis. ६ Supra-spinatus ७ Infra-spinatus ८ Borders. ९ Angles. १० Supra-scapular Notch. ११ Supra-scapular Nerve. १२ Axillary border १३ Teres Minor & Major १४ Vertebral Border १५ Serratus Magnus १६ Levator Angulae Scapulæ १७ Rhomboideus Minor & Major.

अक्षकास्थि (Clavicle)

अक्षक—अंसके मूल से उरःफलक तक धनुष के समान टेढ़ी, नलकास्थि है। यह प्रत्येक पार्श्व में आगलके समान तिरछी रहती है। प्राचीनों ने इस का नाम 'जत्रु' रखा है। अन्दर की सीमा में यह उरःफलक से और बाहर की सीमा में अंसकूटसे मिलती है। अंसफलक के साथ मिलने पर इनका नाम **अंसचक्र** होता है, यह पहिले कह चुके हैं।

और नलकास्थियों की भांति इस के तीन भाग हैं—दो प्रान्त और एक मध्यनलक। प्रान्तों को अन्तःप्रान्त और बहिःप्रान्त कहते हैं।

(२३ वां चित्र—अक्षकास्थि-वाम)

(ऊपर का तल)

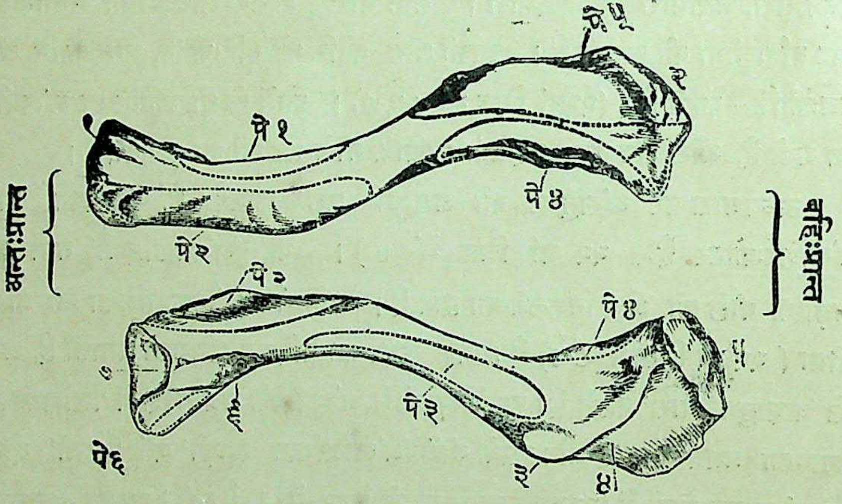

(नीचे का तल)

व्याख्या—ऊपर वाले चित्र में अस्थि का ऊर्ध्वतल एवं निचले में अधस्तल दिखाया गया है। इनमें—१ अन्तःप्रान्त (उरःफलक के ओर का)। २ बहिःप्रान्त (अंसके ओर का)। ३ त्रिकोणिका नाम की स्नायु के जुड़ने के लिये अर्बुद। ४ चतुरस्रिका नामकी स्नायु के लगने के लिये टेढी रेखा। ५ अंसकूट से मिलने का सन्धिचिन्ह। ६ पर्शुकाक्षक संयोजनी स्नायु के लगने के लिये बन्धुर प्रदेश। ७ प्रथम उपपर्शुका के ऊपरी भाग से मिलने का सन्धिचिन्ह।

पेशियां—पे १ उरःकर्णमूलिका। पे २ उरश्छदा गुर्वी। पे ३ अक्षकाधरा। पे ४ अंसच्छदा। पे ५ पृष्ठच्छदा। पे ६ उरोजिह्वामूलिका।

अन्तःप्रान्त—यहां दो सन्धिचिह्न होते हैं। इन में से ऊर्ध्ववर्त्ती सन्धिचिह्न द्वारा उरःफलक के पार्श्व स्थित स्थालक से और नीचे के चिह्न से (२३ वां चित्र में ७) प्रथम उपपर्शुका के शीर्षभाग की सन्धि होती है। इसके नीचे के तलमें 'पर्शुकाक्षकसंयोजनी'[1] स्नायु के लगनेके लिये खुरदरा भाग है। (२३वां चित्र में ६)।

वहिःप्रान्त—यहां भी एक सन्धिचिह्न है। इससे यह अंसकूट के साथ मिलती है (२३ वां चित्रमें ५)। यहां पर 'अंसाक्षकसंयोजनी'[2] स्नायु लगती है।

मध्यनलक—यह दो स्थानों में धनुष की भांति टेढ़ा होता है। धनुष को वीच से तोड़ देने पर आधे टुकड़े का जो रूप होता है, इसका रूप वैसा है। इसके अन्दर का आधा भाग डण्डे की भांति गोल और बाहर का आधा चिपटा होता है। यहां पर बाहर के आधेभाग के निचले तलमें 'त्रिकोणिका'[3] स्नायु के लगने के लिये अर्बुद होता है। अर्बुद से उठने वाली तिरछी रेखा पर 'चतुरस्त्रिका'[4] नाम की स्नायु लगती है। बाहर के आधे भाग के फैले हुए ऊर्ध्वतल में 'अंसच्छदा'[5] और 'पृष्ठच्छदा'[6] पेशियों का प्रभवस्थान है और अधस्तल से 'अक्षकाधरा'[7] पेशी उत्पन्न होती है। अन्दर के आधे भाग में क्रम से तीन पेशियां 'उरःकर्णमूलिका'[8], 'उरश्छदा वृहती'[9] और 'उरोजिह्वामूलिका'[10] उत्पन्न होती है।

उरःफलक (Sternum)

उरःफलक—(२२ वां चित्र) यह फलक के आकार का अस्थिखण्ड है जो उर के वीच में सामने की ओर रहता है (देखिये प्रथम कंकाल चित्र)। यह तीन खण्डों से वनता है। अथवा यों कहिये कि बाल्यावस्था में मध्यफलक के चार खण्ड होने से यह छः खण्डोंसे वनता है। इनमें से शिखरस्थ प्रथम खण्ड षट्कोण, मध्यस्थ दूसरा खण्ड चिप्टा फलकाकार, और अधःप्रान्तस्थ तीसरा खण्ड त्रिकोणाकार है। शेषखण्ड तरुणास्थिमय होता है। इन तीन खण्डों वाले उरःफलक के दोनों पार्श्वों में पर्शुकाओं कोमिलाने वाली उपपर्शुका नाम की तरुणास्थियां जुड़ती हैं। इनमें—

प्रथम खण्ड—कण्ठ के मूल में स्थित 'ग्रैवेयक'[11] नाम का (२४ वां चित्र में १ म) है। इसमें छः स्थालक होते हैं। दो स्थालक दोनों अक्षकास्थियों से मिलने के लिये (२४ चित्र में अं-सं), हैं और दो स्थालक दोनों प्रथम पर्शुकाओं से तथा दो स्थालक दोनों उपपर्शुकाओं से मिलने के लिये (२४ चित्र अंस) हैं। इसके शिखर पर कण्ठकूप नामक एक खात है (२४ वां चित्र में क)।

१ Costo-Clavicular Ligament २ Acromio-clavicular Ligament ३ Conoid Ligament ४ Trapezoid Ligament. ५ Deltoid ६ Trapezium ७ Subclavius ८ Sterno Mastoid ९ Pectoralis Major १० Sterno-hyoid ११ Manubrium

(२४ वां चित्र)

(उरःफलक और उपपर्शुका)

सम्मुख भाग

(ऊर्द्ध)

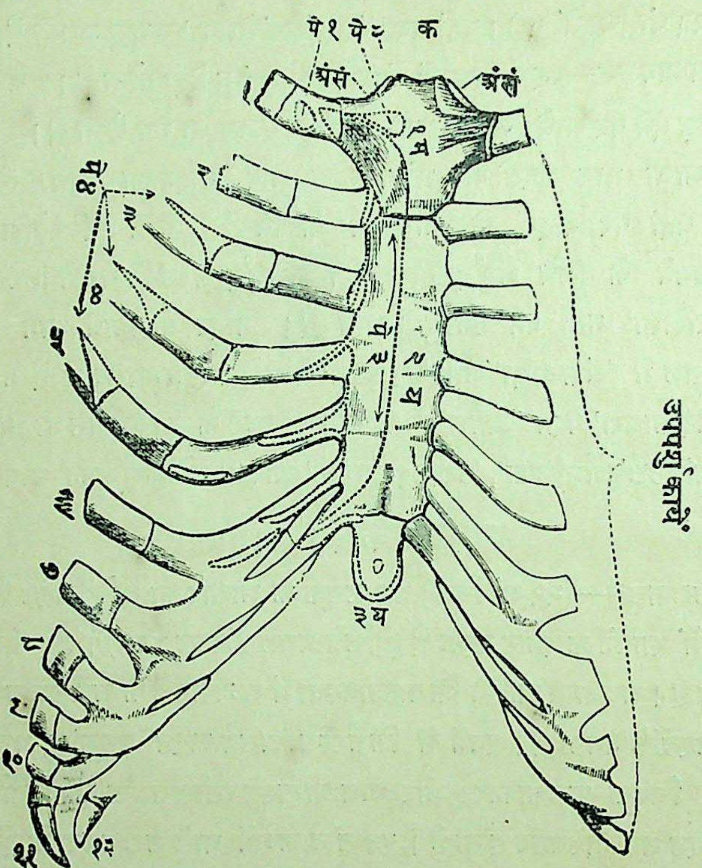

(अधः)

व्याख्या—१म—२य—३य—उरःफलकके ३ खण्ड। इनमें १म—ग्रैवेयक नाम का प्रथमखण्ड, २य—मध्यफलक नाम का दूसरा खण्ड। ३य—अग्रपत्र नाम का तीसरा खण्ड। १-२-३-४-५-६-७-८-९-१०-११-१२ उपपर्शुकाओं के साथ मिले हुए पर्शुकाओं के अग्रभाग। दक्षिण भागमें केवल उपपर्शुकाएं ही दिखाई गयी हैं। अं-सं—अक्षकास्थि का सन्धिस्थान। क—कण्ठकूप।

पेशियां—पे १ उरःकर्णमूलिका पे २ उरोजिह्वामूलिका। पे ३ उरश्छदा बड़ी। पे ४ उरश्छदा छोटी।

नीचे की ओर यह दूसरे खण्ड से मिलता है। इसके सामने की ओर 'उरःकर्णमूलिका' नाम की पेशी (२४ चित्र पे १) और पीछे की ओर 'उरोजिह्वामूलिका' पेशी लगती है।

मध्यफलक[१]—उरोऽस्थि का दूसरा खण्ड है, जो कि ऊपर की ओर ग्रैवेयक से मिलता है (२४ वां चित्र में ३)। यह चार खण्डों के मिलने से बनता है। बचपन में ये चारों खण्ड पृथक् पृथक् होते हैं। प्रत्येक पार्श्व में उपपर्शुकाओं से मिलने वाले छः छः स्थालक रहते हैं। ग्रैवेयक और मध्यफलक के सामने से प्रत्येक पार्श्व में 'बड़ी उरश्छदा'[२] पेशी उत्पन्न होती है (२४ वां चित्र में पे ३)।

अग्रपत्र[३]—यह तरुणास्थिमय तीसरा खण्ड है, जोकि ऊपर मध्यफलक से मिलता है (२४वां चित्र में ३य)। यकृद्वृद्धि होने पर यह आगे की ओर उठा हुआ दिखाई देता है। इसके सामने में 'चरमा उदरच्छदा'[४] पेशी की मध्यकण्डरा और पीछेकी ओर 'महाप्राचीरा'[५] पेशी का अगला भाग लगता है। वृद्धावस्था में यह सर्वथा कठिन अस्थिमय हो जाता है।

पर्शुकाएं (Ribs)

पर्शुकायें[६]—'उरःपञ्जर'[७] को घेरे हुए, धनुष के समान टेढे और स्थिति स्थापक अस्थिफलक हैं। प्रत्येक पार्श्व में बारह बारह (सब मिलाकर चौबीस) पर्शुकाएं हैं। ये सब पीछेकी ओर पृष्ठ कशेरुओं के पिण्डसे और सामनेकी ओर उपपर्शुकाओं से मिली हुई हैं। इनमें से ऊपरकी सात क्रमशः नीचेकी ओर बड़ी होती गयी हैं और सामने की ओर अपनी अपनी उपपर्शुकाओं द्वारा उरःफलक से बंधी हुई हैं। इनका नाम 'मुख्यपर्शुका'[८] है। इनके द्वारा मुख्यरूप से उरःपञ्जर बनता है। नीचे की पांच पर्शुकाएं क्रमशः नीचे की ओर छोटी होती गयी हैं। ये उरःफलक से नहीं मिलतीं। इनको 'गौण उपपर्शुका'[९] कहते हैं। इनमें भी आठवीं नवीं और दसवीं—ये तीन अपने अपनी उपपर्शुकाओं के अगले भागों द्वारा पूर्व पूर्व उपपर्शुकाओं से जुड़ी हुई हैं। ग्यारहवीं और बारहवीं आगे से सर्वथा[१०] खुली हुई हैं।

---

१ Gladiolus २ Pectoralis Major ३ Xiphiod or Ensiform cartilage. ४ Transveralis Abdominis ५ Diaphragm ६ Costæ (Latin) ७ Throax. ८ True Ribs ९ False ribs १० Floating Ribs

[२५ वां चित्र—पर्शुका]
(सामने का भाग)

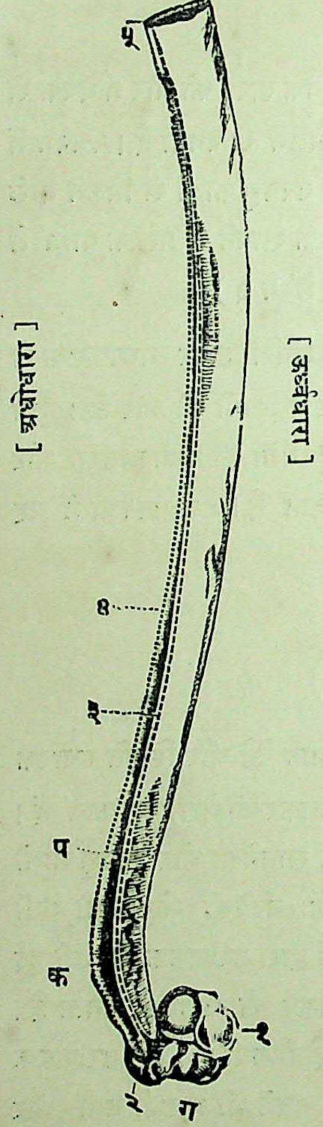

(पीछे का भाग)

यह छठी अथवा सातवीं पर्शुका है।
१ दो भागोंमें विभक्त हुआ मुण्डस्थ स्थालक। २ अर्बुद। क—पर्शुका कोण। ग—ग्रीवा। प—पर्शुकानुगा परिखा, ३-४ परिखाके दोनों किनारे —ऊपरका और नीचेका।

प्रत्येक पर्शुका में छः साधारण दर्शनीय अवयव हैं; यथा—मुण्ड, अर्बुद, ग्रीवा, कोण, काण्ड और अग्रकोटि। इनमें—

मुण्ड[१]—नामक पर्शुका का पश्चिमप्रान्त प्रायः गोल होता है। पृष्ठ के दो कशेरु पिण्डों में स्थित अर्धचन्द्राकार स्थालकों से मिलने के लिये इस में दो स्थालक होते हैं।

अर्बुद[३]—(२५ वां चित्र में २)—उस के समीपस्थ उभारका नाम है, जिस में कशेरुबाहु में स्थित स्थालक के साथ मिलनेके लिये एक सन्धिचिन्ह है।

ग्रीवा[४]—(२५ वां चित्र में ग)—मुण्ड और अर्बुद के मध्यवर्त्ती भाग का नाम है।

कोण[५] (२५ चित्र में क)—अर्बुदके सन्मुखस्थ कोण के आकार वाला प्रदेश है। पर्शुकाकाण्ड यहां पर टटकर मिला हुआ सा दीखता है।

काण्ड[६]—धनुष के समान टेढ़ा पर्शुका का मध्य-भाग है। इसकी दो धाराएं हैं—ऊर्ध्वधारा और अधोधारा। इनमें से अधोधारा में 'पर्शुकानुगा[७]' नाम की परिखा है--जिस में से इसी नाम की सिरा-धमनी नाड़ी गुजरती है (२५ चित्र में प)। इसके दोनों किनारों पर 'पर्शुकान्तरिका[८]' नामकी दोनों पेशियां लगती हैं (२५ वां चित्र में ३ - ४)।

अग्रकोटि[९]—(२५ वां चित्र ५)—सन्मुख प्रान्त का नाम है जिस में उपपर्शुका से मिलने के लिये खुरदरा खात है।

उपरोक्त साधारण चिह्न तीसरी से लेकर नौवीं पर्शुका तक समान है। पहली, दूसरी, दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं में विलक्षणताएं हैं। यथा—

---

१ Head २ Circular facet or Socket ३ Tuberosity ४ Neck ५ Angle ६ Shaft ७ Groove for Intercostal Vessels and Nerves ८ Intercostal Muscles, External and Internal ९ Sternal end.

पहली पर्शुका सबसे छोटी और 'दंराती'[1] के आकार की होती है। इसका मुण्ड छोटा और एक स्थालक वाला होता है। इसका काण्ड चपरा होता है, जिसका

(२६ वां चित्र—विशिष्टपर्शुका।)

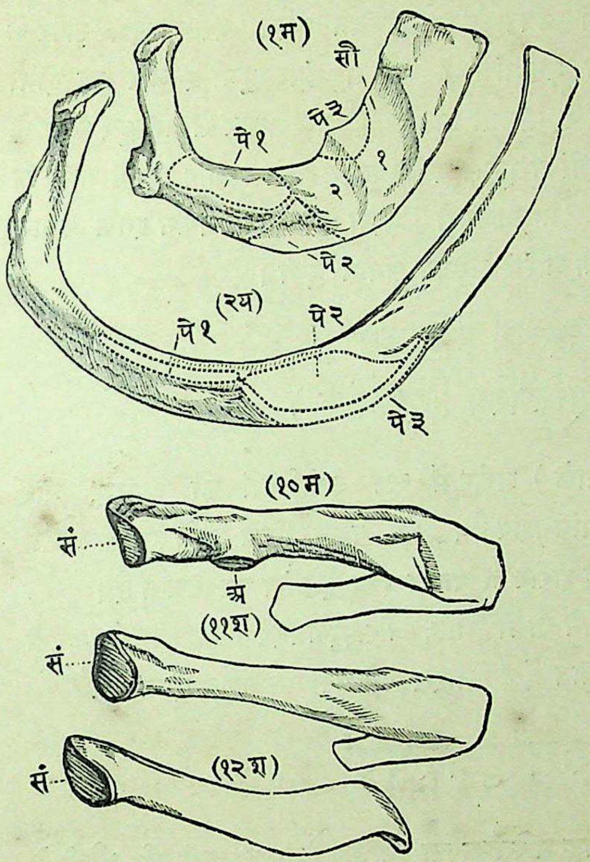

ऊर्ध्वतल और अधस्तल दो तल दिखाई देते हैं। इसमें कोण का अभाव है। ऊर्ध्वतल में 'अक्षाधरा'[2] नाम की सिरा और धमनी को धारण करने के लिये दो खात हैं (२६ चित्र १-२)। इसके आगे पीछे क्रमसे तीन पेशियां 'अरित्रा'[3], 'पर्शुकाकर्षणी पुरोगा' और 'पर्शुकाकर्षणी मध्यमा'[4] लगती हैं।

दूसरी पर्शुका की पहली—भांति एवं उससे लम्बी है। इसके ऊर्ध्वतल में 'पर्शुकाकर्षणी पृष्ठगा'[5] और 'अरित्रा' नामकी दो पेशियां लगती हैं,

दसवीं पर्शुका छोटी और वड़िश के आकार की होती है। इसके मुण्ड पर भी एक स्थालक होता है, और कोण काण्ड के मध्य में होता है। ग्यारहवीं भी ऐसी होती है; परन्तु इसमें अर्वुद का अभाव होता है। वारहवीं भी ग्यारहवीं की भांति है, इसमें कोण नहीं होता। यह चौव्वीस पर्शुकाओं की व्याख्या हो गई।

व्याख्या—(१म) प्रथम पर्शुका (२य)—दूसरी, (१०म)—दशवां, (११श)--ग्यारहवां, (१२)—वारहवां। अ, अर्वुद। सं, मुराडवर्त्ती स्थालक।

प्रथम की विशेषतायें—१, २, सिरा और धमनी की धारण करने के लिये अक्षाधरा नामके दो खात। पेशियां—पहली में पे १—पर्शुकाकर्षणी मध्यमा। पे २ अरित्रा। पे ३ पर्शुकाकर्षणी पुरोगा। दूसरी में पे १—पर्शुकाकर्षणी पृष्ठगा। पे२, पे३—अरित्रा के दोनों मुख।

उपपर्शुका—(२४ वां चित्र)—पर्शुकाओं की भांति संख्या में चौव्वीस, पर्शुकाओं के अग्रभाग से जुड़ी हुई और तरुणास्थिमय होती है। प्राचीन ग्रन्थों में इनकी उरोऽस्थियों में गणना की गया है।

---

१ दंराती घास काटने की (Sickle) २ Subclavian Vein & Artery ३ Serratus Magnus. ४ Scalenus Anticus & Medius. ५ Scalenus Posticus. ६ देखिये संस्कृत उपोद्घात में इसका समाधान।

उरःपञ्जर

उरःपञ्जर[1]—उरोगुहा को धारण करने वाली अस्थियों से बना हुआ पञ्जर है (देखिये दोनों कंकाल चित्र)। यह पीछे में पृष्ठवंश से, पार्श्वों में पर्शुकाओं से, और सामने उरःफलक तथा उपपर्शुकाओं से बनता है। इसका मुख ऊपर के ओर खुला है और नीचे से महाप्राचीरा पेशी से ढंपा हुआ है और यह दोनों पार्श्वों में क्रमशः नीचे की ओर फैलता जाता है। इस प्रकार से बने हुए पञ्जर के अन्दर श्वासमार्ग के साथ दोनों फुस्फुस एवं स्थूल महासिरा और धमनी आदि से संयुक्त हृदय और 'ग्रसनिका'[2] (अन्नप्रणाली) रहती है। इनका वर्णन इनके स्थान पर आयेगा। यह मध्यकाय के अस्थि परिचय समाप्त हुआ।

तृतीय परिच्छेद
(शिरोऽस्थि विज्ञानीय)

इस षडङ्ग (छः अंगोंवाले) शरीर में सब ज्ञानेन्द्रियों का आधार और प्राणों का आश्रय स्थान उत्तमांग शिर है। यह पहले लिख चुके हैं कि इसमें अट्ठाइस अस्थियां होती हैं। यह शरीर के धारण दण्ड पृष्ठवंश पर टिकता है।

इसमें शिरःसम्पुट को बनाने वाली आठ, और मुखमण्डल को बनाने वाली चौदह अस्थियां हैं। इस अध्याय में इन बाइस अस्थियों का वर्णन होगा।

शिरःसम्पुटास्थियां

शिरःसम्पुट[3]– यह साङ्गोपाङ्ग मस्तिष्क का आधार, आधी कटी हुई लौकी के आकार का अस्थिसम्पुट है। इसकी अधःसीमा दिखाने वाली चक्ररेखा ऐसी है— (२७ वां चित्र में देखिये)

भ्रुवौ चेत् कर्णमूलाभ्यां पश्चात् केशान्तसंगते।
तदाऽसौ सूच्यते सीमा शिरःसम्पुटनिम्नगा॥

अर्थात् – यदि दोनों भ्रू (भौं) बाहरी भाग से आरम्भ करके कर्णमूलों के नीचे तक और वहां से पीछे दोनों तरफ केशों की निम्न सीमातक मिला दी जायें तो मिलने वाली रेखा शिरःसम्पुट की अधःसीमा को बतलाती है। इसके ऊपर का भाग शिरःसम्पुट है।

---

१ Throax. २ अन्नप्रणाली [ग्रसनिका] = Oesophagus. ३ शिरःसम्पुट = Cranium.

२७ वां चित्र—करोटि।

[शिरःसम्पुट का विभाग अक्षरों से दिखाया गया है।]

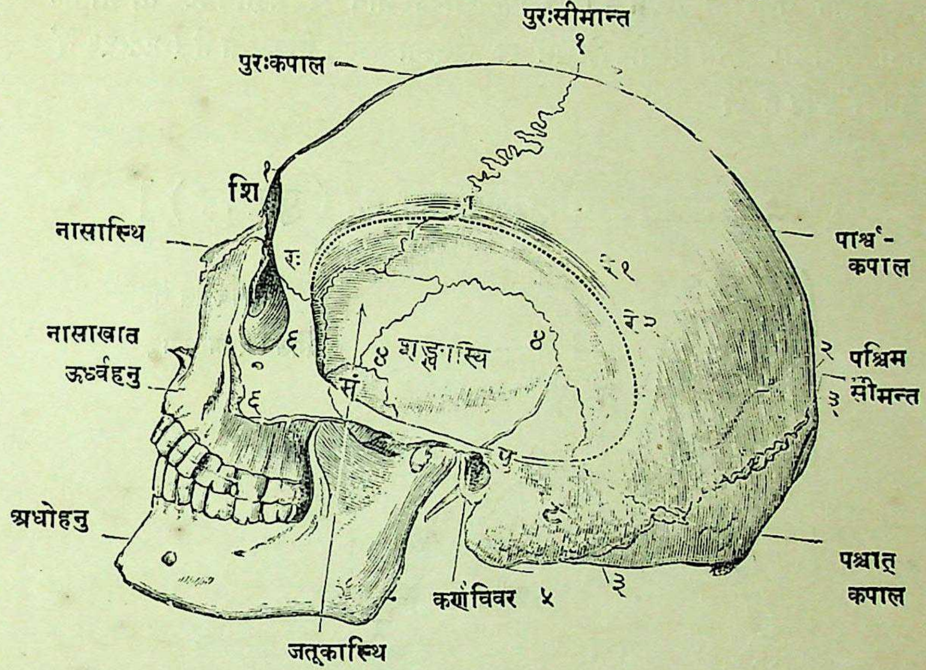

व्याख्या—१, १, पुरःकपाल। २, २, पार्श्वकपाल। ३, ३, पश्चिमकपाल। ४, ४, शंखास्थि (अंकों के युग्म सीमा को दिखाने के लिये)। ५, इसीका गोस्तनांश। ६, ६ गण्डास्थि। रे १, शंखतोरणिका उत्तरा (रेखा)। रे २, शंखतोरणिका अधरा। बीच में शंखच्छदा पेशी उत्पन्न होता है।

शिरःसम्पुट को बनाने वाली आठ अस्थियां हैं। यथा—पुरःकपाल, पश्चिम-कपाल, और दो पार्श्व कपाल ये चार तो शिरःकपाल हैं। कर्णमूल में लगी हुई दो शंखास्थियां हैं। शिरःसम्पुट की भूमि बनाने वाली जतूका और झर्झरक नाम की दो अस्थियां हैं। इनमें से प्रथम छः स्पष्टरूप से बाहर दिखाई देती हैं, और शेष दो अस्थियां नासा एवं कण्ठ आदि की छद बनाती हुई शिरके अन्दर छिपी रहती हैं।

सम्पूर्ण करोटि में दीखने वाली विशेषतायें इस अध्याय के शेष में कही जायंगी।

पश्चिमकपाल

शिरके चारों कपालों में सबसे प्रथम **पश्चिमकपाल**[1] का वर्णन किया जायगा। कारण—यही शिरका मूलबन्धन होकर पृष्ठवंश की चूड़ा पर बैठता है।

---

१ पश्चिमकपाल=Occipital Bone.

इसके दो भाग हैं, एक कपालभाग और दूसरा मूलभाग। इनमें कपालभाग ऊपर की तरफ सर्प के फण के समान फैला हुआ है, और मूलभाग सर्प की ग्रीवा के समान नीचे की तरफ है। इसके सन्धिस्थान पर 'महाविवर'[१] है, जो कि प्रायः गोलाकार होता है और जिसमें से सुषुम्ना काण्ड निकलता है (२८-२९ वें चित्र में स्पष्ट है)।

[२८ वां चित्र--पश्चिमकपाल का (पुरस्तल)]

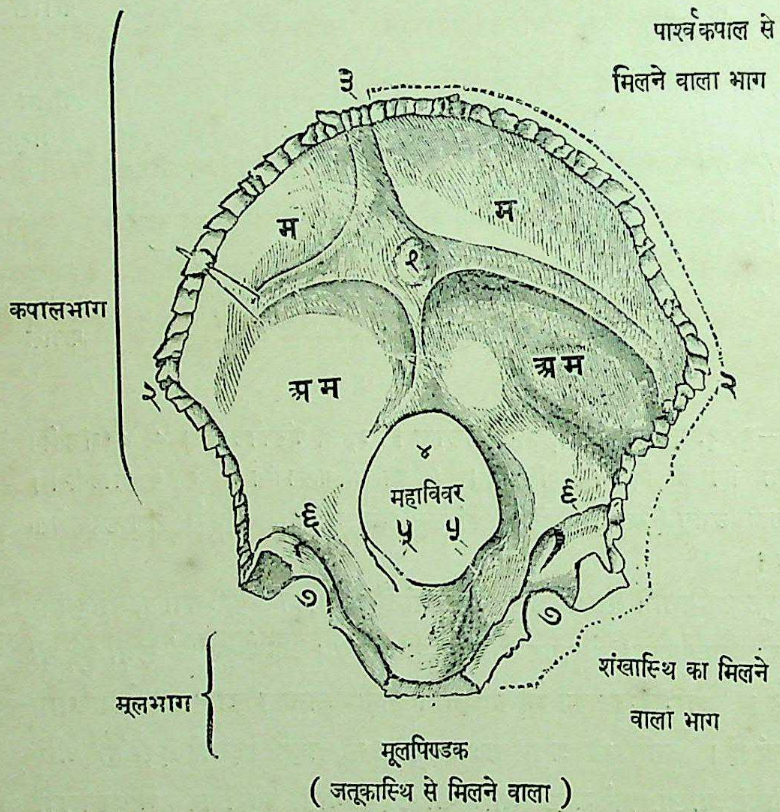

व्याख्या—१, महावर्त्त। २, २, दोनों पार्श्वकोण। २, १, २, पार्शिका सिरापरिखा। ३, सम्मुखधारा का मध्यविन्दु। ३, १, ४, दीर्घिका नाम की सिरापरिखा। ५, ५, दोनों कलायक स्नायु से मिलने के लिये। ६, ६, दोनों मन्याप्रवर्धन। ७, ७, दोनों मन्याखात। क—परिखातट पर लगने वाली कलाओं की सूचक रेखाद्वय।

---

१ Foramen Magnum.

दो भागों से उपलक्षित पश्चिमकपाल के दो तल स्पष्टरूप से दीखते हैं। इनमें से एक पुरस्तल और दूसरा पृष्ठतल है। इनमें—

पुरस्तल—शिरःसम्पुट के अन्दर रहता है (२८ वां चित्र)।

कपालभाग का पुरस्तल नतोदर होता है। यहां पर मस्तिष्क का पिछला आधा भाग और अनुमस्तिष्क रहता है (२८ वां चित्र में म, म, तथा अम, अम,), और यहां पर स्वस्तिक के आकार की चार 'गहरी सिरापरिखायें'[1] हैं। और स्वस्तिक के बीच में इनका केन्द्र बना हुआ महावर्त्त[2] नाम का (२८ वां चित्र १) प्रदेश है। सिरापरिखा के किनारों पर 'मस्तिष्कच्छदिका' नाम की कला के लम्बी तथा चौड़ी—दो 'सिरे'[3] लगते हैं (२८ वां चित्र में क)।

मूलभाग[4] का पुरस्तल थोड़ा खात वाला है। यहांपर 'सुषुम्नाशीर्षक'[5] रहता है। कपाल और मूलभाग के संयोगस्थल के दोनों पार्श्वों में अर्द्धचन्द्राकार 'मन्याखात'[6] नाम के दो खात हैं (२८वां चित्र ७-७)। इनमें से 'अनुमन्या'[7] नाम की स्थूलसिरायें गुजरती हैं। इसीके समीप में मन्याप्रवर्द्धनक[8] नाम के दो प्रवर्द्धन हैं (२८ वां चित्र में ६-६)।

कपालभाग की धारा बहुत दन्तुर होती है (२८ वें चित्र में स्पष्ट है)। इसके दोनों पार्श्वों के बीच में पार्श्वकोण[9] नामक दो कोण हैं (२८ वां चित्र में २, २)। इनके ऊपर स्थित धारा का आधा भाग दोनों पार्श्वकपालों की दोनों पश्चिमधाराओं से मिलता है, और नीचे स्थित धारा का कुछ भाग दोनों पार्श्वों में शंखास्थियों से मिलता है। और इनके मध्य में जतूकास्थि का संयोग होता है।

पृष्ठतल—पश्चिमकपाल का पृष्ठतल शिरःसम्पुट के बाहर रहता है। इसमें—(२९ वां चित्र)

कपालभाग का पृष्ठतल ऊपर से कछुवे की पीठ के समान और 'शिरश्छदा' नाम की पेशी से ढका होता है। इसके बीच में एक उभार है, जिसका

---

१ Two Longitudial and Two Lateral Sinuses २ Torcular Herophilii. ३ Falx Cerebri & Tentorium Cereblli. ४ Basilar Portion. ५ Medulla Oblongata. ६ Jugular Fossæ. ७ Jugular Veins. ८ Jugular Processes. ९ Lateral Angles.

२६ वां चित्र—पश्चिमकपाल (पृष्ठतल)

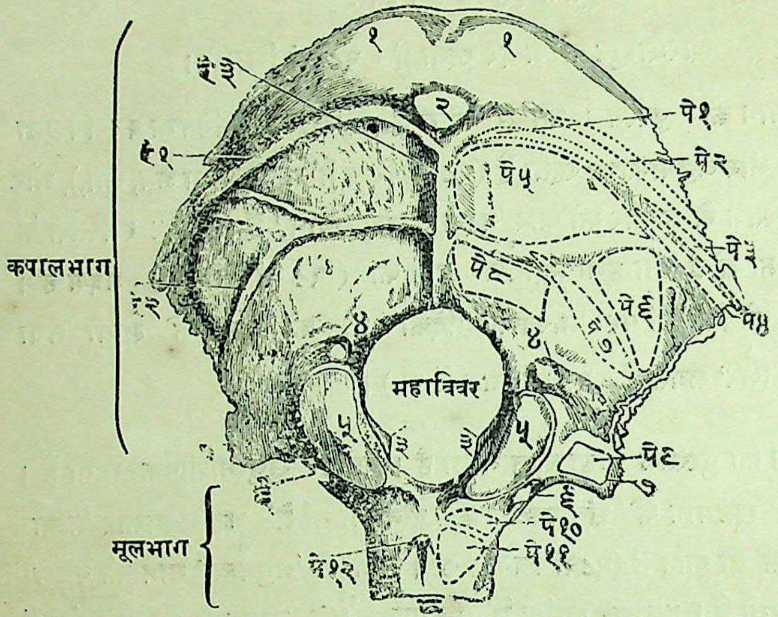

व्याख्या—१, १, पृष्ठतल का चिकना ऊंचा भाग—शिरश्छदा पेशी से ढंपा हुवा। २, पश्चिमावुर्द। ३, ३, स्नायु से मिलने वाले दोनों कलायक। ४, ४, मूलकोटि के पश्चिमभाग में जाने वाले दोनों छिद्र। ५, ५, दोनों मूलकोटि। ६, ६, इसके सामने जाने वाले दोनों छिद्र। ७, ७, दोनों मन्याप्रवर्धन। ८, मूलपिण्ड। रे १, उत्तरतोरणिका। रे २, अधरतोरणिका। रे ३, पश्चिमालिका। पेशियां—पे १, पृष्ठप्रच्छदा। पे २, शिरश्छदा। पे ३, उरःकर्णमूलिका। पे ४, शिरोग्रीवविवर्त्तनी। पे ५, शिरोग्रीवपृष्ठिका। पे ६ उत्तर-तिरश्चीना। पे ७, पे ८, शिरःपृष्ठदण्डिका गुर्व्वी और लघ्वी। पे ९, शिरःपार्श्वदण्डिका। पे १०, पे ११, शिरःपूर्व्वदण्डिका लघ्वी और गुर्व्वी। पे १२, उत्तरा कण्ठसंकोचनी।

नाम पश्चिमावुर्द[1] है। इससे मिली और नीचे की ओर जाती एक उठी हुई रेखा है, जिसका नाम मध्यालिका[2] है। इन दोनों पर 'ग्रीवाधरा'[3] नाम की स्नायुरज्जु लगती है। 'मध्यालिका' के दोनों पार्श्वों में तोरण के आकार की दो दो रेखायें वाहर गई हैं। इनमें से ऊपरकी दोनों रेखाओं का उत्तरतोरणिका[4] और नीचेकी दोनों रेखाओं का अधरतोरणिका[5] नाम हैं।

---

१ Ext. Occipital Protuberence. २ Ext. Occipital Crest. ३ Ligamentum Nuchæ. ४ Supoerior Curved lines. ५ Inferior Curved lines.

मूलभाग के पृष्ठतल के दोनों पार्श्वों में शिम्बीबीज के आकार वाले मूलकोटि[1] नाम के दो उभार हैं (२६ वां चित्र ५, ५)। ये चूड़ावलयाकशेरुका के ऊपर स्थित दोनों स्थालकों से मिलते हैं। इनके पार्श्वों में दो कलायक[2] नाम वाले दो उभार हैं। यहां पर 'मध्यरज्जुका'[3] नाम की स्नायु लगती हैं (२६ वां चित्र ३-३)। और इसके ऊपर दो दो रन्ध्रमार्ग[4] हैं. जो कि मूलकोटि के सामने और पीछे स्थित है। इनमें 'जिह्वाधरीया' नामकी द्वादशी नाड़ी और सिरा प्रविष्ट होती है।

इस प्रकार पश्चिमकपाल छः अस्थियों से जुड़ता है। यथा—ऊपर के आधे भाग में दोनों पार्श्वकपालों से, निचले आधेभाग में दोनों तरफ की शंखास्थियों से, मूल के आगे जतूकास्थि से, और दोनों मूलकोटियों द्वारा चूड़ावलया से इन सन्धियों को याद करने के लिये निम्नश्लोक है—

जतूक-चूड़ावलया-शंख-पार्श्वकपालकैः।
पश्चिमस्य कपालस्य सन्धानं षड्भिरीरितम्॥

पेशियां—पश्चिमकपाल के पृष्ठतल पर पेशियों के बारह जोड़े लगते हैं। यथा—उत्तरतोरणिका के समीप में तीन—'शिरश्छदा'[5], 'पृष्ठच्छदा'[6] और 'उरःकर्णमूलिका'[7]। तोरणिकाओं के बीच में तीन--'शिरोग्रीवपृष्ठिका'[8], 'उत्तरतिरश्चीना'[9] और 'शिरोग्रीवविवर्त्तनी उत्तरा'[10]। अधरतोरणिका के नीचे तीन—'शिरःपृष्ठदण्डिका लघ्वी', 'शिरःपृष्ठदण्डिका गुर्वी'[11], और शिरःपार्श्वदण्डिका। मूलभाग में तीन—'शिरःपूर्व्वदण्डिका लघ्वी'[12], शिरःपूर्व्वदण्डिका गुर्वी और उत्तरा 'कण्ठसंकोचनी'[13] (इनके लगने का स्थान २६ वें चित्र में देखिये)।

पार्श्वकपालास्थियां

पार्शकपाल[14] नाम की दोनों अस्थियां शिरके पार्श्व में रहती हैं। ये चतुष्कोण तथा पुरः और पश्चिमकपाल के मध्य में स्थित हैं। इन दोनों के मध्यरेखा में परस्पर मिलने से शिरःसम्पुट की छद और दोनों पार्श्व बनते हैं।

---

१ Occipital Condyles. २ Tubercles. ३ Check Ligaments. ४ Anterior & Posterior Condyloid Foramina. ५ Occipito-frontatis. ६ Trapezius. ७ Sterno-mastoid ८ Semi-spinalis Capitis Complexus. ९ Obliqus Capitis Superior. १० Splenius Capitis. ११ Rectus Capitis Posticus—Minor, Major and Lateralis. १२ Rectus Capitis Anticus—Minor and Major. १३ Superior Constrictor of Pharynx. १४ Parietal Bones.

प्रत्येक पार्श्वकपाल के दो तल हैं—एक बहिस्तल और दूसरा अन्तस्तल। चार धारायें और चार ही कोण हैं।

बहिस्तल- कछुवे की पीठ के समान होता है (२७ वां चित्र)। इसमें 'पार्श्व[१]कुम्भ' नाम का पिण्डाकार एक उभार है, और धनुष के समान टेढ़ी दो रेखायें हैं, इनका नाम शं[२]खतोरणिका उत्तरा और शंखतोरणिका अधरा है। इनमें से अधरा शंखतोरणिका के कोड़भाग में शं[३]खच्छदा नाम की पेशी का प्रभव स्थान है।

[३० वां चित्र—पार्श्वकपाल (अन्दर का तल)]

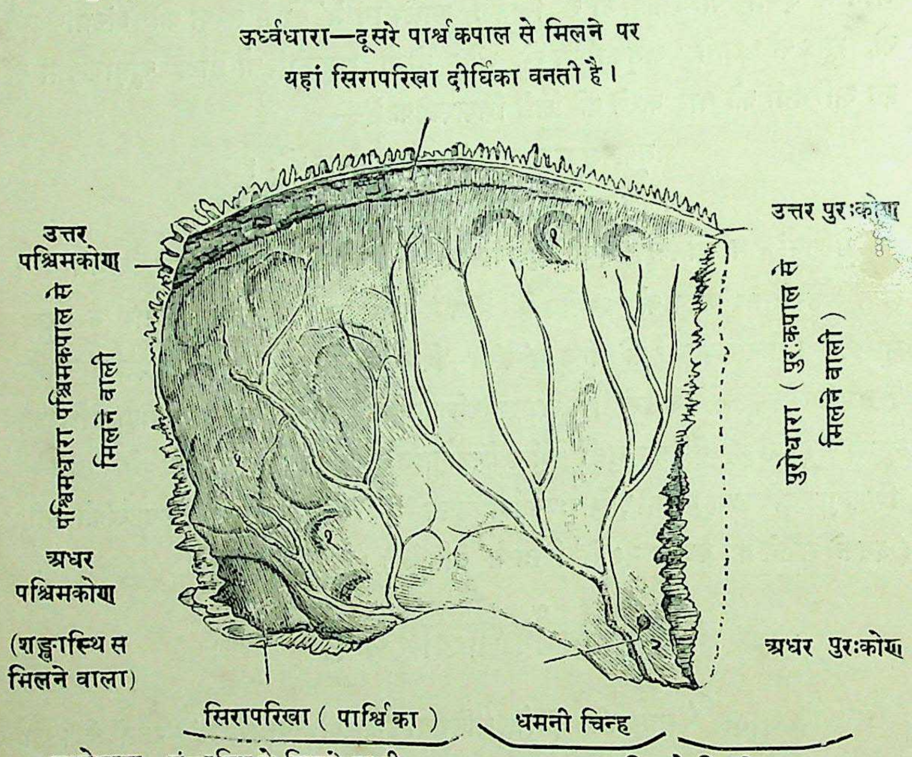

[१,१,१, अंक प्रदेश कलाग्रन्थि के गर्त्त]

अन्तस्तल—नतोदर और खुरदरा होता है। इसमें 'कला[५]ग्रन्थि' को धारण करनेके लिये जहां तहां छोटे छोटे खात हैं और मस्तिष्ककलापोषणी 'मध्य[४]धमनी' की शाखा प्रशाखाओं अनेक के विस्तार चिह्न भी दिखाई देते हैं, जोकि (३० वां चित्र १)

---

१ Partieal Eminences. २ Superior and Inferior Temporal Ridges. ३ Temporal muscle. ४ Middle Meningeal Artery. ५ Pacchionion Bodies.

धाराएं—पार्श्वकपाल की चार धाराऐं हैं, जो कि आगे से दन्तुर हैं। इनके नाम क्रम से उत्तरा, अधरा, पुरोधारा और पश्चिमधारा हैं। इनमें उत्तरा धारा दूसरे पार्श्वकपाल की उत्तरा धारा से और अधरा धारा शंखास्थि और जतूकास्थि से मिलती है। पुरोधारा पुरःकपाल से और पश्चिमधारा पश्चिमकपाल से मिलती है।

कोण—चार हैं। ऊपर और नीचे स्थित दो पुरःकोणों की क्रमशः उत्तर और अधर संज्ञा है। पश्चिमकोणों की भी ऐसी ही संज्ञा है। ऊपर की ओर स्थित दोनों पुरःकोण और पश्चिमकोण जन्म से लेकर एक वर्षतक शिशु के सिरमें कोमल कलामय रहते हैं। इसी लिये स्तनपायी- शिशु के शिर में पुरः और पश्चात् स्थित दो कोमल 'तालु'[1] (तलुवे) दिखाई देते हैं। नीचे का पुरःकोण धमनी खातों से चिन्हित है, यह जतूकास्थि से मिलता है और नोचे का पश्चिमकोण 'पार्श्विका' नाम की सिरापरिखा से अंकित है। यह शंखास्थि से जुड़ता है।

सन्धि—प्रत्येक पार्श्वकपाल पांच अस्थियों से जुड़ता है। यथा—पुरःकपाल से पश्चात्कपाल से, दूसरे पार्श्वकपाल से, शंखास्थि से और जतूकास्थि से। इसका स्मारक श्लोक यह है—

"पुरःपश्चात्कपालाभ्यां शंखास्थ्ना च जतूकया।
सन्धिः पार्श्वकपालस्य स्वनाम्ना[2] चेति पञ्चभिः॥"

पुरःकपाल

पुरःकपाल अथवा **अग्रकपाल**[3]—शिरःसम्पुट के सम्मुखभाग को वनाने वाली समुद्रशुक्ति के आकार की कपालास्थि है। इसके दो भाग हैं, यथा—एक ललाटभाग और दूसरा नेत्रच्छदि भाग (३१ चित्र)। इसमें—

(१) **ललाटभाग**[4]—तीन फलकों से मिलकर बनता है, यथा—मध्य में ललाटफलक से और पार्श्वों में दोनों पार्श्वकपालों से। इनमें—

ललाटफलक[5]—इसका बहिस्तल कछुवे की पीठ के समान है। इसके दोनों पार्श्वों में कुम्भ के समान उठे हुवे दो उभार हैं—इनको <u>अग्रकुम्भ</u>[6] कहते हैं (३१ वें चित्र में अ० कु०)। बुद्धिमान् व्यक्तियों में ये विशेष उठे होते हैं। इनके मध्य में नासामूल पर स्थित उभार को 'कूर्चक'[7] या 'भ्रूमध्य' कहते हैं। प्राचीनों के मतसे—यहां पर 'स्थपनी' नाम का मर्म है। यहां

---

१ Anterior and Posterior Fontanelles. २ स्वनाम दूसरे पार्श्वकपाल से। ३ Frontal Bone. ४ Frontal Portion. ५ Frontal Plale. ६ Frontal Eminences. ७ Glabella. 'कूर्चमस्त्री भ्रुवोर्मध्यम्' इत्यमरः।

से ऊपर जानेवाली एक रेखा है, जो कि बाल्यावस्था में पृथक् रहने वाले पुरःकपाल के दोनों टुकड़ों की सन्धिरेखा है, इसका नाम 'गूढ़सीमन्तिका'[१] है (३१ चित्र में 'सी')। कूर्च्चक से दोनों ओर भ्रूवों की आश्रयभूत तोरण के आकार वाली भ्रूतोरणिका[२] नाम की दो उभार हैं। इनमें प्रत्येक की बाह्यकोटि[३] और आन्तरकोटि[४] नाम की दो कोटियां हैं। उनके मध्य में अधिभ्रुव[५] नाम का सूक्ष्म छिद्र है (३१ चित्र में 'अभ्रु')। इनमें 'बाह्यकोटि' अपाङ्गदेश में गण्डास्थि से और आन्तरकोटि नासामूल में नासास्थि से मिलती है। 'अधिभ्रुव' नाम के छिद्र में से 'अधिभ्रुवा' नाम की सिरा-धमनी और नाड़ियां[६] निकलती हैं। भ्रूतोरणिकाओं के पीछे अस्थि के अन्दर छिपे हुवे ललाटकोटर[७] नाम के बहुत से कोटर हैं। इनका सम्बन्ध नासा-गुहा से होता है।

[३१ वां चित्र—पुरःकपाल (बहिस्तल)]

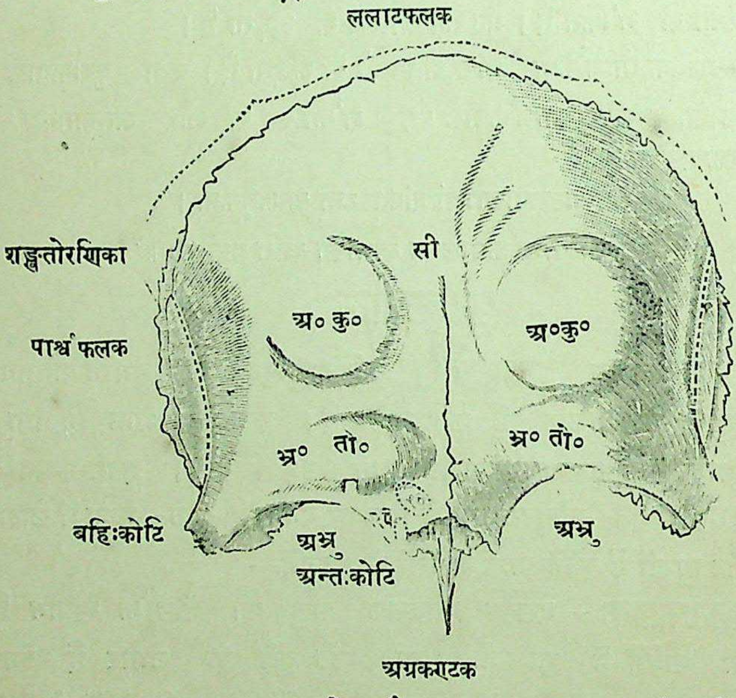

ललाटफलक का अन्तस्तल नतोदर है तथा इधर उधर बहुत से 'ग्रन्थिखातों'[८] से और धमनी की शाखा प्रशाखाओं[९] के चिन्हों से चिन्हित दीखता है। इसके मध्य में 'सिरापरिखा' है। उसके किनारों पर 'मस्तिष्कच्छदिका'[१०] नाम की कला का 'दात्रिका' नाम का मध्यभाग[११] लगता है।

---

१ Metopic Suture वृद्धों के पुरःकपाल में नहीं दीखता। २ Superciliary ridges. ३ External Angular Process ४ Internal Angular Process. ५ Supra-orbital Foramen. ६ Supra-orbital Vein, Artery and Nerve. ७ Frontal Sinuses. ८ Depressions for Pacchionion bodies. ९ Markings of Anterior Meningeal Artery ramifications. १० Dura Mater. ११ Falx Cerebri.

पार्श्व फलक[1]—ललाटफलक के दोनों ओर दो फलक हैं, जो शंखच्छदा पेशी को धारण करने के लिये ईषत्खातोदर हैं। इनकी ऊर्ध्वसीमा में दोनों ओर धनुष के समान टेढ़ी शंखतोरणिका नाम की दो रेखायें हैं। इन पर 'शंखप्रच्छदा' नाम की दो प्रावरणी कला जुड़ती हैं—जिनसे 'शंखच्छदा' पेशियां ढंपी जाती है।

[३२ वां चित्र—पुरःकपाल (अन्तस्तल)]

(दिखाने की सुगमता के लिये उत्तान और अधोमुख रखा गया है।)

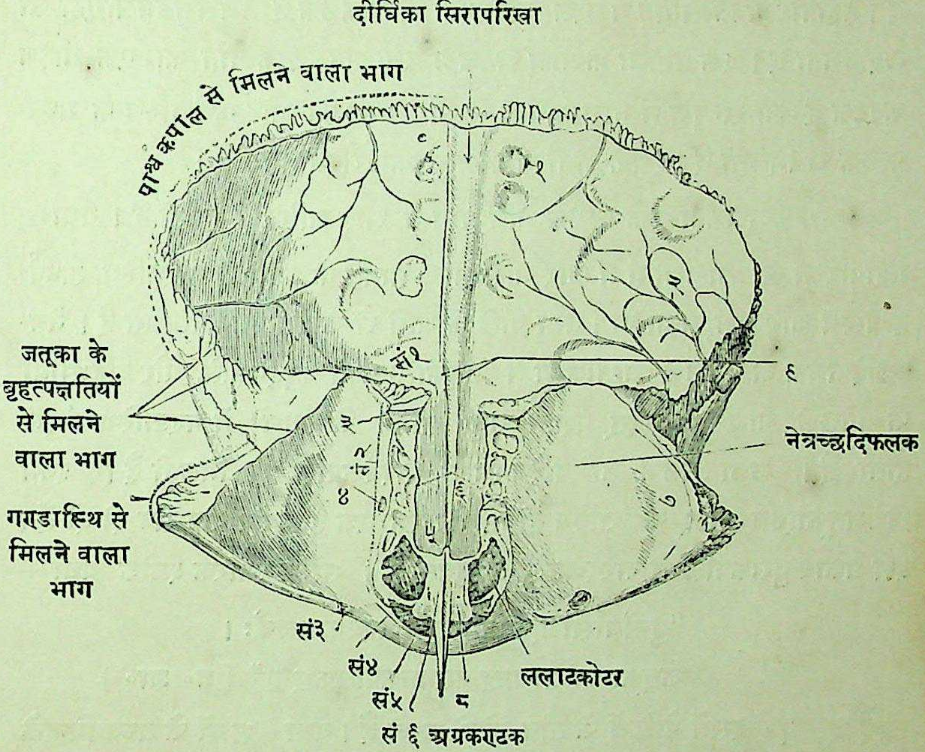

व्याख्या—१, कलाग्रन्थिखात। २, धमनीचिह्न। ३—४ झर्झरकोटर। ५, महापरिखा। ६, महापरिखा के दोनों किनारे। ७, अश्रुग्रन्थिखात। ८, नासागुहाच्छदि को बनाने वाला चुद्रफलक। ९, सिरापरिखा के दोनों किनारे। सं० १ जतूकास्थि के लघुपक्षति से मिलने वाला भाग। सं २ झर्झरकपार्श्व से सन्धेय भाग। सं ३ अश्रुपीठास्थि से सन्धेय भाग। सं ४ ऊर्ध्वहन्वस्थि से सन्धेयांश। स ५ नासास्थि से मिलने वाला अंश। सं० ६ झर्झरक के मध्यफलक से सन्धेयांश।

(१) नेत्रच्छदि भाग—पुरःकपाल का नेत्रच्छदि भाग दोनों नेत्रगुहाओं की छद बने हुवे दो नेत्रछदिफलकों से बना हुवा है, और उन फलकों के वीच में एक गहरी परिखा है, जिसका नाम 'महापरिखा' है। इनमें—

---

१ Temporal Plates. २ Temporal Ridges.

नेत्रच्छदिफलक[१]—प्रायः त्रिकोणाकार, चिकने और किञ्चित् नतोदर है। ये अक्षिगोलकों को ऊपर से ढंपते हैं। प्रत्येक फलक के बहिर्भाग में अश्रुग्रन्थि को धारण करने वाला एक 'खात' है। उसका नाम अश्रुग्रन्थि खात[२] है।

इन दोनों फलकों के बीच में **महापरिखा**[३] है। यह किनारों पर लगे हुवे झर्झरास्थि के 'चालनीपटल' नामक भाग से भरी जाती है। इसके दोनों किनारों पर बहुत से कोटर हैं, जोकि झर्झरास्थि के अन्दर के कोटरों से मिले हुवे हैं। महापरिखा के सामने में एक एक छोटा अस्थिफलक है, जिससे नासागुहा की छद बनती है। इस परिखा के बीच से उठा हुआ अग्रकण्टक[४] नाम का एक तीक्ष्ण कण्टक है जो सन्मुख में नासास्थियों से और पीछे की ओर झर्झरास्थि के मध्य-फलक से मिलता है। इसके दोनों ओर ललाटकोटरों[५] के द्वार हैं।

सन्धि—पुरःकपाल के प्रत्येक आधे भाग में सात अस्थियां जुड़ती हैं। यथा—महापरिखा की बाह्यसीमा में चार अस्थियां—सामने के आधे से नासास्थि, ऊर्ध्व-हन्वस्थि और अश्रुपीठास्थि ; तथा पीछे के आधे से झर्झरास्थि—मिलती है। नेत्र-च्छदिफलक के पिछले अन्तःकोण में जतूकास्थि की क्षुद्रपक्षति, और बहिःसीमा के पिछले आधे में बृहत् पक्षति तथा सामने के आधे में गण्डास्थि संयुक्त होती है। ललाटफलक की पश्चिमधारा पार्श्वकपाल से मिलती है। इनमें से जतूकास्थि और झर्झरास्थि दोनों ओर एक एक हैं, और शेष सब दो दो हैं। इस प्रकार पुरःकपाल से बारह अस्थियां जुड़ती है। सन्धि स्मारक श्लोक यथा—

"युग्मैर्नासाश्रुगण्डोर्ध्वहनुपार्श्वकपालकैः।
जतूकाझर्झराभ्याश्च बद्धमग्रकपालकम् ॥" (प्र० शा०)

पेशियां—इसमें पेशियों के तीन जोड़े लगते हैं। यथा—भ्रुवों के मध्य विन्दुके दोनों ओर 'भ्रूसंकोचनी' और 'नेत्रनिमीलनी'[६]। एवं शंखतोरणिका के अन्दर 'शंख-च्छदा' पेशी।

शंखास्थियां

शंखास्थियां[७] दो हैं, जो दोनों तरफ शंखप्रदेश (कनपटी) में पार्श्वकपालों की निचली सीमा पर रहती हैं। इस अस्थि के तीन भाग हैं। यथा—शंखचक्र, कर्णमूलपिण्ड और अश्मकूट। इनमें—

१ Orbital Plates. २ Lachrymal Fossa. ३ Ethmoid Notch. ४ Nasal Spine, ५ Openings of Frontal Sinuses. ६ Corrugator Supercilii & Orbicularis Palpabrerum. ७ Temporal Bones.

(१) **शंखचक्र**[1]—(३३ वां चित्र) शंखप्रदेश को बनाने वाला प्रायः चक्राकार अस्थिफलक है। इसका वाह्यतल चिकना एवं धमनी के खातों से चिन्हित होता है। यहां पर सामने की ओर मुखवाला 'गण्डप्रवर्धनक'[2] नाम का एक लम्बा प्रवर्धन है, जो गण्डास्थि से संयुक्त होता है। उसकी दो धारायें हैं—'उत्तरा' और 'अधरा'। उत्तरा धारा में 'शंखप्रच्छदा[3] कला' लगती है। अधरा धारा के नीचे सामने के भाग में हनुसन्धि के सामने 'सन्ध्यर्बुद[4]' नाम का अर्बुद है, पीछे की ओर हनुमुण्ड को धारण करने के लिये हनुसन्धिस्थालक[5] है और उसके पीछे कर्णस्रोतका बहिर्द्वार कर्णकुहर[6] है। कर्णकुहर की परिधिमें कर्णशष्कुली को बनाने वाली तरुणास्थियां लगती हैं। स्थालक और कुहर के बीच में एक त्रिकोण अस्थिफलक है, जिसका नाम कर्णमूलफलक[7] है। यह 'कर्णमूलिक[8]' नाम की लालाग्रन्थि का आश्रयस्थान है। गण्डप्रवर्धन पीछे की ओर अधरा शंखतोरणिका[9] नाम की उठी हुई रेखा से मिला हुआ है। इसके पीछे नीचेकी ओर शंखचक्र और कर्णमूलपिण्ड के संयोग को दिखाने वाली रेखा है (३३ वां चित्र—सं० रे)।

[३३ वां चित्र—शंखास्थि (बहिस्तल)]

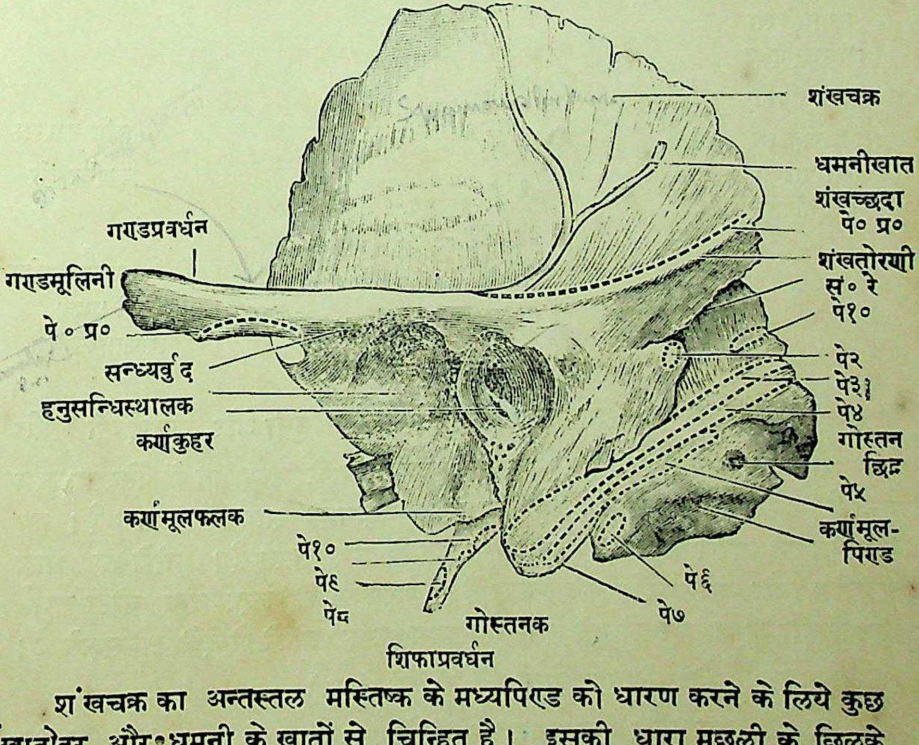

शंखचक्र का अन्तस्तल मस्तिष्क के मध्यपिण्ड को धारण करने के लिये कुछ खातोदर और धमनी के खातों से चिन्हित है। इसकी धारा मछली के छिल्के समान पतली है।

---

१ Squamous Portion. २ Zygomatic process. ३ Temporal Fascia. ४ Articular Tubercle. ५ Glenoid Fossa. ६ Ext. Auditory Meatus. ७ Tympanic plate ८ Parotid Gland ९ Temporal Ridge (Inferior).

(२) कर्णमूलपिण्ड[१]—कान की जड़ में रहने वाला अस्थिपिण्डमय अंश है। इसमें गोस्तनप्रवर्धन[२] नाम का एक प्रवर्धन है। यह प्रवर्धन नीचे को मुख किये हुवे और अन्दर से खोखला है। इसके अन्दर के 'कोटर'[३] कान के अन्दर के स्रोतों से मिले हुवे हैं। इसके अन्तस्तल में 'अर्द्धचन्द्रिका'[४] नाम की 'सिरापरिखा' है, जो कि 'पार्श्विका' नाम की सिरापरिखा से मिली हुई है। सिरापरिखा में प्रविष्ट होने वाली सिरा को धारण करने के लिये गोस्तनच्छिद्र[५] नाम का छिद्र भी यहां ही है।

[३४ वां चित्र—शंखास्थि (अन्तस्तल)]

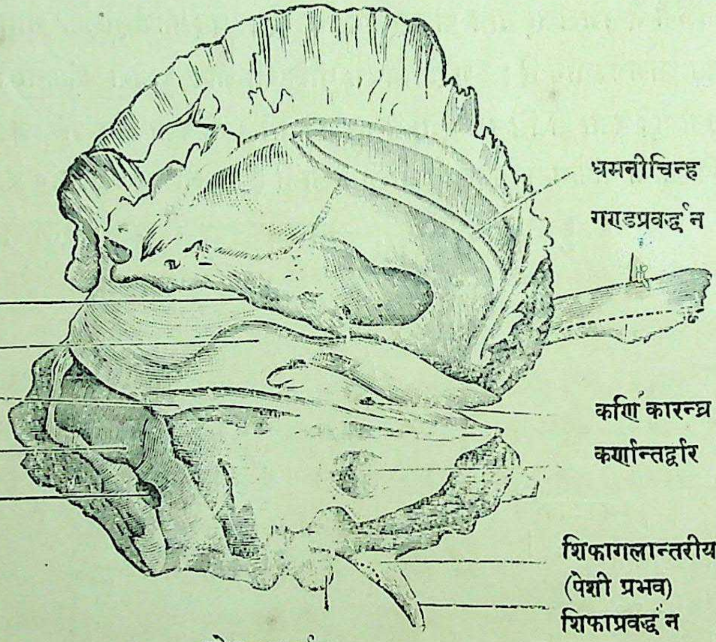

(३) अश्मकूट[६]—पत्थर की तरह ठोस बना हुवा और निहाई की भांति चार धारायुक्त अस्थिपिण्ड है। यह शिरःसम्पुटभूमि के मध्यभाग में तिरछा घुसा हुवा है। इसका ऊपर का भाग पर्वत की चट्टान के समान समतल है। यह मस्तिष्क को धारण करने के लिये आधार भूमि को बनाता है। नीचे का भाग कर्णपीठ और कण्ठच्छदि को बनाता है। अश्मकूट के अन्दर तीन छोटी कर्णास्थियां और श्रुतियंत्र छिपे हुवे हैं। यह अश्मकूट को चीरने से देखे जा सकते हैं।

अश्मकूट में ये विशेषतायें होती हैं (३४ वां चित्र)—

(क) शंखचक्र और अश्मकूट की संयोगरेखा[७] ऊपर के भाग में रहती है।

१ Mastoid Portion, २ Mastoid Process, ३ Mastoid Cells, ४ Sigmoid Groove, ५ Mastoid Foramen, ६ Petrous Portion, ७ Petro-Squamous Suture.

इसके समीप में अश्मकूट की नोक पर दो रन्ध्रमार्ग हैं—इनमें से ऊपर का मार्ग 'पटहोत्तंसिनी'[1] नाम की पेशी के प्रवेश के लिये हैं, और निचला मार्ग कान के मध्यस्रोत से मिला हुवा तथा पटहपूरणिका[2] नाम की नलिका का द्वार बना हुवा है।

(ख) श्रोत्रच्छदिकूट[3]—श्रोत्रपथ की छद बनाता है।

(ग) कर्णान्तर्द्वार[4]—इसमें से श्रुतिनाड़ी और वक्त्रनाड़ी गुजरती है।

(घ) कर्णिकारन्ध्र[5]—कर्णभूमि में जाने वाली सूक्ष्मनाड़ी और धमनियों के रन्ध्रपथ में प्रविष्ट होने के लिये है।

(ङ) शिफाप्रवर्धनक[6]—पेशी और स्नायु को बांधने के लिये जड़के आकार वाला अधोमुख प्रवर्धन है। इसकी जड़ में शिफागोस्तनान्तरीय[7] नाम का छिद्र है, इस छिद्रमें से वक्त्रनाड़ी बाहर निकलती है।

(च) मातृकासुरंगा[8]—'मातृका' नाम की धमनी को धारण करती है। इसका एक द्वार अश्मकूट के अग्रभाग में और दूसरा द्वार निचली धारा में है।

सन्धि—प्रत्येक शंखास्थि पांच अस्थियों से बंधी रहती है। यथा—गण्डप्रवर्धन के अग्रभाग में गण्डास्थि से। शंखचक्र की धारा में गण्डप्रवर्धन तक पार्श्व कपाल से और गण्डप्रवर्धन के नीचे अश्मकूट के अग्रभाग तक पश्चिमकपाल से। अश्मकूट के आगे से गण्डप्रवर्धन की सीमातक जतूकास्थि से। परन्तु हनुसन्धिस्थालक में अधोहन्वस्थि के मुण्ड से स्पर्शमात्र होता है। इसका स्मारक श्लोक यह है—

"पार्श्व-पश्चात्कपालाभ्यां गण्डास्थ्ना च जतूकया।
बद्धं, स्पृष्टमधोहन्वा, शंखं स्यात् पञ्चसन्धिकम्॥" (प्र० शा०)

पेशियां—प्रत्येक शंखास्थि में पन्द्रह पेशियां लगती हैं। यथा—शंखचक्र के वहिस्तल में 'शंखच्छदा'[9]। गण्डप्रवर्धन में 'हनुकूटकर्षणी'[10]। कर्णमूलपिण्डके बहिस्तल में 'ललाटसंकोचनी'[11], 'उरःकर्णमूलिका,'[12] 'शिरोग्रीवविवर्त्तनी'[13], 'पृष्ठदण्डिका शिरोयुजा'[14], 'द्विगुम्फिका'[15] और 'कर्णपृष्ठिका'[16] ये छः पेशियां। शिफाप्रवर्धनमें 'शिफागलान्तरीया'[17], 'शिफाकण्ठिका'[18], 'शिफारसनिका'[19]—ये तीन पेशियां। अश्मकूटभाग में 'तालूत्तोलनी'[20], 'पटहोत्तंसनी'[21], 'तालूत्तंसनी'[22] और 'कर्णान्तरिका'[23] ये चार पेशियां। इस प्रकार पन्द्रह पेशियां शंखास्थि पर लगती हैं। इनके लगनेके स्थान चित्रों में देखिये।

१ Tensor Tympani. २ Eustachian Tube. ३ Eminentia Arcuata ४ Internal Auditory Meatus. ५ Hiatus Canalis Facialis. ६ Styloid Process. ७ Stylo-mastoid Foramen. ८ Carotid Canal. ९ Temporal Muscle. १० Massetor M. ११ Occipitofrontalis M. १२ Sterno-mastoid M. १३ Splenius Capitis M. १४ Longissimus Capitis (or Trachelo-mastoid) M. १५ Digastric M. १६ Retrahens Aurem M. १७ Stylo-pharyngeus M. १८ Stylo-hyoid M. १९ Stylo-glossus M २० Levator palati M. २१ Tensor Tympani M. २२ Tensor Palati M. २३ Stapedius M. (M = muscle)

जतूकास्थि

जतूकास्थि[1]—शिरःसम्पुट की मध्यभूमि को बनाने वाली अस्थि है, जो कि दोनों गण्डास्थि, दोनों तात्वस्थि और सीरिकास्थि—इन पांच अस्थियोंको बांधकर रखती है। यह चिमगादड़ के आकार की अस्थि है (३५ वां चित्र)। इसके चार भाग हैं—मध्य में जतूकाशरीर, पार्श्वों में दो बृहत्पक्षति तथा दो लघुपक्षति, और नीचे की ओर दो चरण। इनमें—

(१) जतूकाशरीर[2]—बीच में ऊंचा-नीचा और मध्य से खोखला एक अस्थि-पिण्ड है। इसके गर्भ में जतूकाकोटर[3] नामवाले बहुत से कोटर हैं, जो कि झर्झरास्थि के कोटरों से मिले हुवे हैं।

इसके चार तल विशेषरूप से दर्शनीय हैं। यथा—पुरस्तल, पश्चिमतल, ऊर्ध्वतल और अधस्तल। इनमें—

(क) पुरस्तल—झर्झरास्थि के पार्श्ववर्त्ती पिण्ड से दोनों ओर जुड़ता है। इसके मध्य में झर्झरास्थि के मध्यफलक से मिलने वाली उठी हुई रेखा है। इसके शिखर पर त्रिकोणकण्टक[4] नाम का प्रवर्धन है, जिसके द्वारा झर्झरास्थि की छद बनाने वाले फलक से सन्धि होती है।

(ख) पश्चिमतल—चकोर है, यह पश्चिमकपाल के मूलभाग से मिलता है।

(ग) ऊर्ध्वतल—में त्रिकोणकण्टक के पीछे एक परिखा और परिखा के दोनों प्रान्तों पर दो छिद्र हैं, जिनके नाम क्रम से दृष्टिनाड़ीपरिखा[5] और दृष्टिनाड़ीरन्ध्र[6] हैं। उसमें परिखा, 'दृष्टिनाड़ीयोजिका'[7] को धारण करने के लिये और दोनों रन्ध्र दृष्टिनाड़ियों के अक्षिकूट में प्रविष्ट होने के लिये हैं। इनके पीछे 'पोषणिका'[8] नाम की ग्रन्थिको धारण करने वाला पोषणिकाखात[9] नाम का खात है।

इसके पीछे 'सुषुम्नाशीर्षक' को धारण करने वाला 'सुषुम्नापीठ'[10] नाम का एक उभार है। इसके दोनों ओर 'मातृकापरिखा'[11] नाम के दो गहरे खात हैं। इनमें से मातृकाधमनियां गुजरती हैं। प्रत्येक पार्श्व में सामने से लगाकर पीछे तक अग्रिम, मध्यम और पश्चिम—इस प्रकार नामकी तीन गुलिका[12] या उभार हैं—जिनकी संज्ञा—पुरोगुलिका, मध्यगुलिका और पश्चिमगुलिका है।

---

१ Sphenoid Bone. २ Body of the Sphenoid. ३ Sphenoidal Sinuses. ४ Ethmoidal Spine. ५ Sella Turcica. ६ Optic Foramina. ७ Optic Commissure. ८ Pituitary Body. ९ Pituitary Fossa. १० Dorsum Sella. ११ Carotid Grooves. १२ Clinoid Processes (anterior, middle & posterior).

[३५ वां चित्र—जतूकास्थि—ऊर्ध्वतल]

(स्वाभाविक आयतन)

[सम्मुख भाग]

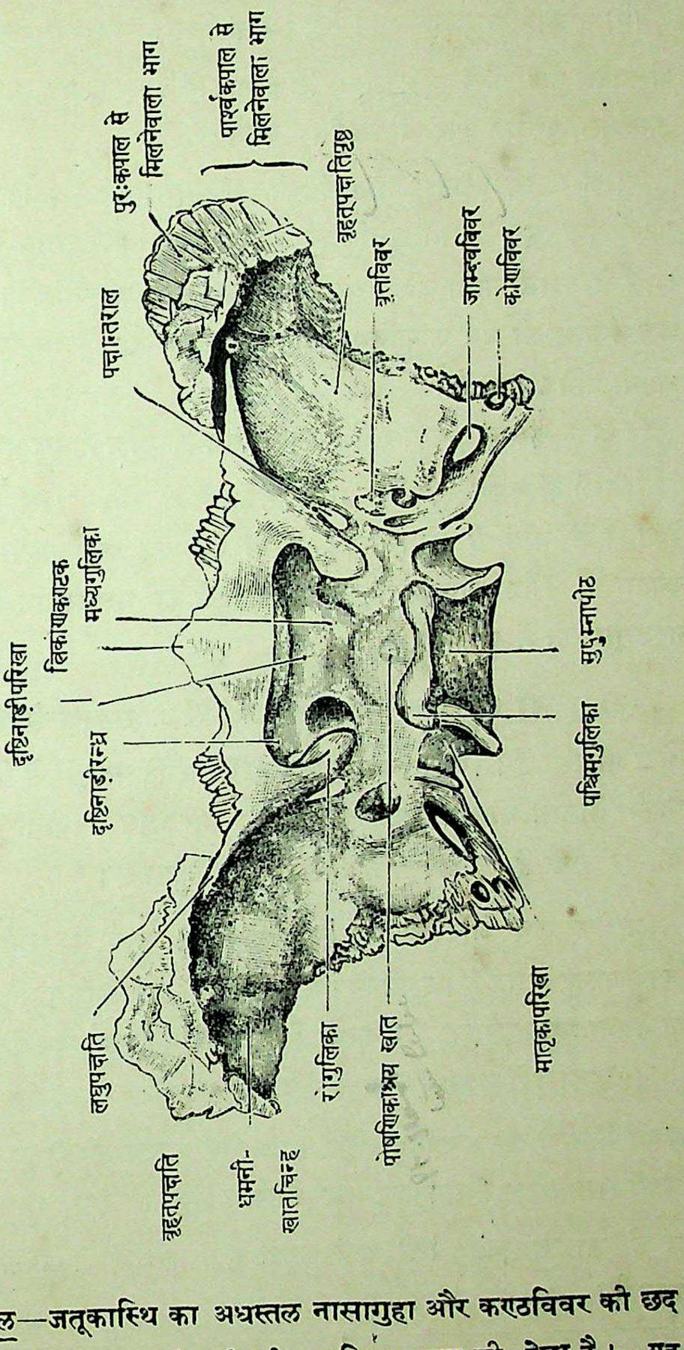

(घ) अधस्तल—जतूकास्थि का अधस्तल नासागुहा और कण्ठविवर की छद बनाता है। इसमें मोटी मूलवाली उठी हुई रसनिका[1] नाम की रेखा है। यह नासामध्य में दिवाल बनाती हुई सीरिकास्थि के पश्चिमप्रान्त से मिलती है।

१ Rosturm.

(२) दोनों वृहत्पक्षति[१]—(३५ वां चित्र)—जतूकाशरीर के दोनों पार्श्वों में शंखप्रदेश तक फैले हुवे प्रायः त्रिकोणाकार हैं। प्रत्येक पक्षके तीन तल हैं—ऊर्ध्वतल, पुरस्तल और वहिस्तल। इसमें—

(क) ऊर्ध्वतल—मस्तिष्क की मध्यभूमि को वनाता है, इसकी संज्ञा 'पक्षतिपृष्ठ' है। इसमें वृत्तविवर[२] और जाम्ववविवर[३] नाम के दो विवर हैं। इनमें से पञ्चमी नाड़ी की मध्यमा और पश्चिमा शाखायें निकलती हैं। इसकी जड़ में पीछे की ओर कोणविवर[४] नाम का छिद्र है, जिसमें कलापोषणी नाम की धमनी प्रविष्ट होती है।

(ख) पुरस्तल—चकोर है। यह नेत्रकूट की वाह्य दिवार वनाता है।

(ग) वहिस्तल—विशेषरूप से ऊंचा-नीचा और 'शंखाधरिका'[५] नाम की रेखा से दो भागों में विभक्त है। इसमें रेखा का ऊपर वाला भाग शंखप्रदेश को वनाता है, और 'शंखच्छदा' नाम की पेशी का प्रभवस्थान है। नीचे का भाग गण्डमूलखात में रहता है।

(३) दोनों लघुपक्षति[६]—जतूकाशरीर के सम्मुख दोनों पार्श्वों में स्थित छोटी पांखसी हैं। ये पुरःकपालास्थि के नेत्रच्छदि फलकों से मिलते हैं। मध्य में इनको मिलाने वाला त्रिकोणकण्टक है, और जड़ में दोनों ओर दृष्टिनाड़ियों के दो रन्ध्र हैं; जिनका वर्णन पहले आचुका है।

प्रत्येक लघु और दोनों वृहत्पक्षतियों के मध्य में पक्षान्तराल[७] नाम का त्रिकोणाकार स्थान है। इसमें से तृतीया, चतुर्थी और षष्ठी नाड़ी, तथा पञ्चमी नाड़ी की नेत्रगा प्रथमा शाखा और नेत्रगा सिराधमनियां शिरःसम्पुट में से वाहर जाती हैं।

(४) दोनों चरण[८]—जतूकास्थि के शरीर के पश्चिमप्रान्त से दोनों पार्श्वों में नीचे की ओर निकलते हैं। प्रत्येक चरण में दो दो 'अस्थिफलक'[९] हैं, जिनमें सामने वाला आयतपृष्ठ और पिछला अंकुशाग्र[१०] है। इस अंकुश का आश्रय कर के 'तालूत्तंसनी'[११] पेशी कार्य करती है। इन दोनों के बीच में एक खाली जगह है। यहां पर तालवस्थि मिलती है।

---

१ Greater wings. २ Foramen Rotundum. ३ Foramen Ovale. ४ Foramen Spinosum. ५ Pterygoid Ridge. ६ Lesser wings. ७ Superior Orbital Fissure (Foramen Lacerum Ant). ८ Pterygoid processes. ९ Pterygoid plates. १० Hamular process. ११ Tensor Palti.

सन्धान—शिरःसम्पुट को वनाने वाली सात अस्थियों से एवं मुखमण्डल को वनाने वाली पांच अस्थियों से जतूकास्थि का सन्धान होता है। सन्धिस्मारक श्लोक यह है—

"शिरःसम्पुटगैः सर्वैर्युगाभ्यां गण्डतालुनोः।
सीरिकाख्येन चानद्धा जतूका मध्यसंस्थिता॥" (प्र० शा०)

जुड़ने के प्रकार चित्र में देखिये।

पेशियां—इसके प्रत्येक पार्श्व में ग्यारह पेशियां लगती हैं। यथा—बृहत्पक्षति के वहिस्तल में 'शंखच्छदा'[1] और 'हनुमूलकर्षणी उत्तरा'[2] नाम की दो पेशियां, लघुपक्षति के सम्मुखभाग में अक्षिकूट में जाने वाली छः पेशियां, जतूका के चरण फलकों में 'हनुमूलकर्षणी अधरा'[3] (और 'उत्तरा') तालूत्त्रंसनी[4] और 'उत्तरा कण्ठसंकोचनी'[5] पेशियां लगती हैं।

झर्झरास्थि

झर्झरास्थि[6]—दोनों अक्षिकोटरों के वीच में सन्निविष्ट तथा नासामूल को वनाने वाला एक खोखला तथा अत्यन्त हल्का अस्थिपिण्ड है (३६ वां चित्र)। इसके तीन भाग हैं—मध्यफलक, चालनीपटल और दो पार्श्वपिण्ड। इनमें से—

(१) मध्यफलक[7]—नासामूल की मध्य दिवार को वनाने में सहायता करता है। इसकी अगली धारा पर पुरःकपाल का अग्रकण्टक और दोनों नासास्थियों की संयोगधारा जुड़ती है। पिछली धारा पर जतूकास्थि के पुरस्तल में स्थित 'रसनिका' नाम की मध्यरेखा और 'सीरिकास्थि' जुड़ती है। इसकी नीचली धारा 'त्रिकोण तरुणास्थि'[8] से मिलकर नासा की मध्यप्राचीर को वनती है।

(२) चालनीपटल[9]—नासामूल की छद वनाने वाला मध्यफलक के शिर में जुड़ा हुवा चालनी के समान वहुत सूक्ष्म छिद्रों वाला फलक हैं। इसके शिखर में शिखरकण्टक[10] नाम का प्रवर्धन है, जिस पर मस्तिष्कच्छदा कला का 'दात्रिका'[11] नाम का अंश लगता है। इसके दोनों तरफ के छिद्रों में से 'गन्धग्राहिणी'[12] नाड़ी की शाखा प्रशाखायें फैलती हैं।

(३) दोनों पार्श्वपिण्ड[13]—मक्खी के छत्ते के समान वीच से खोखले वहुत पतले पत्रक से वने हुए अस्थिपिण्ड हैं। प्रत्येक पार्श्वपिण्ड के छः तल

---

१ Temporal Muscle. २ Ext. Pterygoid Muscle ३ Int. Pterygoid muscle. ४ Tensor Palati. ५ Superior Constrictor of Pharynx. ६ Ethmoid Bone. ७ Perpendicular Plate. ८ Triangular Cartilage of Nasal Septum. ९ Cribriform Plate. १० Crista Galli. ११ Falx Cerebri. १२ Olfactory Nerves. १३ Lateral Masses.

[३६ वां चित्र—झर्झरास्थि]

(पीछे से देखने पर —स्वाभाविक आयतन)

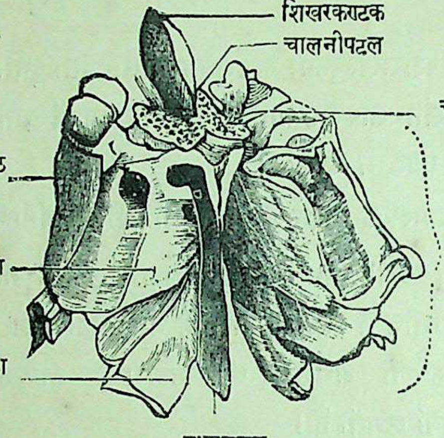

होते हैं। इनमें ऊर्ध्वतल बहुत छिद्रयुक्त होता है। यह पुरःकपालस्थ महापरिखा की परिधि से संयुक्त होता है। पुरस्तल अश्रुपीठास्थि और ऊर्ध्वहन्वस्थि से मिलता है। इनके नीचे के कोटर नासागुहा से मिले हुवे हैं। पश्चिमतल बहुत खोखला है। यह जतूकास्थि के पुरस्तल से मिलता है। अन्तस्तल नासागुहा का पार्श्वप्राचीर बनाता है। इसमें छोटी सीपियों के आकार के दो अस्थिफलक हैं, जिनका नाम क्रमसे ऊर्ध्वशुक्तिका[1] और मध्यशुक्तिका[2] है। इनमें से पहली शुक्तिका नासागुहा की ऊर्ध्वसुरंगा की और दूसरी मध्यसुरंगा की छद को वनती है। अन्तस्तल के नीचले भाग में 'अधःशुक्तिकास्थि'[3] मिलती है। वहिस्तल चिकना और चतुष्कोणफलक से बना हुवा है, इससे नेत्रकोटर की अन्तःपीठ वनती है। इसकी नेत्रान्तःपीठ[4] संज्ञा है। प्रत्येक पार्श्वपिण्ड चार अस्थि से जुड़ता है। यथा—ऊपर में पुरःकपाल के नेत्रच्छदिफलक से, नीचे की ओर ऊर्ध्वहन्वस्थि से, सामने अश्रुपीठास्थि से ओर पीछे की ओर तालवस्थि से।

सन्धान—झर्झरास्थि शिर की तेरह अस्थियों से मिलती है। इसका स्मारकश्लोक यह है—

"पुरःकपालश्च तथा जतूका नासास्थिनी चोर्ध्वहनू च तालू।
सीराग्रिका चाश्रुधरे च शुक्ती त्रयोदशैतानि हि झर्झरास्थ्ना[4]" ॥ (प्र० शा०)

इसमें कोई पेशी नहीं लगती।

इस प्रकार शिरःसम्पुट की आठ अस्थियों की व्याख्या होगई।

---

१ Superior Turbinated Process २ Mi'dle Turbinated Process ३ Inferior Turbinated Bone. इसकी केवल शुक्तिका संज्ञा भी है। ४ Os planum. ४ सन्धीयन्ते इति शेषः।

कपालचक्रक

कपालचक्रक[१]—कपालास्थियों के सीमन्तों में स्थित चारों ओर से करोत के समान दन्तुर अस्थि खण्ड हैं। यह प्रायः पार्श्वकपालों के सन्धिस्थान में देखे जाते हैं, विशेषतः ब्रह्मरन्ध्र और शिवरन्ध्र के समीप में। इनकी स्थिति अनिश्चित होने से पृथक् गणना नहीं की जाती।

मुखमण्डलास्थियां

मुखमण्डल को बनाने वाली मुखमण्डल की अस्थियां चौदह हैं। यथा—दो नासास्थि, दो ऊर्ध्वहन्वस्थि, दो अश्रु पीठ, दो गण्डास्थि, दो तालवस्थि, दो शुक्तिकास्थि ; एक सीरिका और एक अधोहनु। इनमें हन्वस्थियों का का प्रयोजन भक्षण चर्वणादि है ; और शेषोंका प्रयोजन इन्द्रियाधिष्ठानों को आश्रय देना है।

नासास्थियां

[३७ वां चित्र—नासास्थि
(सामने से देखने पर)

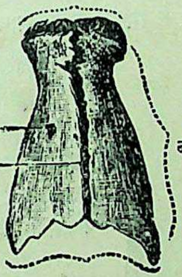

नासास्थियां[२]—नासा की जड़ में रहने वाली भीतर से नतोदर बाहर से उठी हुई दो अस्थियां हैं। ये मध्यरेखा में परस्पर मिलती हैं। इनके दोनों ऊर्ध्व-प्रान्त पुरःकपाल के नासामूलखात से मिलती हैं। बाहर के दोनों पार्श्वों में ऊर्ध्वहन्वस्थि के नासाकूटों से सन्धि होती है। अधःप्रान्तों की सन्धि 'नासापार्श्विक'[३] नाम की दोनों तरुणास्थियों से होती है। पीछेकी और परस्पर सन्धान रेखा में पुरःकपाल का अग्रकण्टक, और झर्झरास्थि का शिखरकण्टक जुड़ता है। प्रत्येक नासास्थि के बहिस्तल के मध्य में सिरा प्रवेश के लिये एक छिद्र होता है, और अन्दर में नासानाड़ी[४] को धारण करने के लिये एक सूक्ष्म परिखा है।

सन्धान—प्रत्येक नासास्थि चार कठिन अस्थियों से मिलती है। यथा—पुरःकपाल, ऊर्ध्वहन्वस्थि, झर्झरास्थि और दूसरी नासास्थि से नीचे दो तरुणास्थि भी जुडती हैं।

---

१ Wormian Bones. २ Nasal Bones. ३ Lateral Cartilages of the Nose. ४ Nasal Nerve (Ext. Branch).

ऊर्ध्वहन्वस्थियां

ऊर्ध्वहन्वस्थियां[१]—दो हैं। ये मुखमण्डल की अस्थियों में मुख्य हैं। इन दोनों के परस्पर मिलने से तालुपटल और दन्तोदूखलों के साथ ऊर्ध्वहनुमण्डलों बनता है। ये मुख्यरूप से नासाकोटरों को, नेत्रपीठों को और मुखमण्डल के सम्मुख और पार्श्वभागों को बनाती हैं। आकार में बड़ी होने पर भी बीचमें से खोखली होने के कारण ये अस्थियां बहुत हल्की हैं।

प्रत्येक ऊर्ध्वहन्वस्थि के पांच भाग हैं। यथा – मध्य में 'हनुपिण्ड', और चारों ओर 'चार प्रवर्धन' यथा—ऊपर की ओर 'नासाकूट', बाह्यपार्श्व में 'गण्डधरकूट', अन्तःसीमा में 'तालुफलक' और अधःसीमा में 'दन्तोदूखल' नाम के प्रवर्धन। इसमें—

[३८ वां चित्र—ऊर्ध्वहन्वस्थि (बहिस्तल)]

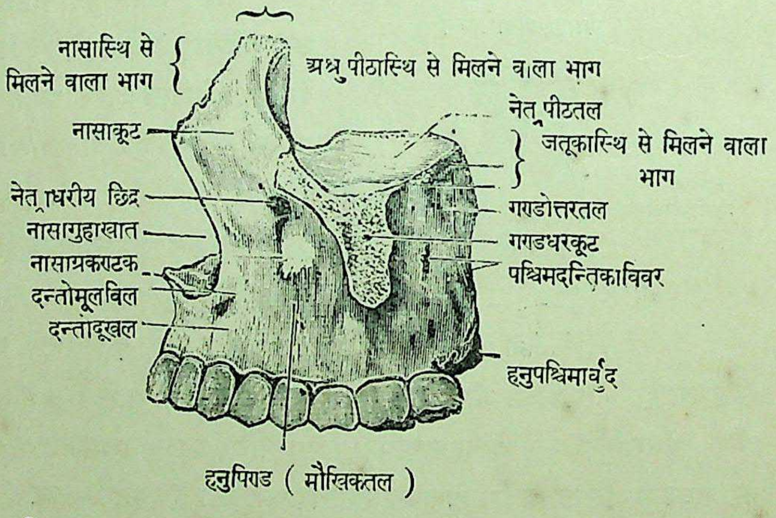

(१) हनुपिण्ड[२]—बीच से खोखला मध्यवर्त्ती अस्थिपिण्ड है। इसके चार तल हैं। इनमें मौखिकतल मुखमण्डल में सामने की ओर दीखता है। गण्डोत्तरतल गण्डधरकूट के पश्चिम में रहता है। नेत्रपीठतल नेत्रकोटर की भूमि को बनाता है। आन्तरतल नासाविवर और मुखकुहर की पार्श्वभित्ति है।

---

१ Superior Maxillary Bones. २ Body of the maxilla.

[३६ वां चित्र--ऊर्ध्वहन्वस्थि (अन्तस्तल)]

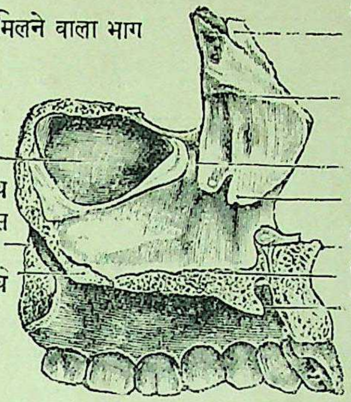

(क) मौखिकतल[१]--में नेत्रकोटर की अधःसीमा में 'नेत्राधरीय'[२] नाम का छिद्र है। इसमें से इसी नाम की नाड़ी और धमनी निकलती हैं।

(ख) गण्डोत्तरतल[३]-गण्डोत्तर खात की भित्ति को बनाता है। यह 'शंखच्छदा' नाम की पेशी से ढंपा होता है। इसमें 'पश्चिमदन्तिक'[४] नाम के कई छोटे विवर है। जिनमें इसी नाम की नाड़ी और धमनियां प्रविष्ट होती हैं। पश्चिममूल में 'हनुपश्चिमार्वुद'[५] नाम का उभार है। इसकी तात्वस्थि से सन्धि होती है।

(ग) नेत्रपीठतल[६]—नेत्रकोटर भूमि के सम्मुखभाग को बनाता है। इसकी अन्तःसीमा में 'अश्रुपीठखात'[७] नाम का खात है। यहां पर अश्रुपीठास्थि लगती है। इसकी अन्तर्धारा क्रम से झर्झरक और तात्वस्थि से मिलती है। इसके बहिःप्रान्त में नेत्राधरीय पेशी एवं धमनी को धारण करने के लिये सूक्ष्म 'सीता'[८] है। यहां पर 'अग्रदन्तिका'[९] नाम की नाड़ी और धमनी के प्रवेश के लिये छिद्र भी है।

(घ) आन्तरतल[१०]-नासा और मुखविवर के पार्श्ववर्त्ती है। इसकी पुरःसीमा में 'नासाखात'[११] नाम का बड़ा खात है। तालुफलक द्वारा इसके बीच में से दो भाग हो गये हैं। इनमें से ऊपर का भाग नासागुहा के अंश को और निचला भाग मुखविवर के अंश को बनाता है। यहां पर पार्श्व में हनुगर्भकोटर[१२] नाम का बड़ा कोटर दीखता है। यह नासागुहा की मध्यसुरंगा[१३] से एक छिद्र द्वारा मिला हुवा है। जुड़ी हुई करोटि में यह कोटर झर्झरक शुक्तिका और तात्वस्थि से ढंपा होता है, एवं जीवित शरीर में कलाद्वारा अन्दर से आवृत होता है। इसके द्वार इस प्रकार ढंपे होने पर भी नासागुहा के भीतर से इसमें शलाका प्रविष्ट की जा सकती है।

---

१ Facial Surface. २ Infra-orbital Foramen. ३ Zygomatic Surface. ४ Posterior Dental Canals. ५ Tuberosity. ६ Orbital Surface ७ Lachrymal Notch. ८ Infra-orbital Canal. ९ Opening of Anterior Dental Canal. १० Internal Surface. ११ Nasal Fossa. १२ Antrum of Highmore. १३ Middle Meatus of the Nose.

(२) **नासाकूट**[1]—नासामूल के पार्श्व में घुसाने वाला प्रवर्धन है। यह ऊपर की ओर पुरःकपाल से, मध्यरेखा में नासास्थि से और बहिःसीमा में अश्रुपीठास्थि से जुड़ता है। नासामध्यसुरंगा को बनाने के लिये इसका अन्तस्तल खातोदर है, यहां पर झर्झरास्थि के मध्यशुक्तिका भाग से एवं अधःशुक्तिकास्थि से मिलने के लिये क्रम से दो रेखायें हैं, और इसके पश्चिम में 'अश्रुवाहिका'[2] प्रणाली को धारण करने के लिये स्पष्ट परिखा है।

(३) **गण्डधरकूट**[3]—बाहर पार्श्व में जाने वाला त्रिकोणाकार उभार है। यह गण्डास्थि से मिलता है।

(४) **तालुफलक**[4]—तालु के सम्मुख भाग को बनाने वाला फलक है। यह हनुपिण्ड के अन्तरतल से उत्पन्न होता है। इसका ऊर्ध्वतल नासाभूमि और अधस्तल तालु की छद को बनाता है। मध्यरेखा में यह दूसरी ऊर्ध्वहन्वस्थि के तालुफलक से मिलता है। तालुफलक के इस प्रकार मिलने पर अधस्तल में एक खात बन जाता है जिसका नाम अग्रतालुखात[5] है। इसमें नासा और तालु में जाने वाली नाड़ी और धमनियों[6] के तालु में प्रविष्ट होने के लिये चार छिद्र होते हैं। तालुफलक की ऊर्ध्वतल में मध्यरेखा के सम्मुखवर्त्ती आधे भाग में सीरिकास्थि से मिलने के लिये ऊठी हुई रेखा होती है। तालुफलक की पश्चिमधारा पर तालवस्थि का ह्रस्वपत्रक जुड़ता है।

(५) **दन्तोदूखलिक**[7]—नाम का प्रवर्धन दन्तोदूखल को धारण करने वाला अर्द्धचन्द्राकार और नीचे को मुख किया हुवा है। बाल्यावस्था में पांच और यौवनावस्था में आठ दन्तोदूखल होते हैं। इनमें इतने ही दांत रहते हैं। बहिःपृष्ठ में दन्तमूलविल[8] नामक खात है। इस पर नासासंकोचनी पेशी लगती है।

सन्धान—प्रत्येक ऊर्ध्वहन्वस्थि नव अस्थियों से जुड़ती है। इसका संग्रह श्लोक यह है।

"स्वनाम्ना गण्ड-नासाऽश्रु-सीरिका-तालु-शुक्तिभिः।
झर्झराग्रकपालाभ्यां नवभिर्हनुरूर्ध्वगा॥" (प्र० शा०)

पेशियां—प्रत्येक ऊर्ध्वहन्वस्थि में ग्यारह पेशियां लगती हैं। ये सब प्रायः नेत्र के उन्मीलन-निमीलन और नासा, अधर ओष्ठ का संकोचन, विस्फारण, चर्वण आदि किया करती हैं। इनकी व्याख्या पेशी अध्याय में होगी।

---

१ Nasal Process. २ Lachrymal Duct. ३ Malar Process. गण्डकूट गण्डास्थि का ऊर्द्ध भाग का संज्ञा है। ४ Palate process. ५ Anterior palatine Fossa. ६ Naso-palatine Nerves and Anterior palatine Vessels. ७ Alveolar process. ८ Incisive Fossa.

अश्रु पीठास्थियां

अश्रु पीठ[१]—नाम की (४० वां चित्र) दो छोटी अस्थियां हैं जो कि नासास्थियों के और ऊर्ध्वहन्वस्थि के नासाकूटों के पीछे एवं अक्षिकोटर के पार्श्वों में छिपी हुई हैं। ये पतले पत्र से बनी अर्घ्यपात्र के आकार की होती है। ये अश्रु वाहिका प्रणाली को धारण करती है, अतः इनकी 'अश्रु पीठ' संज्ञा है।

४० वां चित्र—अश्रु पीठास्थि

(वहिस्तल)

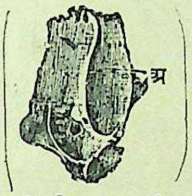

प्रत्येक अश्रु पीठ के दो तल हैं, अन्तस्तल और वहिस्तल। इनमें से वहिस्तल में अश्रु मार्ग को धारण करने के लिये अश्रु वाहिका[२] नाम की प्रणाली है (चित्र में अ)। अन्तस्तल झर्झरास्थि के कोटर द्वार का ढक्कन बना हुवा है।

इसकी चार धारायें हैं। ऊर्ध्वधारा में पुरःकपालास्थि जुड़ती है, अधोधारा के सामने अंकुशाकार प्रवर्धन द्वारा शुक्तिका, सम्मुखधारा में ऊर्ध्वहन्वस्थि का नासाकूट एवं पश्चिमधारा में झर्झरक का 'नेत्रपार्श्वपीठ' जुड़ता है।

गण्डास्थियां

गण्डास्थियां[३]—वाण के अग्रफलक के आकार की दो अस्थियां हैं। ये गण्डप्रदेश में रहती हैं (४१ वां चित्र)। इनसे गण्डप्रदेश का उभार और नेत्रकोटर की कुछ भूमि बनती है। प्रत्येक अस्थि के दो तल हैं। यथा—बहिस्तल और अन्तस्तल। इनमें—

बहिस्तल—उन्नतोदर है। यह **गण्डकूट**[४] को बनाता है। नाड़ी और धमनी के निकलने के लिये इसमें 'गण्डच्छिद्र'[५] नाम का छिद्र है।

---

१ Lachrymal Bones. २ Nasal Duct. ३ Malar Bones. ४ Malar Tuberosity. ५ Malar Foramen.

४१ वां चित्र—गण्डास्थि (वाम) ।

[बहिस्तल]

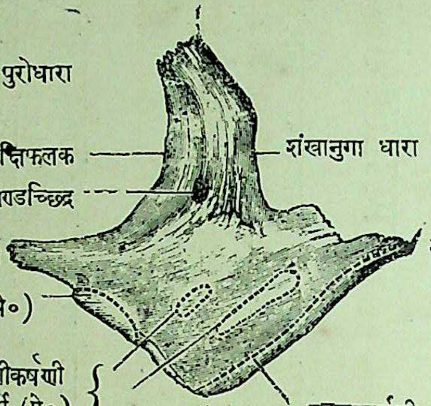

[अन्तस्तल]

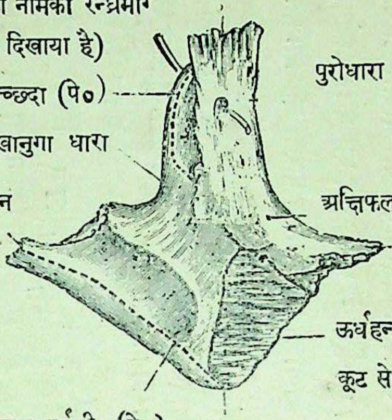

अन्तस्तल—नतोदर है। इसके खुरदरे त्रिकोणांश में ऊर्ध्वहन्वस्थि का गण्डधरकूट जुड़ता है।

प्रत्येक गण्डास्थि में चार प्रवर्धन है। इनमें से तीन क्रमशः सम्मुख, पश्चिम और ऊर्ध्वकोटि को बनाते हैं और एक अक्षिकोटर की भूमि में घुसा हुवा है। इनमें—

(१) **सम्मुखप्रवर्द्धन**—आगे से सूक्ष्म नेत्राधरीय[१] नाम का है। यह ऊर्ध्वहन्वस्थि से मिलता है।

(२) **पश्चिमप्रवर्द्धन**—शंखिक[२] नाम का है। यह शंखास्थि के गण्डप्रवर्धन से मिलता है।

(३) **ऊर्ध्वप्रवर्द्धन**—अपांगप्रवर्धन[३] नाम का है। यह अग्रकपाल के बाह्यकोण से मिलता है।

(४) **अक्षिफलक**[४]—अक्षिकोटर की भूमि का कुछ अंश बना हुवा और ईषत् खातोदर तथा ऊर्ध्व और सम्मुख प्रवर्धन के मध्य में स्थित है। यहां पर शंखगण्डिक[५] नाम का रन्ध्रमार्ग है—जो कि गण्डच्छिद्र तक पहुंचता है। इसमें नाड़ी प्रविष्ट होती है। पीछे की ओर मुख किये हुई इसकी धारा जतूकास्थि से मिलती है।

गण्डास्थि की अधःकोटि किसी से नहीं मिलती है। इसको गण्डकूट के साथ त्वचा के नीचे अनुभव कर सकते हैं।

सन्धान—प्रत्येक गण्डास्थि चार अस्थियों से मिलती है। इसका स्मारकश्लोक यह है—

"शङ्खेनाग्रकपालेन चोर्ध्वहन्वा जतूकया।
एकैकमिह गण्डास्थि चतुर्भिर्दृढ़संहितम्॥" (प्र० शा०)

पेशियां—इसमें पांच पेशियां लगती हैं। यथा—बहिस्तल पर 'ओष्ठसमुत्कर्षणी'[६] 'सृक्कणीकर्षणी'[७] लध्वी और गुर्वी—ये तीन। अन्तस्तल में 'शंखच्छदा'[८] और 'हनुकूटकर्षणी'[९]—ये दो पेशियां लगती हैं।

---

१ Infra-orbital Process. २ Zygomatic Process. ३ Frontal Process. ४ Orbital Proiess. ५ Tempro-Malar Canal. ६ Levator Labii Superioris. ७ Zygomaticus minor and major. ८ Temporal. ९ Masseter.

तालवस्थियां

तालवस्थियां[1] —दो हैं (४२ वां चित्र)। ये पतले पत्रक से बनी हैं और कुदाल[2] के आकार की हैं। नेत्र, नासा, और मुखगुहा के पीछे रहती हैं। ये नेत्रकोटरभूमि, दोनों नासाभूमिपार्श्व, तथा तालुपटल के बनाने में सहायक होती हैं। प्रत्येक अस्थि के ह्रस्वपत्रक और दीर्घपत्रक नाम के दो भाग हैं, जो कि बहुत ही पतले पत्रक से बने हुवे हैं। इनमें—

[४२वां चित्र—तालवस्थि (वाम)।]

(पीछली ओर से देखने पर)

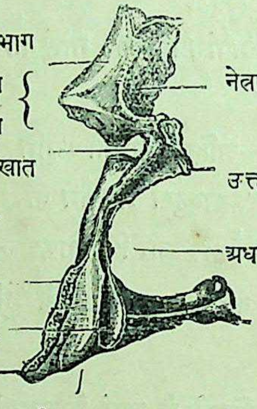

(१) दीर्घपत्रक[3]—नेत्रकोटर के भीतर की शेष सीमा से लगाकर तालुमूल तक अवलम्बित है।

इसकी सम्मुखधारा ऊर्ध्वहन्वस्थिपिण्ड के पीछे मिलती है और पश्चिमधारा दो मुखवाली है, जो कि जतूकास्थि के चरणफलकों के बीच में जुड़ती है। इसका अन्तस्तल चिकना और उठी हुई दो आलिकाओं से तीन भागों में विभक्त होता है। इनमें ऊपर की आलिका उत्तरालिका[4] नाम की है। इस पर झर्झरास्थि का मध्यशुक्तिका नाम वाला अवयव जुड़ता है। नीचे की आलिका 'अधरालिका'[5] नाम है, जो कि शुक्तिकास्थि से जुड़ती है। इन दोनों का मध्यवर्त्ती प्रदेश नासामार्ग की मध्यसुरंगा से मिलता है और ऊर्ध्व एवं अधःप्रदेश ऊर्ध्व और अधःसुरंगा से मिलते हैं।

---

१ Palate Bones. २ Spade. ३ Vertical Plate. ४ Superior Turbinated Crest. ५ Inferior Turbinated Crest.

दीर्घपत्रक का वहिस्तल 'पश्चिमतालुका'[1] नाम की सूक्ष्मपरिखा से चिन्हित है और ऊर्ध्वहन्वस्थि के अन्तस्तल से मिलता है।

इस दीर्घपत्रक के शिखर में दो प्रवर्धनक हैं, जो सम्मुख और पीछे की ओर फैले हुवे हैं। इनमें से सम्मुख का प्रवर्धन[2] नेत्रकोटर की भूमि में प्रविष्ट होता है। इसकी जतूका, झर्झरक और ऊर्ध्वहन्वस्थि के नेत्रपीठफलक से सन्धि होती है। पश्चिम[3] प्रवर्धन जतूकास्थि से मिलता है। इन दोनों की सन्धि में 'तालुजातक'[4] नाम का खात है। इसके द्वारा नासा के अन्दर नाड़ी और धमनी प्रविष्ट होती हैं।

(२) ह्रस्वपत्रक[5]—दीर्घपत्रक की जड़ से उठा हुवा अन्दर की ओर मुख किये हुवे पत्रक है। इसका ऊर्ध्वतल नासाभूमि को और अधस्तल तालुपटल के पश्चिम-भाग को बनाता है। सम्मुखधारा ऊर्ध्वहन्वस्थि के तालुफलक से मिलती है, पश्चिमधारा किसी से नहीं मिलती और कोमलतालु को धारण करती है। यहां पर 'काकलक'[6] को धारण करने के लिये एक कण्टक है।

ह्रस्व और दीर्घपत्रक के मिलाने वाले कोण का नाम तालुकोण है।

यह ह्रस्वपत्रक दूसरी तालवस्थि के ह्रस्वपत्रक के साथ मिलता है। इन दोनों सन्धि में ऊपर की तक एक परिखा है, यहां सीरिकास्थि दृढ़भाव से जुड़ती है।

सन्धान—तालवस्थि छः अस्थियों से जुड़ती हैं। इसको स्मरण करने के लिये यह श्लोक है—

"झर्झरश्च जतूका च शुक्तिका चाथ सीरिका।
स्वसंज्ञञ्चोर्ध्वहन्वस्थि तालवस्थना संहितानि षट्" ॥ (प्र० शा०)

पेशियां—यहां पर चार पेशियां लगती हैं—उत्तरा कण्ठसंकोचनी,[7] अधरा हनुकूटकर्षणी,[8] काकलकिनी[9] और तालूत्तंसनी[10]।

शुक्तिकास्थियां

शुक्तिकास्थियां[11]—दो हैं (५१ वां चित्र में)। ये बहुत पतली, खोखली, पत्र की भांति, छोटी सीपियों के आकार की हैं। ये नासागुहा में निचली और मध्यसुरंगा के बीच में स्थित हैं। ये झर्झरास्थि के शुक्तिकाफलक की अपेक्षा नीचे स्थित हैं। अत: कहीं पर इनकी अधःशुक्तिका संज्ञा भी है।

---

१ Posterior Palatine Canal. २ Orbital Process. ३ Sphenoidal Process ४ Spheno-palatine Notch. ५ Horizontal plate. ६ Uvula. ७ Superior Constrictor of pharynx. ८ Internal Pterygoid. ९ Azygos Uvulæ. १० Tensor palati. ११ Inferior Turbinated Bones.

प्रत्येक शुक्तिकास्थि के दो तल हैं, यथा—अन्तस्तल और वहिस्तल। इनमें से पहला नतोदर एवं नासामार्ग की निम्नसुरंगा को वनाने वाला है, और दूसरा उन्नतोदर एवं नासा की मध्यप्राचीर की ओर मुख किये हुवे है।

इसकी ऊर्ध्वधारा सम्मुखभाग में ऊर्ध्वहन्वस्थि से और पश्चात् भाग में ताल्वस्थि से मिलती है। इसमें अश्रुकूटक[1] और झर्झरकूटक[2] नाम के दो प्रवर्धन हैं। इनमें से प्रथम अश्रुपीठास्थि से और दूसरा झर्झरास्थि से मिलता है। इसकी अधोधारा आगे से मुक्त होती है। सन्धि को स्मरण करने के लिये यह श्लोक है—

"झर्झरेणोर्ध्वहन्वस्थ्ना ताल्वस्थ्ना चाश्रुधारिणा।
चतुर्भिरूर्ध्वमेव स्यात् शुक्तिका दृढ़संहिता" ॥ (प्र० शा०)

सीरिका

सीरिका[3]—(४३ वां चित्र)—नासाखात के पश्चिमभाग में मध्यप्राचीर वना हुवा अस्थिफलक है। यह हल के अग्रभाग के आकार का तथा पतले पत्र से वना होता है। इसकी अग्रधारा में झर्झरास्थि का मध्यफलक और त्रिकोण तरुणास्थि जुड़ती है, जिससे नासा की मध्यप्राचीर का अग्रभाग वनता है। इसकी पश्चिमधारा गलविवर की ओर मुख किये हुवे और खुली है। इसकी अधोधारा दोनों ऊर्ध्वहन्वस्थि और दोनों ताल्वस्थियों के परस्पर मिलने की रेखा में मिलती है। अतः यहां पर चार अस्थियों से इसकी सन्धि होती है। ऊर्ध्वधारा परिखा से चिह्नित एवं दो किनारों वाली है, यहां पर जतूकास्थि के अधस्तल में रहने वाली रसनिका नाम की रेखा से सन्धि होती है।

४३ वां चित्र—सीरिकास्थि।

१—२ Lachrymal & Ethmoidal processes. ३ Vomer.

सीरिकास्थि के दोनों पार्श्वों में 'नासातालुका'[1] नाम की नाड़ियों को धारण करने के लिये दो सूक्ष्म परिखायें हैं। इसका सन्धिस्मारक श्लोक यह है—

"ऊर्ध्वहन्वस्थियुगलं तालुयुग्मञ्च झर्झरम्।
जतूका चेति षट्केन संहिता सीरिका दृढ़म्" ॥ (प्र० शा०)

अधोहन्वस्थि

अधोहन्वस्थि[2] —(४४ वां चित्र)—एक है। यह दांतों की अधःपंक्ति को धारण करती है। मुखमण्डल की अस्थियों में सब से बड़ी और सब से दृढ़ अस्थि है। इसके दो भाग हैं—एक भाग हनुमण्डल नाम का जोकि घोड़े के खुर के आकार का है और दूसरा भाग दो हनुकूटों से बना है जो कि ऊपर हनुसन्धियों में घुसे हैं। इनमें—

(१) हनुमण्डल[3]—निचले दन्तोदूखल को धारण करता है। तथा मुखमण्डल की अधःसीमा को बनाता है। इसका वाम और दक्षिणभाग बाल्यावस्था में पृथक् रहता है और यौवन में चिवुकप्रदेश में जुड़ जाता है। इसके दो तल हैं—बाह्यतल और आन्तरतल। एवं दो ही धारायें हैं—यथा—ऊर्ध्वधारा और अधोधारा।

बाह्यतल पर चिवुकप्रदेश में चिवुकपिण्ड[4] नाम का उभार है। इसके दोनो ओर 'अधरोत्क्षपणी'[5] पेशी लगती है। यहां पर सन्धिचिह्न से चिह्नित चिवुकसन्धानिका[6] नाम की रेखा दिखाई देती है। और इसके दोनों पार्श्वों में पीछे की ओर अनुचिवुक[7] नामके दो विवर हैं—जिनमें इसी नामकी नाड़ी, सिरा और धमनी प्रविष्ट होती हैं। इनमें से प्रत्येक की जड़ में तिरछी और पीछे की ओर मुख किये हुवे बाह्यतिरश्चीना[8] नाम की रेखा है। इसके समीप में ही 'अधरावनमनी'[9], 'सृक्कणीनमनी'[10] यह दो पेशियां लगती हैं, और इनके नीचे अधोधारा के समीप में 'गलपार्श्वच्छदा'[11] पेशी लगती है।

---

१ Naso-palatine Grooves. २ Inferior Maxillary Bone. ३ Horizontal Portion or Body. ४ Mental process. ५ Levator Labii Inferioris. ६ Symphysis Menti. ७ Mental Foramina. ८ Ext. Oblique line. ९ Depressor Labii Inferioris. १० Depressor Anguli Oris. ११ Platysma Myoides.

४४ वां चित्र—अधोहन्वस्थि ।
(बाहर से देखने पर)

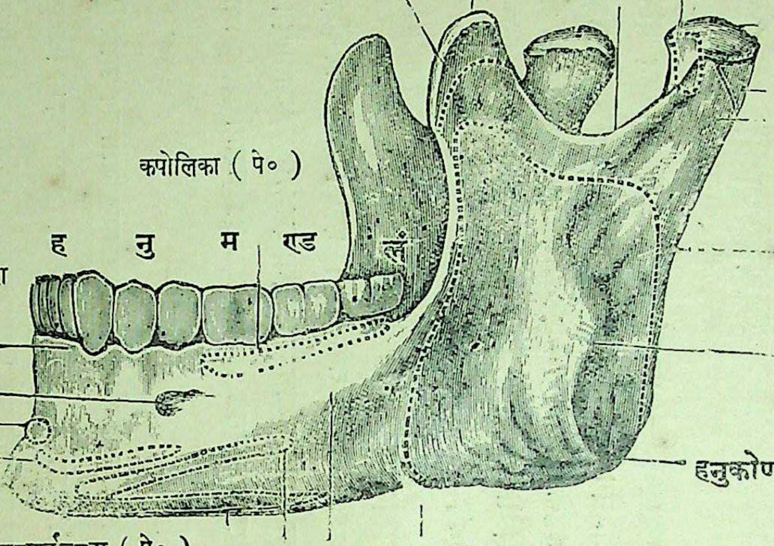

आन्तरतल—सब स्थानों पर थोड़ा नतोदर होता है। इसकी मध्यरेखा के दोनों पार्श्वों में रसनाकलायक[१] नाम के दो दो कलायक हैं। इन पर चार पेशियां लगती हैं। इनकी जड़में ऊपर पीछे की ओर आन्तरतिरश्चीना[२] नाम की एक तोरछी रेखा है। यह 'मुखभूमिकण्ठिका'[३] नाम की पेशी का प्रभवस्थान है। इसके ऊपर की ओर सामने 'जिह्वाधरिका'[४] नाम की ग्रन्थि के धारण करने के लिये एक खात है। इसके नीचे पीछे की ओर 'हन्वधरीय'[५] नाम का दूसरा खात है, जो कि इसी नाम की ग्रन्थि को धारण करता है।

हनुमण्डल की ऊर्ध्वधारा दन्तोदूखलमण्डल को धारण करती है। दन्तोदूखल बाल्यावस्था में प्रत्येक आधे भाग में पांच पांच, और यौवनावस्था में आठ आठ होते हैं, ये वृद्धावस्था में क्रमशः लुप्त हो जाते हैं। इस धाराके पिछले भागों में 'कपोलिका'[६] नाम की दो पेशियां दोनों ओर लगती हैं। दांतों का वर्णन सम्पूर्ण करोटि के वर्णन में आयेगा।

अधोधारा—आगे से मोटी और केवल त्वचा से ही ढंपी है। इस के पश्चिमप्रान्तों में दोनों ओर वक्त्रधमनी को धारण करने के लिये कुछ गहरी 'वक्त्रधमनीपरिखा'[७] नाम की दो परिखायें हैं।

(२) **हनुकूट**[८]—हनुमण्डल के पश्चिमप्रान्तों से ऊपरको जानेवाले प्रायः चकोर दो प्रवर्द्धन हैं। प्राचीनों ने इन की 'हनुमूलबन्धन' संज्ञा की है।

प्रत्येक हनुकूटके दो शिखर हैं। सामने से हनुकुन्त और पीछे से हनुमुण्ड। दो ही तल हैं—बाह्य और आभ्यन्तर। चार धारायें हैं—ऊर्द्ध्वधारा, अधोधारा, पुरोधारा और पश्चिमधारा।

हनुकुन्त[९]—प्रायः त्रिकोणाकार, भाले के अग्रभाग सदृश, हनुकूट का सम्मुखवर्त्ती शिखर है। इसके बाह्य और आभ्यन्तरतल में 'शङ्खच्छदा' नाम की पेशी लगती है।

हनुमुण्ड[१०]—प्रायः गोलाकार पश्चिमशिखर है, जो कि शङ्खास्थिके हनु-

---

१ Genial Tubercles. २ Internal Oblique line. ३ Mylo-hyoid. ४ Sublingual Gland. ५ Submaxillary Gland. ६ Buccintor. ७ Facial Artiries. ८ Rami of Lower Jaw. ९ Coronoid Process. १० Condyle of Lower Jaw.

सन्धिखात में घूमती है। इसकी जड़के चारों ओर स्नायुकोष लगता है। इसके जड़के आभ्यन्तरतल में 'हनुमूलकर्षणी उत्तरा'[१] नाम की पेशी लगती है।

हनुकूट के बहिस्तल में 'हनुकूटकर्षणी'[२] और अन्तस्तल में 'हनुमूलकर्षणी अधरा'[३] पेशी लगती है। अन्तस्तल के मध्य में एक स्पष्ट छिद्र है, जो कि 'अधरा दन्तमूलसुरङ्गा' प्रणाली का 'द्वार'[४] है, इसमे 'अधरदन्तमूलिका' नाम की सिरा, धमनी तथा 'नाड़ियां'[५] प्रविष्ट होती हैं।

हनुकूट की ऊर्द्ध्वधारा 'अर्द्ध चन्द्राकार'[६] है। इसके ऊपर से 'हनुकूट-कर्षणी' नाम की पेशी और उसके चारो ओर नाड़ी, सिरा और धमनियां फैलती हैं। हनुकूट की अधोधारा हनुमण्डल की अधोधारा से मिली हुई है। यहां पर पश्चिम की ओर 'हनुकोण'[७] नाम का कोण है। इसमे 'हनुकोणिका' नाम की स्नायु लगती हैं। पुरोधारा पतली और पेशी से ढंपी हुई है। पश्चिमधारा मोटी एवं 'कर्णमूलिक'[८] नाम की ग्रन्थि से आच्छादित रहती हैं।

सन्धि—अधोहन्वस्थि की सन्धि, दोनों ओर शंखास्थियों के हनुसन्धिखातों में इसके मुण्डों के मिलने (स्पर्शमात्र) से होती है।

पेशियां—अधोहन्वस्थि के एक एक ओर पन्द्रह पेशियां लगती हैं। यथा—हनुकूट में बंधी हुई चार—शंखच्छदा, हनुकूटकर्षणी, हनुमूलकर्षणी उत्तरा और अधरा। हनुमण्डल के अन्तस्तल में पांच—यथा चिबुक-जिह्वामूलिका, चिबुक-कण्ठिका, मुखभूमिकण्ठिका, द्विगुम्फिका, उत्तरा कण्ठसंकोचनी। हनुमण्डल के बहिस्तल में छः—यथा अधरावनमनी, अधरोत्क्षेपणी, मुखमुद्रणी, सृक्कणी-नमनी, गलपार्श्वच्छदा और कपोलिका।

अधोहन्वस्थि की एक विशेषता यह है कि बाल्यावस्था में दोनों हनुकूट हनुमण्डल के साथ तिरछा जुड़ते हैं। ये जोड़ यौवनावस्था में धीरे धीरे खड़े जोड़ होते हैं और वृद्धावस्था में फिरभी विशेषरूप से तिरछा जोड़ होते हैं और दन्तोदूखलों का लोप हो जाता है।

---

१ Ext. Pterygoid. २ Masseter. ३ Internal Pterygoid. ४ Opening of Internal Dental Canal. ५ Inferior Dental Vessels and Nerve. ६ Sigmoid Notch. ७ Angle of Lower Jaw. ८ Parotid Gland.

कण्ठिकास्थि

कण्ठिकास्थि[1]—(४५ वां चित्र) जिह्वा की जड़में स्थित अर्द्ध चन्द्राकार अस्थिखण्ड है। यह नाना पेशियां के लगने की भूमि है और कण्ठमें श्वासपथ के ऊपर सामने रहती है और यह दो लम्बी स्नायु रज्जुयों से शंखास्थि की दोनों मूलशिफाओं के साथ बंधी हुई लटकती है। इसके तीन भाग है, यथा—कण्ठिकपिण्ड, दो महाशृंग और दो लघुशृंग। इनमें—

४५ वां चित्र—कण्ठिकास्थि।

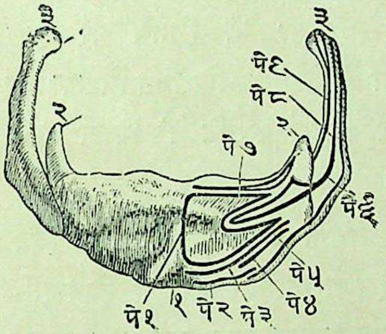

चित्रव्याख्या—

१ कण्ठिकपिण्ड। २, २ दोनों लघुशृंग। ३, ३, दोनों महाशृंग। पेशियां—पे १, चिबुककण्ठिका। पे २, उरःकण्ठिका। पे ३, मुखभूमिकण्ठिका। पे ४, अंसकण्ठिका। पे ५, शिफाकण्ठिका। पे ६, अवटुकण्ठिका। पे ७, चिबुकजिह्वाकण्ठिका। पे ८, जिह्वाकण्ठिका। पे ९, मध्यमा कण्ठसंकोचनी।

(१) कण्ठिकपिण्ड[2]—मध्यरेखा से चिह्नित मध्यवर्त्ती पिण्ड है (चित्र में १)। इसके पुरस्तल में बारह पेशियां (प्रत्येक ओर छः) लगती हैं। इनके नामक्रम से 'चिबुककण्ठिका,'[3] 'उरःकण्ठिका,'[4] 'चिबुकजिह्वा-कण्ठिका'[5], 'मुखभूमिकण्ठिका'[6] 'शिफाकण्ठिका'[7] और 'अंसकण्ठिका'[8] हैं, इसका पृष्ठतल चिकना और 'गोजिह्विका'[9] के साथ कलाबन्धनी से बंधा हुआ है।

(२) दो महाशृंग[10]—मध्यपिण्ड के दोनों पार्श्वों में पीछे की ओर मुख किये दो बड़े शृंग हैं। इनकी अग्रकोटियों पर स्पष्ट दीखने वाले दो अर्बुद हैं, जिन पर स्नायुरज्जु जुड़ती है। प्रत्येक पर क्रम से 'मध्यमा कण्ठसंकोचनी,'[11] 'जिह्वाकण्ठिका'[12] और 'अवटुकण्ठिका'[13]—यह तीन पेशियां लगती हैं।

---

१ Hyoid Bone. २ Body or Basihyoid. ३ Genio-hyoid. ४ Sterno-hyoid. ५ Genio-hyo-glossus. ६ Mylo-hyoid. ७ Stylo-hyoid. ८ Omo-hyiod. ९ यह ज़िह्वामूल के जड़में श्वासपथ का छद बनाने वाला तरुणास्थिपत्रक है (Epiglottis). १० Greater Cornua. ११ Middle Constrictor of Pharynx. १२ Hyoglossus. १३ Thyro-hyoid.

(३) दो लघुश्रृंग[1]—महाश्रृंग के गोद में स्थित दो छोटे श्रृंग हैं। इनकी अग्रकोटियों का संयोग स्नायुरज्जुयों के द्वारा शंखास्थि-शिफा के दोनों ओर होता है। यहां तक 'शिरोग्रीव' की अस्थियों का पृथक् वर्णन हो गया।

सम्पूर्ण करोटि में—
दीखने वाली विशेषतायें।

सम्पूर्ण शिर की अस्थियों के संघात का नाम करोटि[2] है। अधोहन्वस्थि को छोड़कर शिर की सब अस्थियां स्थिरसन्धि से जुड़ती हैं। इस प्रकार मिली होने पर करोटिमें कई विशेषतायें दीखती हैं, जिनमें से कुछ पहिले आ चुकी हैं। शिष्यबुद्धि की विशदता के लिये एवं शिरोगत विशेषताओं के विशेष ज्ञान के लिये अब उनका और सम्पूर्ण करोटि में स्थित अन्य विशेषताओं का स्पष्टतर वर्णन किया जाता है।

सब से प्रथम करोटि को पांच प्रदेशों में विभक्त करके समझना चाहिये। यथा—ऊर्ध्वप्रदेश करोटिपटल नाम का, अधःप्रदेश करोटिभूमि नाम का, दो पार्श्व-प्रदेश करोटिपक्ष नाम के, और पुरःप्रदेश मुखमण्डल नाम का है, यहां ही नेत्रगुहा, नासागुहा आदिका भी वर्णन अलग किया जायगा।

करोटिपटल

करोटिपटल[3] (४६ वां चित्र) शिरःसम्पुट की छद बना हुवा भाग है। यह आगे की ओर पुरःकपाल के ललाटफलक से, पार्श्वों में दोनों पार्श्वकपालों से और पीछे पश्चिमकपाल के ऊपरके आधे भाग से बनाता है। इसके दो तल है—बाह्यतल और आभ्यन्तरतल। इनमें से—

बाह्यतल—कछुवे की पीठ के आकार का है। इसमें दर्शनीय पांच सीमन्त हैं। यथा—पुरःसीमन्त, मध्यसीमन्त, पश्चिमसीमन्त और दो पार्श्वसीमन्त। उनमें—

पुरःसीमन्त[4]—पुरःकपाल के दोनों पार्श्वकपालों से मिलने की रेखा है—जो सम्मुख से दिखाई देती है।

---

१ Lesser Cornua, २ Skull. ३ Roof of the Skull. ४ Coronal Suture.

४६ वां चित्र।

करोटिपटल (छोटे बच्चे का)।

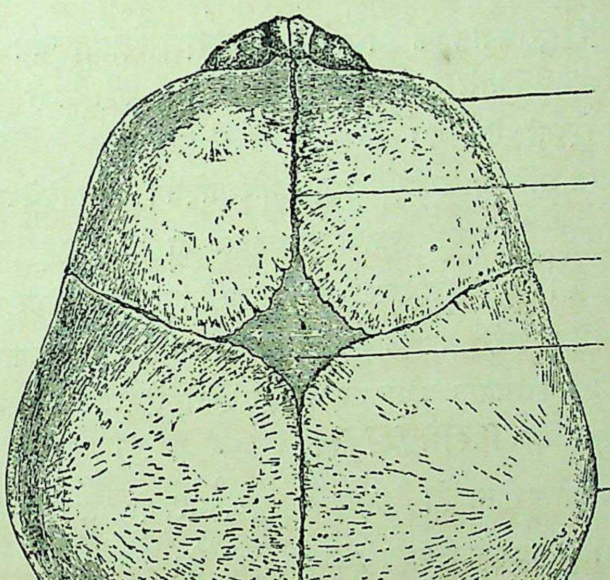

मध्यसीमन्त[१]—दोनों पार्श्वकपालों को परस्पर मिलाने वाली वीच की सन्धिरेखा है।

पश्चिमसीमन्त[२]—पश्चिम कपाल को पार्श्वकपालों से मिलाने वाली पीछे से दिखाई देने वाली रेखा है।

पार्श्वसीमन्त[३]—करोटिपटल के पार्श्व में रहने वाली दो सन्धिरेखायें हैं। प्रत्येक रेखा छः अस्थियों की सन्धि से वनी है, जैसे कि ऊपर को स्थित तीन पुरःकपाल, पार्श्वकपाल एवं पश्चिमकपाल और नीचे में स्थित तीन गण्डास्थि, जतूकास्थि ओर शंखास्थि से मिले हुई है। (सन्धिप्रकार को समझने के लिये २७ वां चित्र देखिये)।

वाल्यावस्था में दो पुरःकपाल के मध्य में **गूढ़सीमन्तिका**[४] नाम को सूक्ष्म सीमन्तरेखा ऊपर से नीचे तक दिखाई देती है। कहीं कहीं यह परिणत करोटि में भी दिखाई देती है।

इनमें से दो सीमन्त सन्धियां अर्थात्—सम्मुख और पश्चिम सन्धि विशेषरूप से दर्शनीय है। पुरःसीमन्त और मध्यसीमन्त के सन्धिस्थल का नाम **ब्रह्मरन्ध्र** अथवा **ब्रह्मतालुक**[५] है। पश्चिमसीमन्त और मध्यसीमन्त के सन्धिस्थल का नाम **शिवरन्ध्र**[६] है। यहां पर अधिपति नाम का मर्म्म है। स्तनपायी शिशु की करोटि में यहां स्वभावतः कोमलता अनुभूत होती है, और ब्रह्मरन्ध्र प्रायः चकोर एवं शिवरन्ध्र प्रायः त्रिकोण होती है।

करोटिपटल में पांच उभार होती हैं। यथा—दो 'पुरःकुम्भ'[७], दो 'पार्श्वकुम्भ,'[८] और एक 'पश्चिमार्बुद'[९]। इनकी व्याख्या पहिले आ चुकी है।

आन्तरतल—करोटिपटल का आन्तरतल खातोदर और मस्तिष्क को ढापने के लिये कुछ ऊंचा नीचा होता है। इनमें सव स्थानों पर कला के पोषण करने वाली धमनियों के चिन्ह और कलाग्रन्थियों के धारण करने के लिये बहुत सी छोटी छोटी 'खात'[१०] हैं। मध्यरेखा में **'दीर्घिका सिरापरिखा'**[११] होती है, जो कि मध्यसीमन्त के नीचे अन्दर को रहती है।

---

१ Sagittal Suture २ Lambdoid Suture. ३ Temporal Suture. ४ Metopic Suture. ५ Anterior Fontanelle. ६ Posterior Fontanelle. ७ Frontal Eminences. ८ Parietal Eminences. ९ Ext. Occipital Protuberence. १० ressions for Pachionian Bodies. ११ Longitudinal Sinus.

करोटिभूमि

करोटिभूमि[१]—करोटितल में है। यह अनेक अस्थियों के जुड़ने से वनता है ओर सव जगह उंचा नीचा है। इसके दो तल हैं—(१) ऊर्द्ध्वतल जो कि शिरोगुहा के अन्दर छिपा हुवा **करोटिपीठ वा मस्तिष्कपीठ** नाम का है। (२) अधस्तल जो कि मुख और कण्ठविवर की छद वना हुवा, और शिरोगुहा के वाहर है, इसका नाम **करोटिभूमितल** या **करोटितल** है।

करोटिभूमि—दस अस्थियों से मिलकर वनती है। यथा—सामने के भाग में दो ऊर्द्ध्वहन्वस्थि और दो तालवस्थियों से। पीछे के भाग में पश्चिमकपाल से। मध्यभाग में झर्झरक, जतूका ओर सीरिकास्थि से। पार्श्वों में दोनो शंखास्थियों से। सन्धि के चिन्ह इन अस्थियों के अन्दर और वाहर के तल पर विशेषरूप से देखना चाहिये। इनमें—

करोटिपीठ

करोटिपीठ[२] वा **मस्तिष्कपीठ** (४७ वां चित्र) करोटिभूमि के ऊर्द्ध्वतल का नाम है, जो मस्तिष्कादि को धारण करने के लिये खातोदर है। यह करोटिपटल के हटाने से दिखाई देता है। इसमें 'महाखात'[३] नाम के तीन खात हैं। इनमें से सामने का महाखात मस्तिष्क के सम्मुखपिण्ड को धारण करने के लिये है। मध्य का महाखात मस्तिष्क के मध्यपिण्ड को और पीछे का महाखात पश्चिमपिण्ड के धारण करने के लिये है। इनमें से—

सम्मुख महाखात[४]—पुरःकपाल के दोनों नेत्रच्छदिफलकों से और उनके बीच में झर्झरास्थि के चालनीपटल के मिलने से बनता है, यह विशेषरूप से उंचा नीचा है। इसकी पश्चिमसीमा में जतूकास्थि की दो लघुपक्षति और उनके मध्यमें रहने वाली त्रिकोणकण्टक दिखाई देती है।

इसमें निम्न विशेषतायें दर्शनीय हैं—

---

१ Base of Skull. २ Upper surface of the Base of the Skull. ३ Large Fossa. ४ Anterior Fossa.

(वामार्द्ध)　　　　[४७ वां चित्र--करोटि-

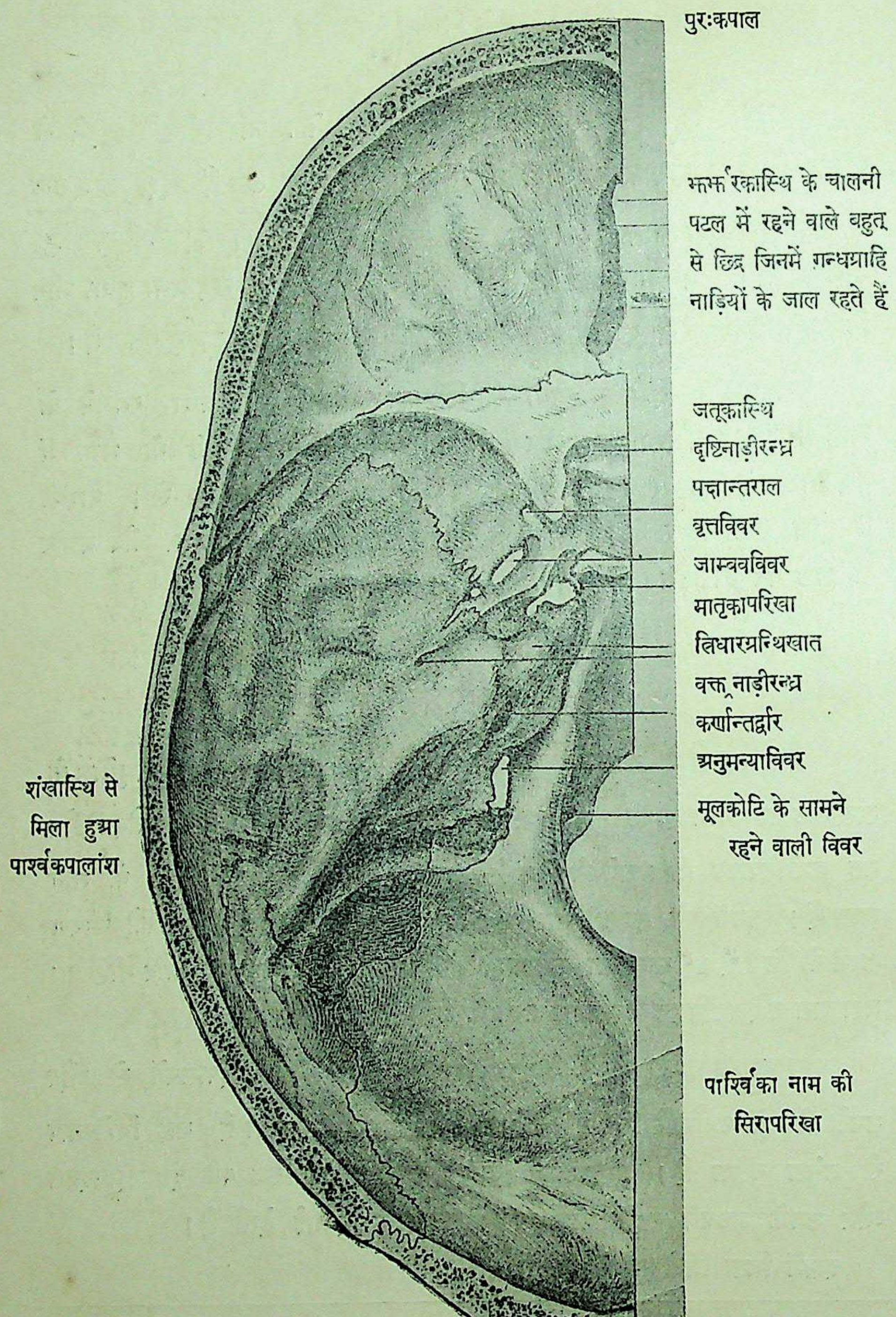

(दो तरफ़ के दोनों चित्रों के मिलाने पर पूर्णता होती है)

भूमि का ऊर्ध्वतल] करोटिपीठ नामक। (दक्षिणार्द्ध)

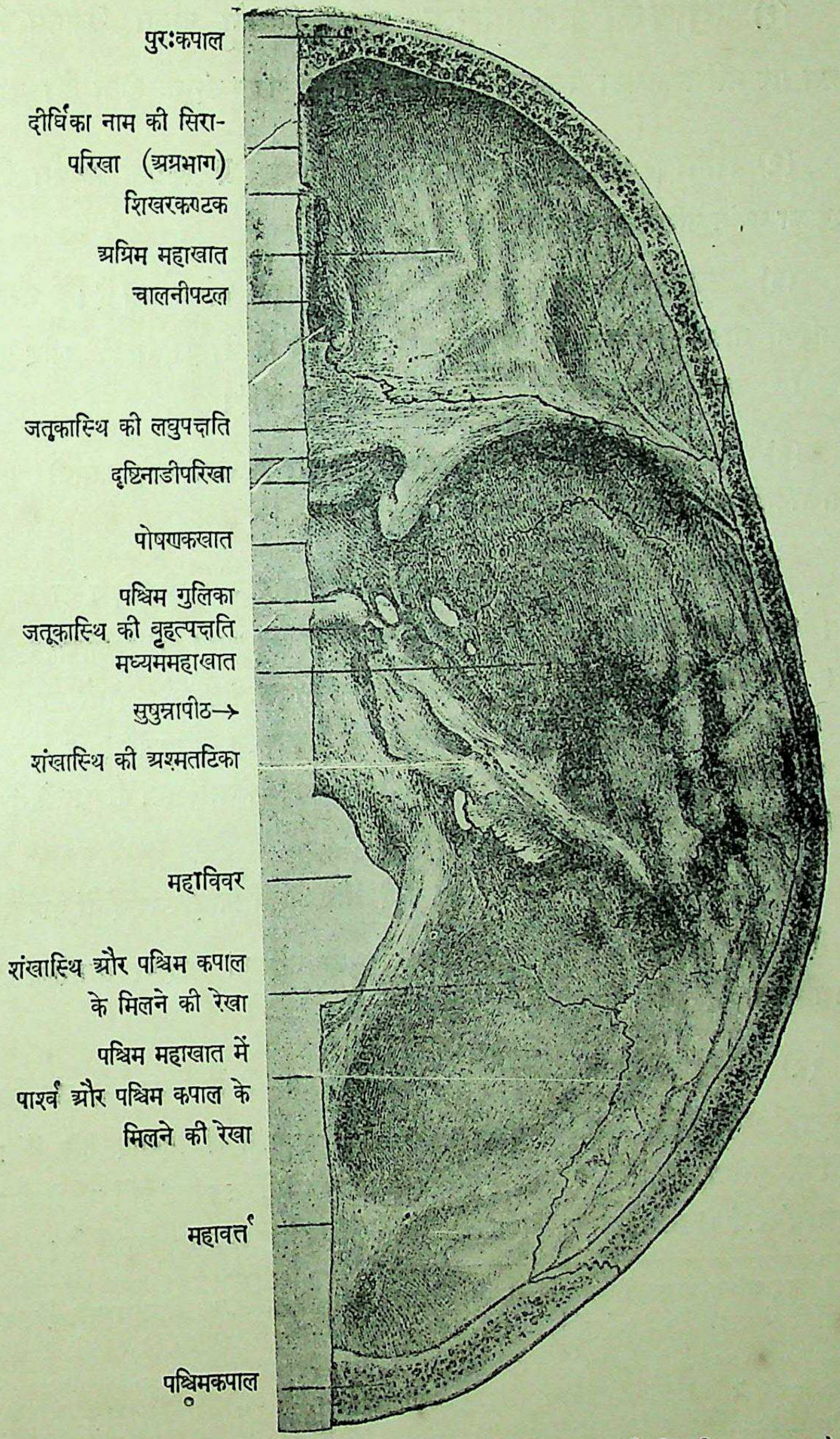

(जिस प्रकार एक आधे में है, उसी प्रकार दूसरे आधे में भी समझना)

(१) दीर्घिका सिरापरिखा---इसका अग्रभाग उन्नत रेखारूप है। इस पर मस्तिष्कच्छदा कला की दात्रिका नामका अंश संयुक्त[१] होता है।

(२) शिखरकरटक[२]—झर्झरास्थि के शिखर में स्थित प्रवर्द्धन है। इसका वर्णन पहिले आ चुका।

(३) चालनीपटल[३]—यह बहुत छिद्रों से युक्त अस्थि पत्र है। गन्ध-ग्राहिणी नामकी नाड़ियां के धारण करने के लिये ये छिद्र होते हैं, और इन छिद्रों से उनकी शाखा-प्रशाखायें नाकके अन्दर पंहुचती हैं।

(४) धमनीप्रतानाङ्क[४]—ये अग्रिमा मस्तिष्ककलापोषणी धमनी की शाखा-प्रशाखाओं को धारण करते हैं।

मध्यम महाखात[५]—दोनों पार्श्वों से गभीर और बीचसे उंचा खात है। इसके सामने की सीमा में जतूकास्थि की दोनों लघुपक्षति एवं त्रिकोणकण्टक है। पश्चिम सीमा के बीच में जतूकास्थि का सुषुम्नापीठ और दोनों पार्श्वों में शंखास्थियों की अश्मतटिकायें है। इस का मध्यभाग जतूकास्थि के शरीर से और दोनों पार्श्व उसीकी वृहत् पक्षतियों से और शंखास्थियां से वनते हैं। इनमें निम्नलिखित विशेषतायें हैं।

(१) दृष्टिनाड़ी परिखा[६]—बीच में है और दो दृष्टिनाड़ीरन्ध्र[७] दोनों पार्श्वों में हैं। इस परिखा में दृष्टिग्राहिणी नाम का दो नाडियां[८] चाक्षषी धमनियों[९] के साथ रहती हैं और छिद्रपथ से निकलती हैं।

(२) पक्षान्तराल[१०]—नामके दो त्रिकोणविवर दोनो तरफ हैं, जो कि जतूकास्थि की वृहत् पक्षतियों और लघुपक्षतियों के वीच में दिखाइ देते हैं। इनमें से तृतीया, चतुर्थी और षष्ठी नाड़ियों के जोड़े, दोनों पञ्चमनाड़ियों की नेत्रगा शाखायें एवं नेत्रगा नाम की सिराधमनियां अक्षिकोटर में प्रवेश करती हैं।

---

१ यह मस्तिष्कावरणी कला का दात्राकार भाग है जो कि मस्तिष्क को वाम और दक्षिण पिण्डों मे विभक्त करता है। (दात्रिका—Falx Cerebri) २ Crista Galli. ३ Cribriform Plate for the Olfactory Nerves. ४ Markings of Anterior Meningeal Arteries. ५ Middle Fossa, ६ Sella Turcica. ७ Optic Foramina. ८ Optic Nerves. ९ Ophthalmic Arteries. १० Foramina Lacerum Anticus.

(३) **पोषणकखात**[1]—पोषणक नामकी छोटी ग्रन्थि को धारण करने के लिये मध्यरेखा में होता है।

(४) **दो वृत्तविवर**[2] और **दो जाम्बव-विवर**[3]—क्रमसे पञ्चमी नाडी की दोनों मध्यम शाखाओं के और एवं पश्चिम शाखाओं के निकलने के लिये हैं।

(५) **दो मातृकापरिखा**[4]—नेत्रकूटों में जानेवाली नाड़ियों के साथ 'मातृका' धमनियों को धारण करनेके लिये हैं।

(६) **त्रिधारग्रन्थि खात**[5]—पञ्चम नाडियों के अग्रभागमें स्थित त्रिधार-ग्रन्थियों के धारण करनेके लिये दो खात हैं। ये शंखास्थियों के अश्मकूट भागके ऊपर दिखाई देते हैं।

(७) **धमनीप्रतानाङ्क**[6]—मध्यमा मस्तिष्ककलापोषणी नाम की धमनी की शाखा-प्रशाखायों को धारण करने के लिये हैं।

पश्चिम महाखात[7]—बहुत गहरा और सबसे बड़ा है। इसमें मस्तिष्क का पश्चिमपिण्ड, अनुमस्तिष्क और सुषुम्नाशीषक रहते हैं। यह सन्मुख भाग में जतूकास्थि के शरीर के कुछ अंश से, मध्यभाग में पश्चिम कपाल से, दोनों पार्श्वों में शंखास्थियों से तथा पार्श्वकपाल का पश्चिमाधर कोण से बनता है। इस का विभाग मध्यममहाखात से दोनों अश्मतटिकाओं[8] द्वारा होता है। अश्मतटिकाओं में मस्तिष्क-जवनिका[9] नाम की मस्तिष्क और अनुमस्तिष्क को विभक्त करने वाला कलाभाग संयुक्त होता है। पश्चिम महाखात में निम्नलिखित विशेषतायें दीखती हैं।

(१) **सुषुम्नापीठ**[10]—बीच में रहता है, इस का वर्णन पहिले आ गया है।

(२) **कर्णान्तर्द्वार**[11]—प्रत्येक पार्श्व मे श्रुति नाड़ी और वक्त्र नाड़ी के प्रवेश के लिये है।

---

१ Pituitary Fossa. २ Foramina Rotunda. ३ Foramina Ovale. ४ Carotid Canals. ५ Gasserian Ganglion. ६ Grooves for the Branches of Middle Meningeal Arteries. ७ Posterior Fossa. ८ Superior Borders of the Petrous portions of the Temporal Bones. ९ Tentorium Cerebelli. १० Dorsum Epiphii. ११ Internal Auditory Meatus.

(३) महाविवर[1]—मध्य में है, इस में से सुषुम्नशीर्षक के साथ सुषुम्ना-काण्ड नीचेकी ओर जाती है।

(४) मूलकोटिसम्मुख विवर[2]—प्रत्येक पार्श्व में एक है। द्वादशी नाड़ी इसमें से वाहर निकलती है।

(५) अनुमन्या-विवर[3]—प्रत्येक पार्श्व में एक है। यह इस प्रकार से वनता है यथा, पश्चिमकपाल के पार्श्व में स्थित मन्याखात ही उस अस्थि के साथ शंखास्थि की सन्धि होने पर विवर रूपसे दिखाई देता है। इसमें से 'अनुमन्या' नाम की स्थल सिरा तथा नवमी, दशमी और एकादशी नाड़ियां बाहर निकलती हैं, और दो धमनियां शिर के अन्दर प्रविष्ट होती हैं।

(६) पार्श्विका[4] सिरापरिखा—प्रत्येक अनुमन्या विवर के प्रान्त में रहती है। इसके साथ लगी हुई अर्द्धचन्द्रिका[5] नामकी और एक सिरा-परिखा मन्याविवर तक गयी है, इस परिखा में जाने वाली एक सिरा गोस्तनच्छिद्र[6] से प्रवेश करती है।

(७) दीर्घिका सिरापरिखा[7] का पश्चिम प्रान्त और महावर्त्त[8] प्रायः मध्यरेखा में है।

करोटि तल

करोटितल या करोटिभूमितल—(४८ चित्र) करोटिभूमि का अधस्तल का नाम है। यह वहुत ही ऊंचा नीचा है और मुख, कण्ठ:आदि की छद वना हुवा है। इस के तीन भाग हैं। सामने का भाग—ऊर्द्ध हनुमण्डल से अधिकांश वना हुवा है। और तालुपटल को धारण करता है, मध्यभाग—तालु और महा विवर के वीच में रहने वाला है आर कण्ठ विवर की छद वनाता है, पश्चिम भाग—महा विवर से लेकर उत्तरतोरणिका रेखा तक गया है।

(क) सम्मुख भाग में—दो विशेषतायें हैं, एक दन्तोदूखल मण्डल और दूसरा तालुपटल। इनमें—

१ Foramen Magnum. २ Anterior Condyloid Foramen. ३ Jugular Fossa. ४ Lateral Sinus. ५ Sigmoid groove. ६ Mostoid foramen. ७ Longitudinal Sinus. ८ Torcular Herophili.

दन्तोदूखल मण्डल[1]—सोलह दन्तोदूखलों को धारण करने के लिये है। पूर्ण यौवन अवस्था में प्रत्येक हनुमण्डल में सोलह दाँत होते हैं। यथा—मध्यरेखा के एक एक ओर दो दो कर्त्तनक[2], उनके वाहर एक एक रदनक[3], उसके वाहर की ओर दो दो अग्रचर्वणक[4] और अन्तमें तीन तीन पश्चिम चर्वणक[5] (४८ वां चित्र)। इनमें अष्टम चर्वणकों की 'ज्ञानदन्त'[6] संज्ञा प्रसिद्ध है। यह यौवन में निकलते हैं। ऊर्द्ध हनुमण्डल में मध्यरेखा के दोनों ओर स्थित दो कर्त्तनक दाँतो की 'राजदन्त'—यह प्राचीन संज्ञा है। इनमें कर्त्तनक और रदनक दन्तों की एक एक लम्बी जड होती है। अग्रचर्वणकों की दो दो जड और पश्चिम चर्वणकोंकी तीन तीन जड होती हैं। दाँतो के निर्म्माण विवरण विशेष रूपसे सूक्ष्मशारीराध्याय में कहेंगे।

यहांतक युवा व्यक्ति के ऊर्ध्व हनुमण्डल में स्थित दाँतों का वर्णन किया गया। अधोहनुमण्डल में भी इसी प्रकार जानना चाहिये। दोनों हनुमण्डलों के दाँतों की मिलित संख्या वत्तीस है। परन्तु—वाल्यावस्था में प्रत्येक हनुमण्डल में एक एक ओर पांच पांच करके दस ही दाँत होते हैं क्यों कि वालक में पश्चिम चर्वणक दाँत नहीं होते।

वालकके ये सव दाँत वाल्य और यौवनारम्भ में गिर जाते हैं और उनके जगह और उनके अलावे नवीन दांत निकलते हैं।

तालुपटल[7]—मुखविवर की छद को वनाता है और दोनों ऊर्ध्वहन्वस्थियों के तालुफलकों से तथा तालव्यस्थियों के ह्रस्वपत्रकों से वना हुवा है। इसके मध्यभाग में परस्पर मिलने वाली लम्बी रेखा है। और इस रेखाको काटती हुई एक अनुप्रस्था रेखा भी लक्षित होती है जो कि उर्द्ध हनु और तालवस्थियों की सन्धि को वतलाती है। इन रेखा ओं के मिलने से स्वस्तिकसीमन्तिका[8] वनती है। मध्यरेखा में आगे की ओर चार छिद्रवाला 'अग्रतालुखात'[9] है, इसके पूर्व और पश्चिम छिद्रों से 'नासा तालुका'[10] नाम की नाडियाँ और पार्श्व छिद्रों से उसी नामकी धमनियां क्रम से नासाभूमि और तालुपटल में प्रविष्ट

---

१ Alveolor Arch. २ Incisors. ३ Canines. ४ Bicuspids. ५ Molars. ६ Wisdom Teeth. ७ Vault of the Palate. ८ Crucial Suture. ९ Anterior Pslatine Fossa. १० Foramina of Scarpa.

(वामार्द्ध)

[४८ वाँ चित्र—

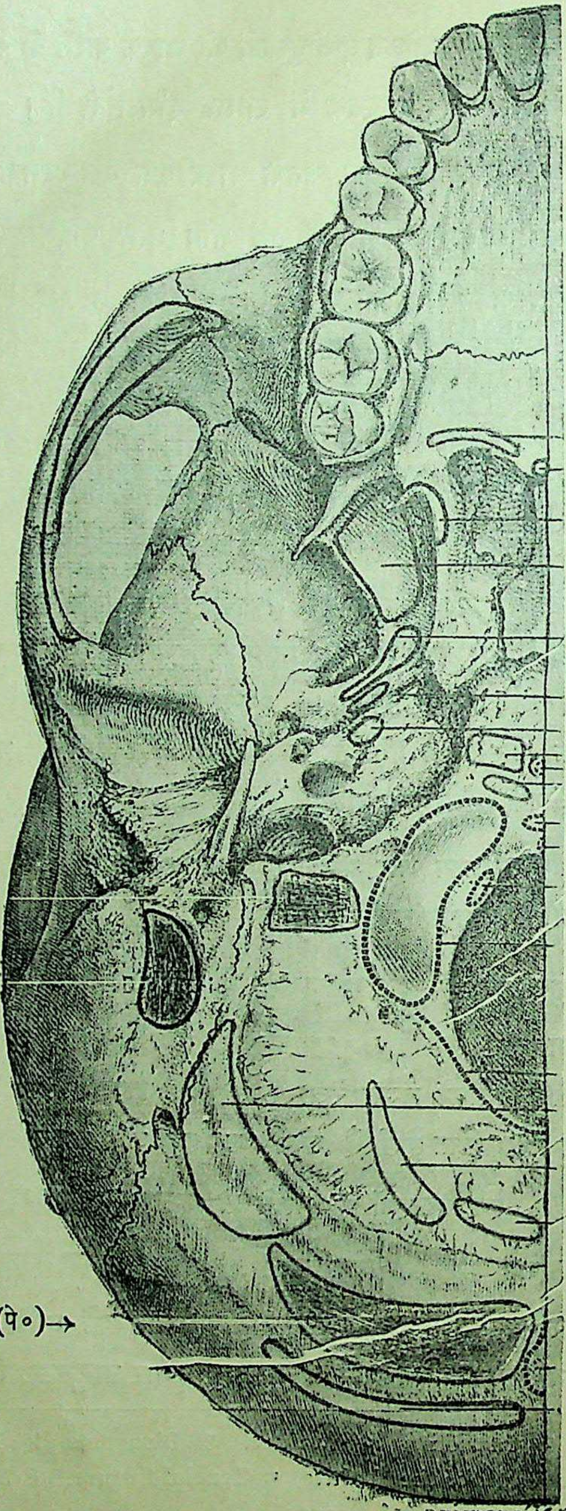

(दो तरफ के दोनों:चित्रों: के मिलाने पर पूणता होती है)

करोटितल (दक्षिणार्द्ध)

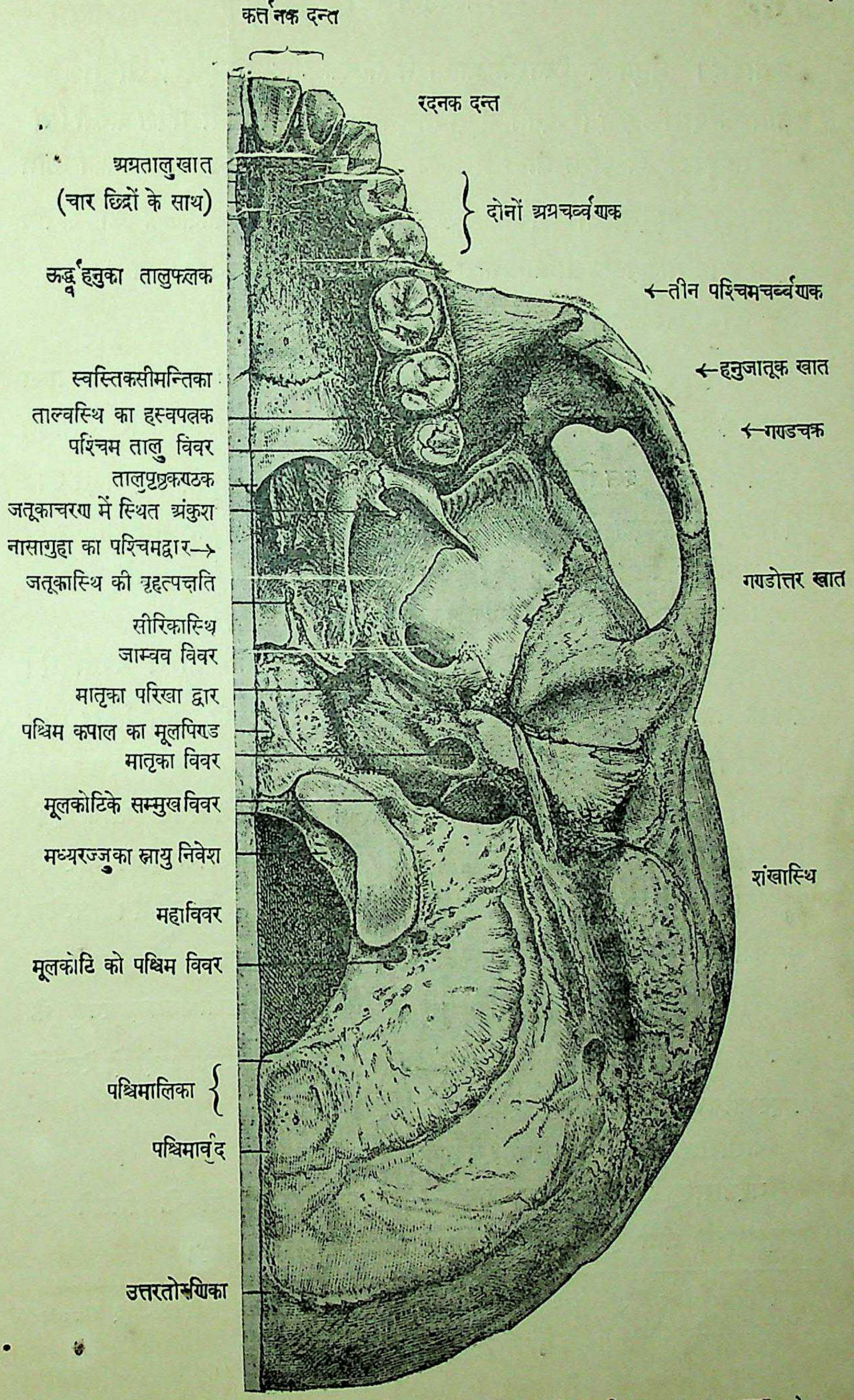

(एक आधे में जिस प्रकार है, दूसरे आधे में भी उसी प्रकार समझना ।)

होती हैं। अनुप्रस्थ रेखा के प्रान्तों में प्रत्येक ओर **पश्चिम तालुविवर**[1] नाम के दो छिद्र हैं। इनमें से दो तालुनाड़ियां तालुपटल में प्रवेश करती हैं।

तालुपटल के पश्चिम प्रान्त में मध्य रेखा पर एक कण्टक है, जिसका नाम **तालुपृष्ठकण्टक**[2] वा 'काकल कण्टक' है। यहाँ पर काकलक[3] का संयोग होती है। तालुपटल की प्रान्तधारा में 'कोमल तालु' का संयोग होता है।

(ख) करोटितल के मध्यभाग में ये विशेषताये हैं—

कण्ठपटल[4] वा **गलविलपटल**— कण्ठविल की छद वनाने वाला भाग है, जो कि पश्चिम कपाल का मूलपिण्ड के जतूकास्थि शरीर से मिलने से वनता है। इस मिलने की रेखा[5] का नाम **मूलजातूका** है, यह वहुत स्पष्ट है। इसके सम्मुख के भाग में पश्चिम नासागुहाद्वार है, जो सीरिकास्थि से दो भागों में विभक्त रहता है। इसके प्रत्येक पार्श्व में जतूकास्थि के दो चरण हैं जिससे नासागुहाकी दो पार्श्वसीमा यें वनती हैं।

अनुमन्या विवर—अनुमन्या नाम की सिरा को धारण करता है। इस के वाहर की ओर **मातृकासुरंगा-द्वार** है, जिस :से अन्तर्मातृका नाम की धमनी प्रविष्ट होती है।

(ग) करोटिपटलके पश्चिमभाग में प्रधानतः मध्यरेखामें ये विशेषतायें हैं।

महाविवर—सुषुम्ना को धारण करने के लिये। इसके दोनों ओर दो **मूलकोटियां** चूड़ावलया कशेरुका के दोनों पार्श्वों के साथ जुडती है। प्रत्येक मूलकोटि के सामने और पीछे दो दो विवर हैं, जिनमें से नाडियां निकलती हैं। **पश्चिमालिका और पश्चिमार्वुद** ग्रीवाधरा नामकी स्नायु रज्जु के वन्धनके लिये है। इसके दोनों ओर **उत्तरतोरणिका** नामकी दो दो रेखा यें वाहर की ओर निकली है। इसका वर्णन पहिले कर चुके।

करोटितल के प्रत्येक पार्श्व में लक्षणीय वस्तु ये हैं—

गण्डोत्तरकूट, गण्डास्थि और गण्डप्रवर्धन—यह तीनों के मिलने से **गण्डचक्र** वना है, जो कि गण्डोत्तरखात की वाह्य परिधि है।

---

१ Posterior Pabatine Foramina २ Spine of the Palate. ३ Uvula.
४ Roof of the throat. ५ Basilar Suture.

<u>हनुसन्धिस्थालक</u>—हनुमुण्ड को धारण करने के लिये है।

<u>कर्णकुहर</u>—कानका वहिर्द्वार वना हुवा है। पास ही गोस्तनप्रवर्धन और <u>[illegible]प्रवर्धन</u> स्पष्ट हैं।

सन्धि चिह्न—करोटितल के प्रत्येक पार्श्व में सन्धि चिह्नों को भी देखना चाहिये। यथा ऊर्द्ध्व हन्वस्थि की सन्धि—गण्डास्थि के और जतूकास्थिकी वृहत् पक्षति के साथ। गण्डास्थि की सन्धि—ऊर्द्ध्व हनु, शंखास्थि और जतूकास्थि के साथ। शंखास्थि की सन्धि—जतूकास्थि, गण्डास्थि और पश्चिम कपाल के साथ।

पेशियां करोटितल के प्रत्येक पार्श्व में वहुत सी पेशियां लगती है। इनका प्रभव, निवेश, नाम और संख्या आदि (४७ वें चित्रमें) देखनी चाहिये और पूर्व वर्णन देखकर स्मरण करना चाहिये।

इस प्रकार करोटिभूमि के दोनों तलों को व्याख्या हो गई।

करोटि पक्षद्वय

करोटिपक्ष[१]—करोटिपार्श्व के दोनों ओर है। ये तने हुऐ धनुष के आकार तथा ऊर्द्ध्व सीमा को लेकर त्रिकोणप्राय दिखाई देते हैं (४७ वां चित्र)। प्रत्येक करोटिपक्ष की ऊर्द्ध्व सीमा अपांग से लेकर पश्चिम सीमान्त तक फैली हुई है। इसीके कुछ अंश से शंखतोरणिका रेखा वनती है। अधःसीमा अधोहनुके कोण से वनी हुई है। ऊर्द्ध्व सीमा की रेखा के दोनों प्रान्त यदि हनुकोण के साथ जोड़ दिये जायें तव करोटि पक्ष की पूर्व और पश्चिम सीमा का निर्देश किया जा सकता है।

प्रत्येक करोटिपक्ष के दो भाग हैं। जो भाग हनुसन्धिस्थालक के सामने हैं उसको सम्मुख भाग और जो उसके पीछे है उसको पश्चिम भाग कहते हैं। इनमें—

सम्मुख भाग में दर्शनीय तीन खात हैं। यथा—शंखखात, गण्डोत्तरखात और हनुजातूकखात। इनमें से—

---

१ Side of the Skull (Norma, Leteralis).

[४७(क) चित्र—करोटि पक्ष वाम]

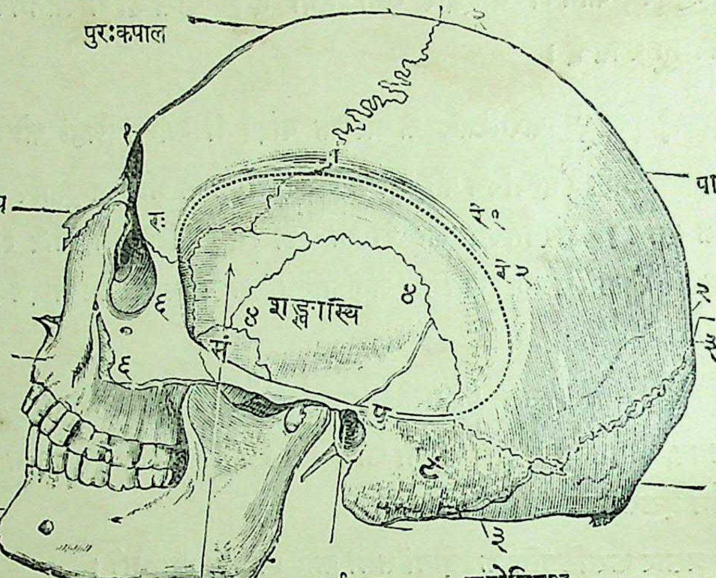

करोटिपक्ष

[अंकोंक व्याख्या २७ चित्रमें देखिये]

(क) **शंखखात**[1]—गण्डचक्र से ऊपर अर्द्धचन्द्राकार खात है। यह पांच अस्थियों के अंश से मिलकर वनता है। यथा—

"गण्ड पुरः कपालश्च जतूकापक्षतिस्तथा।
शंखं पार्श्वकपालश्च पञ्चकं शंखखातकृत्॥" (प्र० शा०)

अर्थात् "गण्डास्थि, पुरःकपाल, जतूकापक्षति, शङ्खास्थि और पार्श्वकपाल—इनके मिलने से शंख-खात बनता है।" यह शङ्खाच्छदा नामकी पेशी से भरा जाता है और शंखावरणी नामकी कलासे ढंपा जाता है।

(ख) **गण्डोत्तर खात**[2]—गण्डचक्र से नीचे स्थित हनुकुन्त को धारण करने वाला खात है। यह शङ्खच्छदा नामकी पेशी के निचले भाग से एवं दोनों हनुकूटकर्षणी पेशियों से भरा जाता है। यहाँ 'आन्तरहानव्या'[3] नामकी सिरा धमनियां और पञ्चम नाड़ी की हानव्या शाखा रहती हैं।

---

१ Temporal Fossa. २ Zygomatic Fossa. ३ Int. Maxillary Vein & Artery.

इन खातों के एक होने पर भी ऊर्ध्व और अधर भाग के विभाग से दो सं[illegible]यें हैं। इनमें—

[illegible]यमभ,

[illegible]) **हनुजातूक खात**[१]—ऊर्ध्व हनु और जतूका के सन्धान के स्थान पर त्रिकोणाकार छोटासा खात है। यह नेत्रगुहा के पीछे की ओर स्थित है। इसकी सम्मुख सीमा में ऊर्ध्वहनु का पश्चिमार्बुद और पश्चिम सीमा में जतूकास्थि के दोनों चरणफलक हैं। यह खात क्रम से—हनुजातूका, हनुचरणिका और पक्षान्तराला नामकी तीन परिखाओं[२] का केन्द्र हैं। नेत्र, नासा, मुख और मस्तिष्क गुहाओं से तथा गण्डोत्तर खात से इसका सम्बन्ध है। इसमें नाडी-ग्रन्थि[३] के सहित 'ऊर्ध्वहानव्या' नाड़ी और 'आन्तरहानव्या' नामकी धमनी रहती हैं।

करोटि पक्ष के पश्चिम भाग में विशेषरूप से दर्शनीय कर्णकुहर और शंखास्थि का गोस्तनाकार प्रवर्धन हैं।

करोटिका सम्मुख भाग—मुखमण्डल।

करोटि सम्मुख भाग[४]—प्रायः गोलाकार और मुखमण्डल को बनाने वाला है (४८ वां चित्र)। इसकी ऊर्ध्व सीमा में भ्रूमध्य और दो भ्रूतोरणिकायें; अधःसीमा में अधोहनुमण्डल; और पार्श्वसीमा में एक एक ओर गण्डास्थि और अधोहनुकूट हैं। इस प्रकार से इसकी चारों सीमा बनती हैं।

इसके मध्यभाग में ऊपर से नीचे लिखित विशेषतायें हैं।

(१) **कूर्चक या भ्रूमध्य**[५]—यहां स्थपनी नामका मर्म्म है। इसके दोनो ओर **भ्रूतोरणिका**[६] नामकी दो रेखायें हैं।

(२) **दो नासास्थियां**—बीचमें सन्धान रेखा पर जुडी हुई। इनके ऊर्ध्व सम्मुख मूल जिस स्थान पर सम्मुख कपाल से मिलते हैं, उस स्थानका नाम 'नासामूल'[७] है। जुडी हुई नासास्थियों के मध्यभाग को 'नासासेतु'[८] कहते हैं।

(३) **नासापुरोद्वार**[९]—अर्थात् नासागुहा का सम्मुख द्वार। इसकी परिधि दोनो ओर 'नासापार्श्विक' नामकी तरुणास्थियों से और मध्यभाग में

---

१ Spheno-maxillary Fossa. २ Spheno-maxillary, Pterygo-maxillary and Spenoidal Fissures. ३ Superior Maxillary Nerve with Meckel's ganglior. ४ Anterior Region of the Skull (Norma Facialis). ५ Glabella. ६ Supeeciliary Ridges. ७ Nasion. ८ Bridge of the Nose. ९ Anterior Nares.

[४८ वां चित्र—मुखमण्डल दक्षिणार्द्ध (अधोहनुवर्जित)]

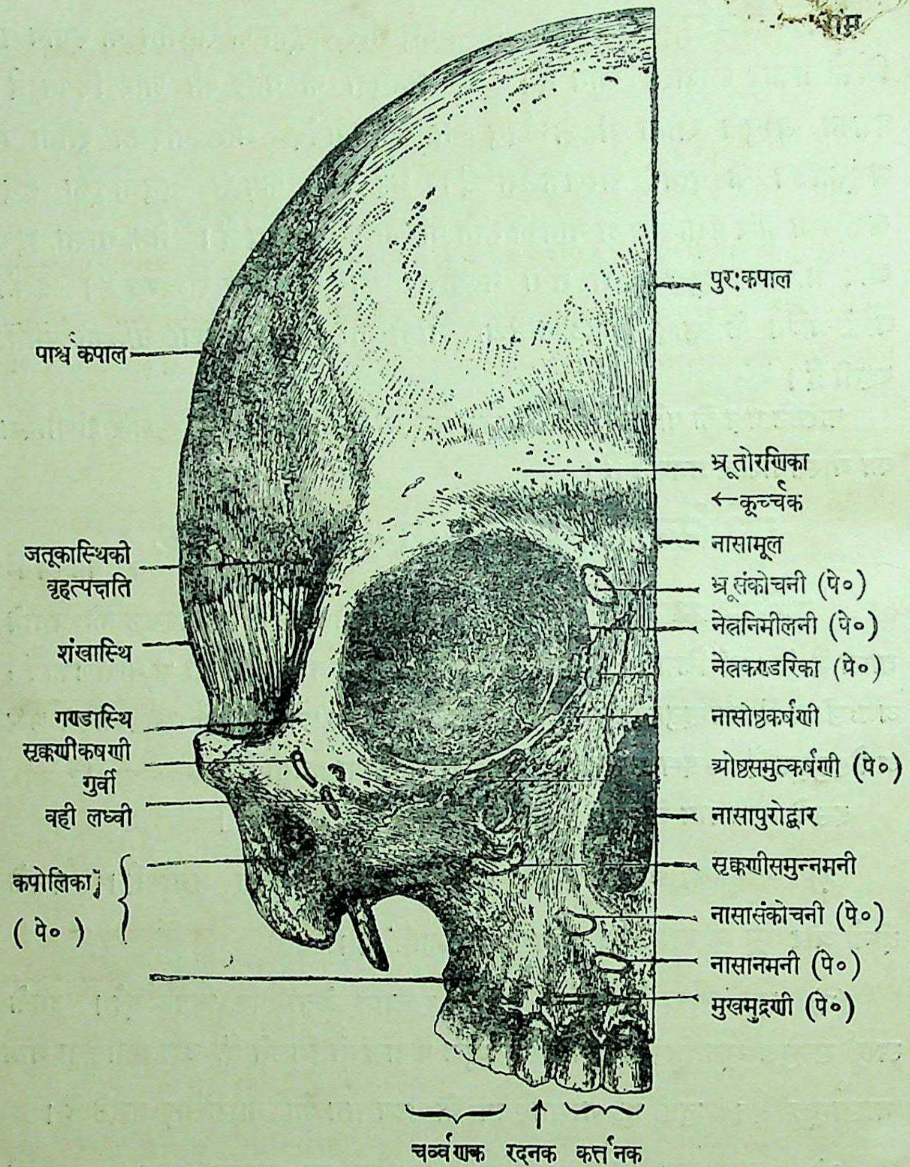

नासाप्राचीरतालु...की तरुणास्थि से मिली है। नीचेकी सीमामें नासाग्र[1]-...यमन, व...इसके नीचे दोनों और दन्तमूलविल या दन्तोदूखल हैं।

(४) आठ कर्त्तनक[2] दन्त—चार ऊपरकी हनु में और चार अधोहनु में।

(५) चिबुकसन्धानिका रेखा और चिबुकपिण्ड।

यहां एक एक पार्श्व में लक्षणीय वस्तुओं का वर्णन करेंगे। यथा--

(१) नेत्रगुहा[3]—जो कि अक्षिगोलक को धारण करती है। उसके ऊपरकी परिधि में 'अधिभ्रुव[4]' नामक छिद्र और इसके नीचे 'नेत्राधरीय[5]' नामका छिद्र है जिनका वर्णन प्रथम आ चुका।

(२) गण्डच्छिद्र[6]—एक (या दो) जो कि गण्डास्थि में दृश्य है। तथा गण्डकूट[7] और अधो हन्वस्थिके साथ गण्डास्थिकी सन्धान रेखा।

(३) बारह दांत—ऊपर छः और नीचे छः। इनमें एक एक रदनक[8] और पांच पांच चर्बणक[9] हैं।

(४) अनुचिवुक[10] विवर—जो कि चिबुकके समीपमें है। पासही चिवुक की वाह्य तिरश्चीना रेखा और बक्त्र[11]धमनीपरिखा क्रमशः बाहर की ओर गई हैं। (४३ वां चित्र)।

पेशीयां—मुखमण्डल के प्रत्येक आधे भागमें सोलह पेशीयां लगती हैं। यथा—भ्रूमध्य के पार्श्वों में भ्रूसंकोचनी[12] ओर नेत्रनिमीलनी[13]; नेत्र के अन्तःकोण में नेत्रकण्डरिका[14], इसके नीचे नासौष्ठकर्षणी[15]; नेत्राधरीय विवरके ऊपर ओष्ठसमुत्कर्षणी[16], इसके नीचे सृक्कणीसमुन्नमनी[17]; गण्डकूट में सृक्कणीकर्षणी[18] लघ्वी और गुर्व्वी; गण्डकूट की अधोधारा में और हनुकूट पर हनुकूटकर्षणी[19]; दन्तोदूखलमण्डल के

---

१ Subnasal Point. २ Incisor Teeth. ३ Orbit. ४ Supra-Orbital Foramen. ५ Infraorbital Foramen. ६ Malar Foramen. ७ Malar Prominence. ८ Canine tooth. ९ Bicuspid & Molar teeth. १० Mental Formen. ११ Groove for Facial Artery. १२ Corrugator Supercilli. १३ Orbicularis Palpabrerum. १४ Tendo Oculi. १५ Levator Labii Superioris alæque nasi. १६ Levator Labii Superioris. १७ Levator Anguli Oris. १८ Zygomaticus major and minor. १९ Masseter.

पूर्व्वार्द्ध में मुखमुद्रणी[1] और पश्चार्द्ध में कपोलिका[2] ; दन्तमूल हनुवर्जि में नासा-संकोचनी[3] एवं नासानमनी[4] ; चिवुकपिण्ड के पार्श्वों में चिवुक[illegible] है। तिरश्चीना रेखा के चारों ओर अधरावनमनी[6], सृक्कणीनमनी[7] और गलपार्श्व[illegible] ।

नेत्रगुहा ।

दोनों **नेत्रगुहा** या **नेत्रकोटर**[9] (४६ वां चित्र) दो है। ये धत्तर के पुष्प के समान आकार वाले, नासा के प्रत्येक पार्श्व में स्थित, नेत्र गोलक को धारण करने वाले कोटर हैं। इनमें से प्रत्येक की दीवार सात अस्थियों के मिलनेसे वनती है। इनमें से चार अस्थियां गुहाद्वार की परिधि वनाती है और तीन अस्थियां गुहामूल के चारों ओर स्थित हैं। यथा—

(१) अश्रु पीठ—अश्रु वाहिका को धारण करता है और अन्दर की परिधि में स्थित है।

(२) पुरः कपाल का नेत्रच्छदिफलक—ऊपर की परिधि में स्थित है।

(३) ऊर्ध्वहन्वस्थि का नेत्रपीठफलक—नेत्र भूमि को वनाने वाला निचली परिधि में स्थित है।

(४) गण्डास्थि का अक्षिफलक वाहर की परिधि में स्थित है।

(५) जतूकास्थि की दोनों पक्षतियां
(६) तालवस्थि के शिखर में स्थित प्रवर्द्धन
(७) झर्झरास्थि का नेत्रान्तः पीठ
} यह तीनों नेत्रगुहा की जड़ के चारों ओर फैली हुई हैं।

इनका संग्रह श्लोक यह है—

"अश्रूर्ध्वहनुगण्डाग्र कपालैर्द्वारि वेष्टिता।
मूले नेत्रगुहा नद्धा जतूका-तालु-झर्झरैः॥

स्मरण रखना चाहिये कि जतूका, झर्झरक ओर अग्रकपाल यह तीन अस्थियां दोनों नेत्रगुहा के बनाने में भाग लेती हैं, अतः दोनों गुहाओं में कुल ग्यारह ही अस्थियां होती हैं।

---

१ Orbicularis oris २ Buccinator. ३ Compressor Nasi. ४ Deppressor alæ nasi. ५ Levator menti. ६ Depressor Labii Inferioris. ७ Depressor Anguli oris. ८ Platyma myeides. ९ Orbit.

प्रत्येक [illegible] गुहा के छः भाग हैं। यथा—

[illegible] गोला[illegible] को [illegible]

[illegible]यमन, वहिर्गुहा द्वार[1]—यह प्रायः गोलाकार और पूर्वोक्त परिधि युक्त है।

(ख) नेत्रगुहा मूल[2]—यह धत्तूर पुष्प के वृन्त के समान संकुचित है और पूर्वोक्त तीन अस्थियों से घिरा हुवा है। यहां नाड़ीरन्ध्र ओर पक्षान्तराल विशेष कर दिखाई देते हैं। जिनमे से दृष्टिनाड़ी ओर सिरा धमनीयां नेत्र गुहा के भीतर प्रवेश करती हैं। इनका वर्णन प्रथम आ चुका है।

(ग) नेत्रगुहाच्छदि[3]—यह नेत्रगुहा की छद है। यह अग्रकपाल के नेत्रच्छदिफलक और जतूकास्थि की लघु पक्षति से बनती है। इसके वाह्यकोण पर 'अश्रु ग्रन्थिखात' दिखाई देता है। और अन्तःकोण पर 'वक्रोर्ध्वदर्शिनी' नाम की नेत्रपेशी का 'आकर्ष' लगने का स्थान है।

(घ) नेत्रगुहाभूमि[4]—यह प्रधान रूप से ऊर्ध्व हनु के नेत्रपीठ फलक से एवं थोड़ी सी जगह में गण्डास्थि और तालवस्थि से बनी हुई और प्रायः समतल है।

(ङ) अन्तःप्राचीर[5]—गुहाके अन्दर की दीवार है। ऊर्ध्व हनुके नासाकूट पार्श्व से, अश्रु पीठ से, झर्झरास्थि के नेत्रान्तःफलक से, एवं जतूकाशरीर के थोड़े अंश से बना हुवा है। इस में विशेष दर्शनीय नासा की ओर जाने वाली 'अश्रु वाहिका[6]' प्रणाली है।

(च) बहिःप्राचीर[7]—इसका पूर्वार्द्ध गण्डास्थि के अक्षिफलक से और पश्चार्द्ध जतूकास्थि के वृहत्पक्षति से बनता है। यहां पर 'शंखगण्डिक' रन्ध्रमार्ग[8] के एक या दो विवर दिखाई देते हैं।

सन्धिचिन्ह—नेत्र गुहा को वनाने वाली अस्थियों के नाम ऊपर कहे गये हैं। इन के सन्धिचिन्हों को विशेष करके देखना चाहिये।

---

१ Anterior Opening of the Orbit. २ Posterior Opening of the Orbit. ३ Roof of the Orbit. ४ Floor of the Orbit. ५ Inner wall. ६ जब बहुत से आंसु निकलते हैं उस समय अश्रु जल इसी अश्रु वाहिका मार्ग से नासा में जाता है। ७ Outer wall. ८ Malar Canal.

विवर—नेत्रगुहा में नौ विवर दिखाई देते हैं। यथा, मूल में [illegible]नाड़ीरन्ध्र[१]। इसके वाहर की ओर—पक्षान्तराल[२] (जिससे तृतीया, चतुर्थी चक्षु[illegible] हैं। पञ्चमी नाड़ी की नेत्रगा शाखा, और नेत्रगा सिरा धमनीयां नेत्र [illegible]प्रविष्ट होती हैं) और हनुजातूक[३] खात। इसके अन्दर दो सूक्ष्म झर्झरक[४] विवर। अन्तः कोण में अश्रुवाहिका[५]। उपर की परिधि में 'अधिभ्रुव'[६] नाम का छिद्र और निचली परिधि में 'नेत्राधरीय'[७] नामक छिद्र। वाह्य कोण में—शंखगण्डिक[८] नाम का रन्ध्र मार्ग है।

पेशीयां—नेत्र गुहा की दिवारों में सात पेशीयां लगती हैं। यथा—(क्रमसे) ऊर्ध्व[९] दर्शनी, अधोदर्शनी[१०], अन्तर्दर्शनी[११], वहिर्दर्शनी[१२], वक्रोर्ध्वदर्शनी[१३], वक्राधो दर्शनी[१४],—ये छः पेशीयां नेत्र गोलक में जुड़ती हैं, और सातवीं अश्रु विसर्जनी[१५] नामकी पेशी अश्रुवाहिका के पश्चिम में है।

यह संक्षेप से नेत्र गुहा का वर्णन हो गया।

नासागुहा

नासागुहा[१६]—दो हैं। ये घ्राणेन्द्रिय की अधिष्ठान भूमि और श्वासवायु को ग्रहण करने का द्वार हैं। इन दोनों के वीच में पतली अस्थिमय दिवार है। इसका मुख्यरूप से सम्बन्ध 'गलविल' से है। प्रत्येक नासागुहा चौदह अस्थियों के मिलने से वनती है। यथा—झर्झरकास्थि, जतूकास्थि और पुरःकपाल—इन तीन शिरोऽस्थियों से, और अधोहनु तथा दोनों गण्डास्थियों को छोड़ कर शेष सव (अर्थात ग्यारह) मुखमण्डल की अस्थियों से।

प्रत्येक नासा गुहा के छः भाग हैं। यथा—गुहाच्छदि, गुहाभूमि, अन्तःप्राचीर, वहिःप्राचीर, नासा सम्मुख द्वार और नासा पश्चिम द्वार।

---

१ Optic Foramen. २ Foramen Lacerum Anticus. ३ Spheno-maxillary Fissure. ४ Ethmoidal canals. ५ Lachrymal Canal. ६ Supra-orbital Foramen. ७ Infraorbital Foramen. ८ Tempero-malar Canal. ९ Supreior Rectus १० Inferior Rectus. ११ Internal Rectus. १२ External Rectus. १३ Superior Oblique. १४ Inferior Oblique. १५ Tensor Tarsi. १६ Nasal fossæ.

प्रत्येक [illegible]हा में तीन सुरंगायें हैं। यथा—ऊर्ध्वसुरंगा, मध्य-[illegible]यमन, वहिरा:सुरंगा। इनका समावेश वहिःप्राचीर के वर्णन में आव[illegible] इनमें—

नासा गुहाच्छदि[1]—नासागुहा की छत है। यह आगे की ओर—नासास्थि से और पुरःकपाल के अग्रकण्टक से, मध्य में झर्झरास्थि के चालनी-पटल से, और पीछे में जतूकास्थि के शरीरपिण्ड से वनी है। नासास्थि तल में नासा नाड़ीयां और चालनीपटल के छिद्रों से घ्राण नाड़ीयों की शाखा प्रशाखायें इस में प्रविष्ट होती हैं।

नासागुहा भूमि या नासाभूमि[2]—अपने नाम से ही स्पष्ट है। यह कुछ नतोदर है। इसका पूर्वार्द्ध दो ऊर्ध्वहन्वस्थियों के तालुफलकों से और पश्चार्द्ध तालवस्थि के ह्रस्वपत्रक से वनता है। इसमें दर्शनीय—नासाग्रकण्टक, अग्रतालुक-खातके विवर, और स्वस्तिकसन्धानिका रेखा है। इन सव का वर्णन प्रथम आ गया है। नासागुहा भूमि के मध्य में सीरिकास्थि खडी जुड़ती है, जिससे नासा की मध्य दिवार वनती है।

अन्तःप्राचीर[3]—दोनों नासाभूमियों में एक ही है। इसी का दूसरा नाम मध्य प्राचीर है। यह झर्झरास्थि के मध्य फलक और सीरिकास्थि के तिरछे जुड़ने से वनती है। यह मध्यप्राचीर करोटि में स्वभाव से ही दक्षिण या आगे वाम पार्श्व में प्रायः कुछ झुकी दिखाई देती है। इन दोनों अस्थियों की सन्धि त्रिकोण तरुणास्थि से और पीछे जतूकास्थि की रसनिका से होती है। नासामध्यप्राचीर के वाम दक्षिण भेदसे दो पृष्ठ दिखाई देते हैं। दोनों पृष्ठों में सीरिका के साथ साथ 'नासातालुका' नाम की दो नाड़ीयों को धारण करने के लिये दो परिखायें हैं। और नाड़ी तथा धमनीयों की शाखा प्रशाखाओं को धारण करने के लिये सूक्ष्म सूक्ष्म छिद्र भी हैं।

वहिःप्राचीर[4]—प्रत्येक नासागुहा की पृथक् है। यह सम्मुख में—ऊर्ध्वहनुके नासाकूट से और अश्रुपीठ से; मध्य में झर्झरास्थि के पार्श्वपिण्ड, ऊर्द्ध हनुपिण्ड तथा शुक्तिकास्थि से; और पीछे में तालवस्थि के दीर्घ पत्रक

१ Roof of Nose. २ Floor of Nose. ३ Inner wall. ४ Outer wall.

[४६ वां चित्र—नासागुहा वामा]

[वहिःप्राचीर में दीखने वाली विशेषतायें]

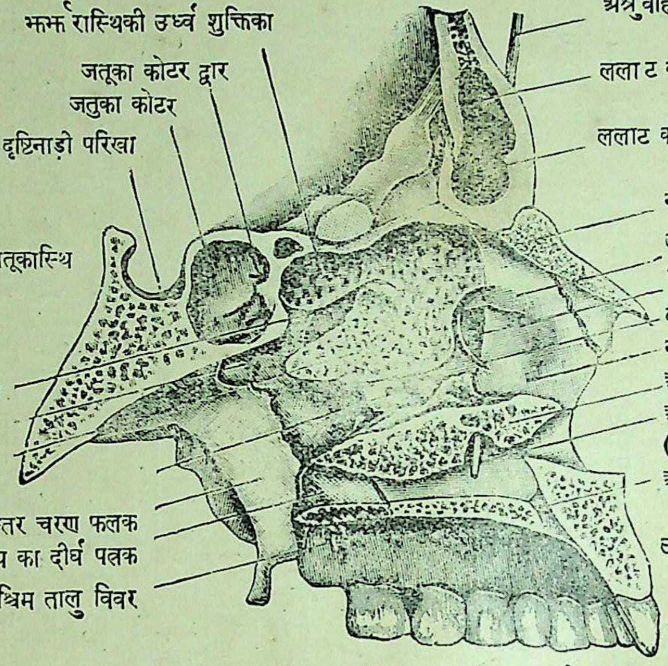

[* झर्झरास्थि का अंकुश प्रवर्द्धन]

और जतका[illegible] के आन्तर चरणफलक से वनती हैं। इसमें तीन सुरंगायें हैं; जो [illegible], मध्य शुक्तिका और अधः शुक्तिका के पत्रकों से विभक्त हैं। [illegible]यमन, वहिरा[illegible] [illegible] ऊर्द्ध्व[१] सुरंगा, मध्य सुरंगा, और अधः सुरंगा हैं। इनमें—

ऊर्द्ध्व सुरंगा—सब से ऊंचा और छोटा नासागुहा मार्ग है जो कि नासागुहा के पश्चार्द्ध में झर्झरास्थि की ऊर्ध्व शुक्तिका और मध्य शुक्तिका के वीच में स्थित है। इसमें तीन विवर दिखाई देते हैं। यथा—पीछे में तालुजातक नामका, इसी नाम की नाड़ी धमनीयों के प्रवेश के लिये; आगे झर्झरकोटर द्वार नामका जो कि झर्झरास्थि के पश्चिम कोटर से मिला हुवा है; और शिखरमें जतूका द्वार जो कि जतूकास्थि के पिण्डान्तरीय कोटर से मिला हुवा है।

प्रायः देखने में आता है कि पीनस आदि रोगों में उत्पन्न पूय इन कोटरों में प्रविष्ट हो कर अस्थियों को जर्जरित कर देती है, जिस से कहीं कहीं मस्तिष्क का विकार होता है।

मध्य सुरंगा[२]—मध्य और अधः शुक्तिकाओं का मध्यवर्त्ती मध्यम आकार का मार्ग है। इसमें एक विवर है, जो कि झर्झर कोटर मार्ग से ललाट कोटर के साथ मिला हुवा है। दूसरा—ऊर्ध्वहनुपिण्ड के मध्य में रहने वाले हनुगर्भ कोटर का द्वार वना हुवा है (देखिये हनुगर्भ कोटर का वर्णन)। नासा रोगों में कहीं कहीं दोनों कोटरों में पूय का सञ्चार देखा जाता है।

अधःसुरंगा[३]—अधःशुक्तिकास्थि के नीचे दीखने वाला, सब से लम्बा एवं सम्पूर्ण नासा की वाह्य भित्ति के साथ साथ जाने वाला मार्ग है। इसके पूर्वार्द्ध में अश्रु वाहिका का द्वार है, जिस के द्वारा अधिक निकलता हुवा अश्रु जल नासा गुहा में प्रविष्ट होता है।

नासा सन्मुख द्वार[४]—नासा गुहा के सन्मुख में स्थित, वाहर को मुख किये, पान के पत्र के आकार का द्वार है। यह जीवित शरीर में तरुणास्थि के संयोग से अधिक संकुचित दिखाई देता है। और पूर्ववर्णित नासाग्र में स्थित त्रिकोण तरुणास्थि से युक्त नासामध्यप्राचीर द्वारा दो भाग में विभक्त दिखाई देता है। इसकी ऊर्ध्व सीमा में नासास्थियां, और पार्श्वों में एवं अधः सीमा में ऊर्ध्व हन्वस्थियां परस्पर मिली हुई हैं।

---

१ Superior Meatus. २ Middle Meatus. ३ lnterior Meatus.
४ Anterior Nares.

नासा[1] पश्चिमद्वार—प्रायः गोलाकार, गलविवर की [illegible] मुख किये नासागुहा का पश्चिम द्वार है। इस के पश्चिम में गल[illegible] जाता हुवा पश्चिम कपाल का मूलपिण्ड है। ऊर्ध्व सीमा में जतू[illegible], और अधः सीमा में तालवस्थि के ह्रस्व पत्नक हैं। पार्श्व में जतूकास्थि के दोनों आन्तर चरण हैं। यह सीरिकास्थि के द्वारा दो भागों में विभक्त है।

इस प्रकार संक्षेप से नासा गुहा का वर्णन हो गया, विस्तार से वर्णन घ्राणेन्द्रिय के वर्णन मे आयेगा।

सम्पूर्ण करोटि में दीखने योग्य त्वाच भाग

त्वाच[2] भाग—केवल त्वचा से ढंपे हुवे भाग को त्वाच भाग कहते हैं। करोटि में स्थित त्वाच भागोंको विशेष करके देखने चाहियें, क्योंकि इनका सम्यक् प्रकार से ज्ञान होने पर ही शिरोगुहा के अन्तः स्थित मस्तिष्क आदि की विशेषतायें जानी जाती हैं।

ये त्वाच भाग संख्या में सत्ताईस हैं। यथा दो भ्रूतोरणिकायें, दो गण्डचक्र, दो गण्डकूट, दो गोस्तनप्रवर्धन, एक पश्चिमार्बुद, दो उत्तर तोरणिका, दो पार्श्व कुम्भ, दो शंखतोरणिका, दो पुरः कुम्भ, दो नासास्थियां, दो नेत्रगुहा परिधि, दो हनुकोण, अधोहनु की एक अधोधारा और एक चिवुक पिण्ड।

यह अस्थि खण्ड समाप्त हुवा। इसे परिश्रम से सीखना चाहिये, क्यों कि अस्थि विज्ञान ही शारीर विद्या का आधार है।

कीकसे यदि कार्कश्यं तथाप्यादीयतामिदम्।
ज्ञानगङ्गाम्बु संगत्या दिव्या तनुरतो यतः॥

चतुर्थ अध्याय समाप्त।

अस्थिखण्ड समाप्त।

---

१ Posterior Nares २ Sub-cutaneus parts.

सन्धि-स्नायु-खण्ड

प्रथम अध्याय।

"सन्धि-स्नायु सामान्य विज्ञानीय"।

यहां पर "सन्धि[१]" शब्द का अभिप्राय अस्थियों की सन्धि से है। अन्य सन्धियां असंख्येय हैं और उनसे विशेष कोई प्रयोजन भी नहीं है। कहा भी है—

"अस्थ्नान्तु सन्धयो ह्येते केवलाः परिकीर्त्तिताः।
पेशी-स्नायु-सिराणान्तु सन्धिसंख्या न विद्यते॥" (सु० शा० ५ अ०)

ये सन्धियां दो प्रकार की है—चेष्टाशील और स्थिर इनमें—

"शाखासु हन्वोः कट्याञ्च चेष्टावन्तस्तु सन्धयः।
शेषास्तु सन्धयः सर्वे विज्ञेया हि स्थिरा बुधैः॥" (सु० शा० ५ अ०)

अर्थात् शाखाओं में, दोनों हनु में, और कटि में सन्धियां चेष्टाशील हैं, शेष सब सन्धियां स्थिर हैं।

दूसरों का विचार है कि चेष्टाशील सन्धियां भी दो प्रकार की हैं—एक बहुत चेष्टाशील, दूसरी अल्प चेष्टाशील। इस मत से तीन प्रकार की सन्धियां गिनी जाती हैं। यथा—अधिक चेष्टाशील[२], अल्पचेष्टाशील[३] और अचेष्ट या स्थिर[४]। शाखाओं में और अधो हनुकी मूल कोटियों में सन्धि बहु चेष्टाशील हैं, पृष्ठवंश आदि में अल्प चेष्टाशील हैं, और शेष अन्य सन्धियां अचेष्ट या स्थिर हैं।

इन चेष्टाशील सन्धियों में दो या तीन अस्थियां संहित होती हैं; जिनके प्रान्त सन्धियों में ठोस चिकने सन के गुच्छों के आकार की शाखा-प्रशाखा युक्त स्नायुरज्जु[५] या स्नायुकोष[६] द्वारा बांधे जाते हैं। अस्थियों के सन्धेय अंश (जुड़ने वाले भाग) तरुणास्थियों से ढंपे हुए रहते हैं। और सन्धियों के बीच में श्लेष्मधर कलापुटक[७] (अर्थात् चिकने पदार्थ पूर्ण[८] झिल्लीमय थैली) रहती है, इससे सन्धियों की चेष्टा सुन्दर रूपसे होती है।

---

१ Joints or Articulations. २ Diarthroses or Movable joints. ३ Amphiarthroses or Mixed Aritculations. ४ Synarthroses or Immovable Joints. ५ Ligaments. ६ Articular Capsules. ७ Synovial Membrane. ८ Synovia.

अचेष्ट या स्थिर सन्धियां बहुत पतले स्नायुजाल से बंधी रहती हैं, एवं दन्तुर धारा से अथवा विशिष्ट स्पर्श मात्र से विना व्यवधान के नुब[illegible] हैं। इनमें श्लेष्मधरा कला का प्रयोजन न होने से उसका अभाव है।

प्राचीनों की दृष्टि में सन्धियां आकार भेद से आठ प्रकार की हैं। यथा— "कोर, ऊदूखल, सामुद्ग, प्रतर, तुन्नसेवनी, वायसतुण्ड, मण्डल, और शंखावर्त्त।" इनमें अंगुली, गुल्फ, मणिवन्ध, जानु और कूर्पर में कोर सन्धि ; कक्षा, वंक्षण और दाँतों में उदूखल ; अंसकूट, नितम्ब, गुद और भग में सामुद्ग ; ग्रीवा और पृष्ठवंश में प्रतर ; शिर एवं कटि कपालों में तुन्न सेवनी ; हनुके दोनों पार्श्वों में वायसतुण्ड ; कण्ठनाड़ी आदि में मण्डल ; और कानों के अन्दर श्रोत्र शृङ्गाटकों में शंखावर्त्त सन्धि हैं। (सु० शा० ५ अ०)

विस्तार से आगे कहते हैं।

कोर—नामकी सन्धियां बहुचेष्टाशील हैं। नतोदर अस्थिप्रान्तों में उभार वाले अस्थिभागों के जुड़ने से ये सन्धियां बनती हैं। ये चार प्रकार की हैं ; यथा—खल्लकोर, परस्परकोर, चक्रकोर और सन्दंश कोर। इनमें से—

(१) खल्लकोर[१] मणिवन्ध में और गुल्फ सन्धि में हैं। जिस प्रकार खरल में मूसल चलता है, इस सन्धि का कार्य वैसा ही है।

(२) परस्पर कोर[२]—पर्य्याणक (घोड़ेकी जीन) के आकार वाले अस्थि प्रान्तों में स्थित सन्धिचिन्हों के परस्पर जुड़ने से बनी हुई सन्धिओं का यह नाम है। यथा अंगुष्ठमूल में।

(३) चक्रकोर[३]—केन्द्रवर्त्ती कील का आश्रय करके चक्र जिस प्रकार घूमता है, चक्रकोर सन्धियां भी उसी प्रकार मध्य कील का आश्रय करके घूमती हैं। यथा—'चूड़ावलया' कशेरु से युक्त शिर का 'दन्तचूड़ा' नाम के कशेरु पर घूमना।

(४) सन्दंश कोर—सन्दंश (संडासी) के आकार वाले अस्थि भागों की परस्पर सन्धि है। यथा—कूर्परसन्धि।

उदूखल[४]—नाम की सन्धियां भी बहुचेष्टाशील हैं। ये सन्धियां ऊखल जैसे गहरे अस्थि भागों में अन्य अस्थियों के मुण्डों के मिलने से बनती हैं।

---

१ Condyloid Articulations. २ Reciprocal Reception (Saddle Joint).
३ Tracheloides (Pivot Joint). ४ Enarthrosis (Ball-and-socket Joint).

इनमें मि[illegible] की अस्थियां अपने अपने मुण्डों का आश्रय करके चारों [illegible] यमन, वहिराय यथा—कक्षा और वंक्षण की सन्धियों में ।

[illegible] के उदूखल इन से पृथक् ही हैं; ये स्थिर सन्धि हैं ।

सामुद्ग—नामकी सन्धियां सम्पुट की भांति हैं, अर्थात् सम्पुट (डिबिया) में जैसे किञ्चित् स्पर्श मात्र से जोड़ होता है, उसी प्रकार की जोड़ वाली सन्धि को 'सामुद्ग' कहते हैं। ये अल्प चेष्टाशील हैं। यथा—श्रोणिचक्र, अंसचक्र आदि में, अक्षकास्थि और अंसकूट की सन्धि में, तथा श्रोणिफलकों के त्रिकास्थि के साथ सन्धि में ।

प्रतर[2]—नाम की सन्धि थोड़े चेष्टाशील अस्थिखण्डों के समतल भागों के स्पर्श से बनती हैं। इन सन्धियों में जुड़ने वाले अस्थि खण्ड कुछ तिरछे रहते हैं, इस लिये इनका नाम 'प्रतर' है। मिलने की शैली के भेद से ये तीन प्रकार की हैं। यथा—'चल प्रतर', 'युक्त प्रतर' और 'दृढ़ प्रतर'। इनमें श्लेष्मधरा कलाके व्यवधान से स्थित चल स्वभाव की सन्धियां 'चल प्रतर' हैं। यथा—कर और चरण की कूर्चास्थियों की परस्पर सन्धियां। बीच में रहने वाली स्नायु-रज्जु से अथवा दृढ़ कला द्वारा संयोग होने से युक्त प्रतर सन्धियांबनती हैं। इस प्रकार की सन्धियां प्रकोष्ठास्थियों तथा जंघास्थियों के नलकों के परस्पर संधान में हैं। मध्यवर्ती तरुणास्थि चक्र के द्वारा सजातीय अस्थियों में दृढ़ सन्धान होन पर दृढ़ प्रतर सन्धियां बनती हैं। यथा—पृष्ठवंश में कशेरुओं की परस्पर सन्धि ।

तुन्नसेवनी[3]—परस्पर में प्रवेश करने वाली दन्तुर धारा से बनती हैं। सूत्रके सीवन के समान दीखती हैं—इस लिये इनको 'तुन्नसेवनी' कहते हैं। ये शिर के कपालों में, और कटि कपालों में यौवन से पूर्व देखी जा सकती हैं। ये दो प्रकार की हैं, यथा—"सीमन्त सेवनी" और "ग्रस्त सेवनी"। शिरः कपालों में 'सीमन्त सेवनी' या 'सीमन्त' हैं। सीरिकास्थि की जतूकास्थि[4] के साथ मिलने को सन्धि 'ग्रस्त सेवनी' है।

वायसतुण्ड—नाम की सन्धि अधोहनु मुण्डों के साथ शंखास्थियों में स्थित हनुसन्धिस्थालकों के स्पर्श मात्रसे मिलने पर बनती हैं। इस के

---

१ Gomphosis. २ Arthrodia. ३ Sutures. ४ Schindylosis.

द्वारा मुख खोलने और बन्द करने की क्रिया होती है। यह [illegible]न्धि के ही खल्लकोर भेद का युग्म रूप है। इसका कोर सन्धि में अन्त[illegible] है।

मण्डल और शंखावर्त्त सन्धियां क्रम से श्वास मार्ग और [illegible] की तरुणास्थियों की परस्पर सन्धि में हैं।

संक्षेप से सन्धियों को याद करने के लिये ये श्लोक हैं।

> "अचेष्टास्तुन्नसेवन्यः सीमन्त-प्रस्तभेदतः।
> शिरोऽस्थिषु समादिष्टा दशनोदूखलास्तथा॥
> अल्पचेष्टास्तु सामुद्गाः श्रोणिचक्रांसचक्रयोः।
> प्रतराख्त्रिविधास्त्वन्ये पृष्ठवंशादिषु स्थिताः॥
> अथात्र बहुचेष्टाः स्युः कोराश्चोदूखलास्तथा।
> आद्याश्चतुर्था गुल्फादिष्वन्ये कक्षादिगोचराः॥
> प्राचां वाग्सतुण्डो यः स युग्मः कोर एव हि।
> शङ्खावर्त्ता मण्डलाश्च तरुणास्थिगताः स्मृताः॥" प्र० शा०)

यहां पर जिन चेष्टाशील सन्धियों का वर्णन किया है, वे स्नायुजालों से बंधी हुई हैं। इनमें चार विशेषतायें देखनी चाहियें। यथा - अस्थियों के सन्धेयांश (मिलने वाले भाग), सन्धि की मध्यवर्त्ती तरुणास्थियाँ, स्नायुजाल और श्लेष्मधरा कला। इनमें—

(१) अस्थियों के सन्धेयांश—दृढ, चिकने अस्थियों से बने हुवे हैं। ये मिलने के समय पतले तरुणास्थि पत्रकों से मढ़े रहते हैं।

(२) तरुणास्थियां—सन्धि के बीच में दो प्रकार से स्थित हैं। एक 'सन्धिवेष्टन' और दूसरी 'सन्ध्यन्तराल'। इनमें से 'सन्धिवेष्टन' तरुणास्थियां अस्थियों के सन्धेय भागों को मढ़ कर रखती हैं। 'सन्ध्यन्तराल' नामकी तरुणास्थियां दोनों अस्थि भागों के मध्य में स्थित चक्र, त्रिकोण आदि आकार की अलग ही रहती हैं। इनमें से चक्राकार तरुणास्थियां कशेरुकों के बीच में हैं और त्रिकोण के आकार की तरुणास्थि मणिबन्ध आदि में है। इनमें से कुछ तरुणास्थियां स्थितिस्थापक हैं और स्नायु सूत्रों से प्रधानतः बनी हैं।

(३) स्नायु[१]—सन्धिबन्धनीयों के बनाने वाली, सन के समानके दृढ़ सूत्र हैं। ये तीन प्रकार की हैं, यथा रज्जुरूप, कोषरूप, और कलारूप।

---

१ Ligamentous bands.

इन में से रज्जुला[illegible]स्नायु सन्धि के चारों ओर पृथक् रहती हैं। कोषरूप[1] स्नायु को[illegible] को घेर कर रखती है। इन दोनों प्रकार की स्नायुवों को [illegible] यमन, वहिरा[illegible] जानु[illegible] और वंक्षण आदि सन्धि में देख सकते हैं। कलारूप[2] स्नायु दृढ़कला से वनी होती हैं—जैसे जंघास्थियां के मध्यमें 'जंघान्तराला कला'। प्राचीनों ने कहा है—

> "स्नायूश्चतुर्विधा विद्यात्तास्तु सर्वा निवोध मे।
> प्रतानवत्यो वृत्ताश्च पृथ्व्यश्च शुषिरास्तथा॥
> प्रतानवत्यः शाखासु सर्वसन्धिषु चाप्यथ।
> वृत्तास्तु कण्डराः सर्वा विज्ञेयाः कुशलैरिह॥
> आमपक्वाशयान्तेषु वस्तौ च शुषिराः खलु॥
> पार्श्वोरसि तथा पृष्ठे पृथुला[3]श्च शिरस्यथ॥ (सु० शा० ५ अ०)

अर्थात्—"स्नायु चार प्रकारकी हैं। यथा—प्रतानवती, वृत्त, पृथुल और शुषिर। इन में से 'प्रतानवती' (शाखा-प्रशाखावाली) स्नायु शाखाओं में तथा सब सन्धियों में; वृत्त (गोल) 'स्नायु' कण्डराओं में; 'शुषिर स्नायु' (अंगुठी के आकार की) स्नायु वस्ति आमाशाय तथा पक्वाशय में; 'पृथुल' (चौड़ी) स्नायु पार्श्व, उर, पृष्ठ और शिर में हैं।"

इन में से 'प्रतानवती' स्नायुवों का ही वर्णन यहां किया जायगा। शेषोक्त स्नायुवों का वर्णन पेशी वर्णन में और आशयों के वर्णन में मिलेगा।

वर्ण भेद से स्नायु दो प्रकार की हैं—शुभ्र और पीत। इन में से शुभ्र-स्नायु प्रायः सब जगह हैं। केवल 'ग्रीवाधरा स्नायुरज्जु' और कशेरुचक्रों के मध्यवर्त्ती चक्राकार स्नायु पीतवर्ण हैं। इन में स्थितिस्थापक[4] स्वभाव के तन्तु अधिक होती हैं।

(४) श्लेष्मधरा[5] कला—चेष्टाशील सन्धियों के अन्दर का आवरण वनी हुई कोषरूपा झिल्ली हैं। ये चारों ओर सन्धेय भाग में चिपकी रहती है। इस के अन्दर निरन्तर श्लेषक[6] श्लेष्मा का स्रवण होता रहता है, जिस से

---

१ Capsular ligaments. २ Inter-osseus membranes. ३ Apponeurosis. ४ Yellow Elastic fibrous tissue. ५ Synovial membrane. ६ Synovia.

अस्थियों के मिलने वाले भाग घिस नहीं जाते और सन्धि [illegible]नानाप्रकार की चेष्टायें सुगमता से होती हैं। कहा भी है—

"स्नेहाभ्यक्ते यथा त्वक्षे चक्रं साधु प्रवर्त्तते।
सन्धयः साधु वर्त्तन्ते संश्लिष्टाः श्लेष्मणा तथा॥" (सु० शा० अ०)

अर्थात्—"जिस प्रकार पहियों के वीच में स्थित अक्ष (धुरी) के तेल से चिकनी होने पर पहिया भली प्रकार घुमता है; उसी प्रकार श्लेष्मा से चिकने होने पर संधियां भी सम्यक् प्रकार से चेष्टा शील होती हैं।"

यह श्लेष्मधरा कला तीन प्रकार की है; यथा—'सन्ध्यन्तरीया', 'कण्डरानुगा'[1] और 'त्वाची'[2]। इन में से सन्ध्यन्तरीया कला सन्धि के अन्तःस्थित अस्थि भागों में लगी होती है, और ऊपर में स्नायुकोष से ढंपी रहती है।

'कण्डरानुगा कला' आने जाने वाली कण्डराओं को घेरकर रहती है। 'त्वाची' कला जिन अस्थि भागों के ऊपर केवल त्वचा मात्र हैं, उनमें त्वचा और अस्थि यों के वीच में कलासम्पुट (Bursa) रूप से रहती है। इनमें से 'सन्ध्यन्तरीया' कला का ही इस अध्याय में समावेश किया जायेगा; औरों का वर्णन यथास्थान आयेगा। स्थिर सन्धियों में श्लेष्मधरा कला का प्रयोजन न होने से उसका अभाव होता है।

इस प्रकार सन्धियों का सामान्य रूप से वर्णन हो गया, इसके आगे विस्तारसे कहंगे।

द्वितीय अध्याय।

सन्धि विशेष विज्ञानीय।

सन्धियों का सामान्य ज्ञान होने पर भी सन्धियों का स्थान, रूप, चेष्टा आदि समझने के लिये एवं सन्धिभ्रंश[3] आदि के प्रतिकार के लिये इनका विशेष ज्ञान आवश्यक है। इस लिये अव सन्धियों का विभाग कर के संक्षेप से वर्णन करते हैं।

वर्णन की सुगमता के लिये प्रथम शिर की सन्धियों का वर्णन किया जायेगा। शिरःसन्धियों में अधोहनुसन्धि और शिरोग्रीवसन्धि,—इन दो

---

१ Tendon sheaths. २ Bursae. ३ Dislocation.

चेष्टाशील स[illegible]ों का ही वर्णन करना है। शेष शिरःसन्धियां 'सीमन्त' आदि [illegible] क[illegible]न सम्पूर्ण करोटि के वर्णन में आ चुका है। [illegible]यमन, वहिरा[illegible] [illegible]त् पृष्ठवंश, उर, कटि, और शाखाओं की सन्धियों का क्रम से [illegible]र्णन होगा।

शिरःसन्धियों में

अधोहनु सन्धान

अधोहनु अपने दोनो मुण्डों के द्वारा शंखास्थियों में स्थित दो स्थालकों से मिलता है (५० वां चित्र)। यह युग्मकोर[1] नाम की बहुचेष्टाशील सन्धि है। प्राचीनों के मत से यही 'वायसतुण्ड' सन्धि है। अधोहनु इसी का आश्रय करके विशेषतः उपर नाचे और थोडा सामने-पीछे तथा पार्श्वों में चेष्टाशील होता है।

प्रत्येक हनु मुण्ड के सामने शंखास्थि के गण्ड प्रवर्धन के मूल में "सन्ध्यर्वुद" नामका एक उभार है; पीछे कर्णकुहर की पूर्व परिधि है;

[५० वां चित्र—अधोहनुसन्धि]

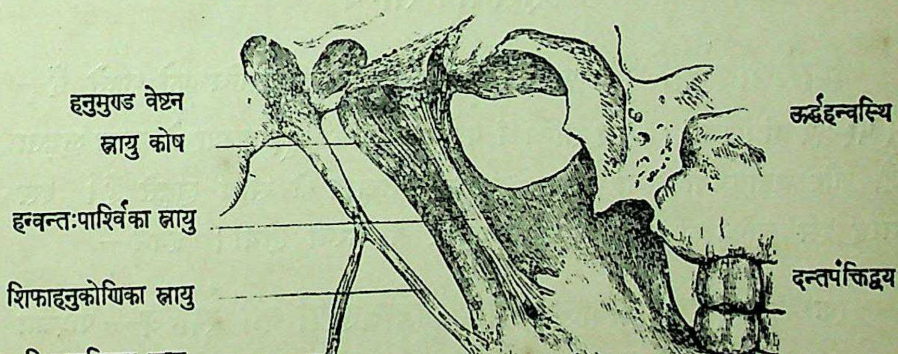

[मध्य रेखा में छेदन कर के वामार्द्ध का अन्तः पृष्ठ यहां दिखाया है।]

---

1 Double Condyloid Articulations.

ऊपर की ओर 'शंखालिका' नाम की धारा हैं। हनु म[illegible] इन क द्वारा प्रत्येक पार्श्व में अपने स्थालक पर भली प्रकार नियन्त्रित [illegible] है।

प्रत्येक हनुमुण्ड सन्धि में दर्शनीय विशेष ये हैं :—

(१) <u>हनुमुण्डवेष्टन स्नायुकोष</u>[1]—इनके अन्दर स्थालक और हनुमुण्ड—इन दोनोंके बीच में तरुणास्थि चक्र हैं, और उसके दोनों ओर श्लेष्मधर कलापुटक रहते हैं। सन्धेय भाग तरुणास्थि से मढे हुये हैं।

(२) <u>हनुमुण्डबाह्या स्नायु</u>[2]—शंखास्थि के सन्ध्यर्वुद से लेकर हनुमुण्ड के मूल तक तिरछी बंधी हुई है।

(३) <u>हन्वन्तःपार्श्वगा स्नायु</u>[3]—जतूकास्थि की वृहत्पक्षति के कोण से हनुकूट के आन्तरतल में दन्तमूलविवर के पार्श्वतक तिरछी बंधी हुई है।

(४) <u>शिफाहनुकोणिका स्नायु</u>[4]—शंखास्थि के शिफाप्रवर्धन से हनुकोण तक बंधी हुई है।

ये सब स्नायु पेशीयों के साथ मिल कर प्रत्येक पार्श्व में अधोहनुसन्धि को दृढ़ भाव से धारण करती हैं।

शिरोग्रीव सन्धि

शिरोग्रीव सन्धि[5]—पृष्ठवंश के साथ शिर की सन्धि को कहते हैं—(५१-५२ वां चित्र)। इस सन्धि में पश्चिम कपाल चूड़ावलया के साथ जुड़ता है, और चड़ावलया तथा पश्चिम कपाल दन्तचूड़ा के साथ जुड़ते हैं। इस तरह इस सन्धि की व्याख्या तीन प्रकार से करनी होगी। इनमें—

(क) **पश्चिम कपाल और चूड़ावलया की सन्धि**[6]—पश्चिम कपाल की मल कोटियों के सन्धान देश में कोरसन्धि है। अवशिष्ट भाग में 'प्रतर' नाम की सन्धि है। यहां पर 'कपालमलचूड़िका' नाम की छै स्नायु हैं। यथा—

---

१ Capsular Ligament of the Temporo-mandibular Articulation. २ External Lateral Lig. ३ Internal Lateral Lig. ४ Stylo-mandibular. Lig. ५ Cranio-vertebral Articulations. ६ Occipito-atlantal Articulation.

[...वां चित्र—शिरोग्रीव सन्धि (सामने से)]

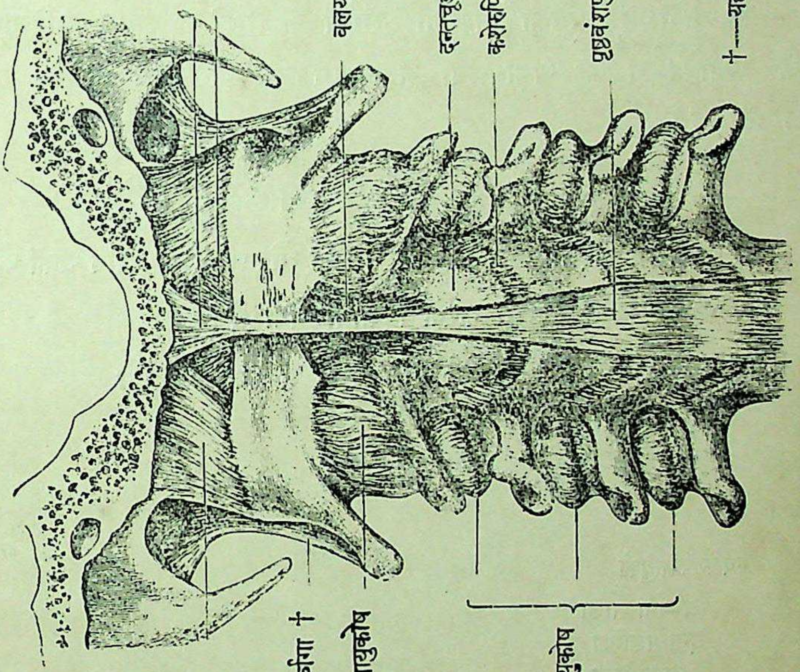

†—यह चिन्ह स्नायु का द्योतक है ।

कपालमूलचूड़िका अग्रिमा[1]—पश्चिम कपालास्थि का जो [illegible] भाग महा-विवर की पूर्व परिधि को बनाता है, उसको चूड़ावलया हनुवजि[illegible]थ [illegible] है। योजन करने वाली स्नायु है।

कपालमूलचूड़िका पश्चिमा[2]—पश्चिम कपालास्थि का जो अंश महाविवर की पश्चिम परिधि को बनाता है, उस को चूड़ावलया के शेषार्द्ध से मिलाती है।

इन दोनों स्नायुवों को दोनों पार्श्व से भेद करके दो "मस्तिष्कमातृका" धमनीयां नाड़ीयों के साथ महाविवर में प्रविष्ट होती हैं।

दो कपालमूलचूड़िका पार्श्वगा[3]—इन में से प्रत्येक स्नायु पश्चिमकपाल के मन्याप्रवर्द्धन को चड़ावलया के वाहुप्रवर्द्धन के साथ प्रत्येक पार्श्व में जोड़ती है।

५२ वां चित्र—शिरोग्रीव सन्धि (पीछे से)

[यह चित्र पश्चिम कपाल के उत्तरार्द्ध को और ग्रीवा के कशेरु चक्रों को छेदन करके दिखाया गया है]

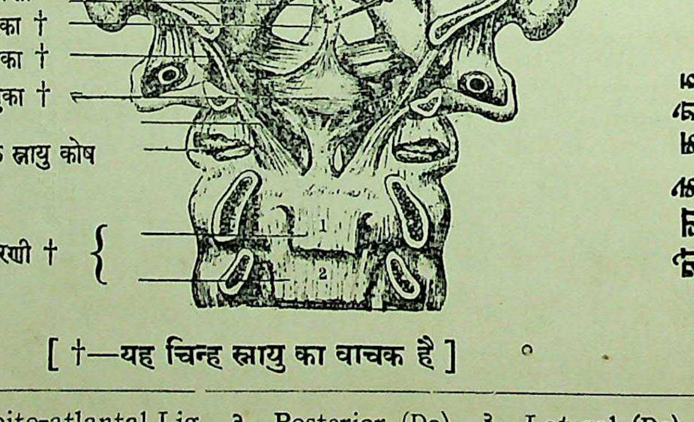

[†—यह चिन्ह स्नायु का वाचक है]

१ Anterior Occipito-atlantal Lig. २ Posterior (Do). ३ Lateral (Do).

दो कपाल[illegible]-चूड़िक स्नायुकोष[6]—दोनों पश्चिम कपाल की मूल कोटियों को [illegible] स्थित दोनों स्थालकों में चारों ओर से घेर कर धारण [illegible]यमन, वहिर [illegible] इन के अन्दर दो श्लेष्मधर कलापुटक दिखाई देते हैं।

(ख) **चूड़ावलया और दन्तचूड़ा की सन्धि**[1]—सामने के भाग में यह 'चक्रकोर' नाम की सन्धि है। यहां पर दन्त चूड़ा के दन्त प्रवर्धन को मध्य कीलरूप से आश्रय करके शिर के साथ संयुक्त चूड़ावलया कशेरुका घूमती है। इस के सिवाय अन्य भाग में यह सन्धि 'प्रतर' नाम की है। इस में पांच स्नायु हैं; यथा—

वलयदन्तिका पुरोगा[2]—कशेरु पिण्डों को सम्मुख से मिलाने वाली।

वलयदन्तिका पश्चिमा[3]—कशेरु चक्रों को पीछे से मिलाने वाली।

वलयदन्तिक स्नायुकोष[4]—दो हैं। ये चूड़ावलया और दन्तचूड़ा के सन्धि-प्रवर्धनों को परस्पर संयुक्त करते हैं। इनके अन्दर दो श्लेष्मधर कलापुटक रहते हैं।

स्वस्तिकरज्जुका स्नायु[5]—दो अंश से बनी हुई है। यह पहिला तथा दूसरा ग्रीवाकशेरुचक्र के अन्दर रहती है। दोनो अंशो में एक अनुप्रस्थांश (आड़ा) और दूसरा अनुलम्बांश (लम्बा) है। इस का अनुप्रस्थांश चूड़ावलया के भीतर के कलायकों में आड़ा लगा हुवा है, यह दन्तचूड़ा के दन्तको चूड़ावलया के साथ सटा कर रखता है। दूसरा अनुलम्बांश ऊपर पश्चिम-कपाल के मूल में और नीचे दन्तचड़ा के पिण्ड में जुड़ता है। इस प्रकार से बनी हुई स्वस्तिक स्नायु से दन्तचूड़ा और चूड़ावलया की सन्धि आगे और पीछे खूब दृढ़ भाव सेबांधी जाती है। इस सन्धि में दन्तप्रवर्धन के सम्मुख और पश्चात् एक एक श्लेष्माधर कलापुटक है, जिस से यह सन्धि भीतर से खूब चिकनी रहती है।

(ग) **पश्चिमकपाल और दन्तचूड़ा की सन्धि**[6] में परस्पर स्पर्शका अभाव होने पर भी परस्पर सम्बन्ध करने वाली चार स्नायु देखने योग्य हैं, जो कि सुषुम्ना विवर के अन्दर छिपी रहती हैं। यथा—

---

१ Atlanto-axial Articulation. २ Anterior Atlanto-axial Lig. ३ Posterior (do). ४ Capsular (do). ५ Transverse Lig. ६ Occipito-axial Articulation.

कपाल-दन्तचूड़िका[१]—नाम की स्नायु पश्चिम कपाल के मूल को दन्तचूड़ा के पिण्ड से संम्बद्ध करती है। और यह दन्तप्रवर्धन को हनुव[illegible] की ओर बांधे रखती है, इस प्रकार से यह महाविवर में सुषुम्ना [illegible] अच्छी रक्षा करती है।

दन्तिशिखरिका[२]—नाम की स्नायु नीचे से दन्तचूड़ा के दन्तप्रवर्धन के शिखर में और ऊपर की ओर पश्चिम कपाल के मूल में बंधी हुई है।

दन्तपक्षिका वा मध्यरज्जु[३]—नाम की स्नायु दो हैं। ये दन्त प्रवर्धन के दोनो ओर पंख की भांति लगी हुई हैं। पश्चिम कपाल की मूलकोटियों की जड़ में बंधी रहकर ये दन्त प्रवर्धन की गति को नियमित करती हैं।

ये सब शिरोग्रीवसन्धायिनी स्नायु हैं। इनके अतिरिक्त **ग्रीवाधरा**[४] नाम की एक बड़ी स्नायु रज्जु है, जो कि पश्चिम कपाल के पश्चिमार्बुद से और पश्चिमालिका से उत्पन्न होकर सातवीं ग्रीवा कशेरुका के पृष्ठकण्टक के अन्त तक लगती है। यह स्थितिस्थपकता गुण के कारण विना प्रयत्न के ही ग्रीवा को सरल खड़ी रखती है। यह साधारणी पृष्ठकण्टकधरा स्नायु के साथ जुड़ी है।

पृष्ठवंश की सन्धियां।

कशेरुवों के उपर ऊपर चिने होने से पृष्ठवंश बनता है। इनकी सन्धि[५] कशेरुवों के अपने सजातीय पांच अवयवों में परस्पर होती है। यथा—

[१] कशेरु पिण्डों में

[२] कशेरु चक्रों में,

[३] सन्धि प्रवर्धनों में,

[४] पृष्ठकण्टकों में,

[५] वाहु प्रवर्धनों में

इन में कशेरु पिण्डों की परस्पर सन्धियां प्रायः स्थिर हैं। कशेरु चक्रों की परस्पर सन्धियां 'युक्तप्रतर' नाम की और अल्प चेष्टाशील हैं। इन में भी

---

१ Occipito-axial Ligament. २ Suspensory Ligament. ३ Check Ligaments. ४ Ligamentum Nuchæ ५ Vertebral Articulations.

ग्रीवा और कटि कशेरुवों की सन्धियां कुछ अधिक चेष्टाशील हैं। पृष्ठवंश में अन्तरायमन, वहिरायमन और पार्श्वविवर्त्तन—ये तीन प्रकार की चेष्टायें मुख्य रूप से दिखाई देती हैं। इन में—

[१] कशेरुपिण्डों को परस्पर जोड़ने वाली स्नायु तीन प्रकार की हैं। यथा—

(क) कशेरुपुरस्त्या साधारणी[१]—नामकी स्नायु सब कशेरुपिण्डों के सम्मुख भागों को जोडती है। यह दृढ़ स्थूल और लम्बी पट्टी के आकार की है, और समग्र पृष्ठवंश को धारण करती है।

(ख) कशेरुपश्चिमा साधारणी[२]—नाम की स्नायु सब कशेरु पिण्डों के पीछे जुडती है। इसका रूप प्रथम की भांति है। कशेरु चक्रों को काट डालने पर सुषुम्ना विवर के अन्दर सामने की सीमा में यह स्नायुपट्टिका दिखाई देती है।

(ग) कशेरु पिण्डान्तराला[३]—यह स्नायु दो दो कशेरु पिण्डों के बीच में रहती है और कोमल, स्थितिस्थापक तरुणास्थिमय चक्रों से बनी है।

[२] कशेरुचक्रों को परस्पर मिलाने वाली स्नायु स्थितिस्थापकता गुण युक्त एवं पीत वर्ण की होती हैं। इन का नाम कशेरुचक्रान्तराला[४] है।

[३] सन्धि प्रवर्धनों का परस्पर सन्धान इनको घेरने वाले स्नायुकोषों[५] से होता है। प्रत्येक कशेरु के चार सन्धिप्रवर्धन हैं—दो ऊर्द्ध्वमुख और दो अधोमुख। इन में से ऊर्द्ध्वमुख दो सन्धिप्रवर्धनों की सन्धि ऊपर के कशेरु के अधोमुख दो सन्धिप्रवर्धनों से होती है। प्रत्येक स्नायुकोष में एक एक 'श्लेष्मधर कलापुटक' होता है।

[४] पृष्ठकण्टक-सन्धायिनी स्नायु दो प्रकार की हैं। यथा—पृष्ठकण्टकधरा साधारणी और कण्टकान्तराला। इन में—

(क) पृष्ठकण्टकधरा साधारणी[६]—नाम की स्नायु प्रायः दृढ़ रज्जु जैसी है। यह सब कशेरु वों के पृष्ठकण्टकों को परस्पर मिलाती है। यह पश्चिमकपाल

---

१ Anterior Common Ligaments. २ Posterior Common Lig. ३ Intervertebral Ligaments & Discs. ४ Ligamenta sub-flava. ५ Articular Capsules. ६ Supra-spinous Ligaments

के पृष्ठ में स्थित अर्बुद से आरम्भ करके त्रिकास्थि के पृष्ठ कण्टक तक प्रत्येक कशेरु के पृष्ठकण्टक से बंधी रहती है। इस के ऊर्द्धभाग का नाम "ग्रीवाधरा स्नायुरज्जु" है जो कि पहिले कह चुके हैं।

(ख) कण्टकान्तराला[१]—नाम की स्नायु अनेक हैं। ये पृष्ठ कण्टकों के बीच के स्थानों को भरने वाली एवं बहुत पतली कला से बनी होती हैं। ये पृष्ठ और कटि के कशेरुवों मे विशेषरूप से देखी जाती हैं।

[५] बाहुप्रवर्धनों को परस्पर मिलाने वाली स्नायुवों का नाम बाहुप्रवर्धनान्तराला[२] है। ये ग्रीवा और कटि के कशेरुवों में पतली कला से बनी हैं परन्तु पृष्ठ के कशेरुवों में प्रायः रज्जु के समान दृढ़ होती हैं।

पर्शुका-पृष्ठसन्धि।

पर्शुका-पृष्ठ सन्धि या कशेरु-पशुका सन्धि[३]—पीठ के कशेरुवों के साथ पर्शुकाओं के मिलने से बनती हैं (५३ वां चित्र)। ये दो प्रकार की हैं—पर्शुकामुण्ड की कशेरु पिण्डों के साथ सन्धियां और पर्शुकार्बुदों की कशेरुवों के बाहुप्रवर्धनों के साथ सन्धियां। इन में—

[१] पर्शुकामुण्डों की कशेरु पिण्डों के साथ सन्धियां 'चलप्रतर' नाम की हैं। इन में प्रथमा, दशमी, एकादशी, और द्वादशी पर्शुका की सन्धि पार्श्वस्थ कशेरुपिण्डों के एक एक पूर्णस्थालक से होती है। इन को बांधने वाली स्नायु तीन प्रकार की हैं। यथा—

(क) अग्रिमा—त्रिशूलाकारा[४]। इनकी एक एक शाखा ऊपर और नीचे के कशेरुपिण्डों में और मध्य की शाखा कशेरुपिण्डों के मध्यस्थ तरुणास्थि चक्र में बंधी रहती है।

(ख) कोषाकारा[५]—ये स्नायु प्रत्येक पर्शुकामुण्ड को घेर कर स्थालक की परिधि के चारों ओर लगी हुई हैं। इन के भीतर श्लेष्मधरा कला है।

---

१ Inter-spinous Ligaments. २ Inter-transverse Ligaments. ३ Costo-vertebral Articulations. ४ Anterior Costo-vertebral or Stellate Lig. ५ Costo-vertebral Capsular Lig.

(ग) सन्ध्यन्तरीया[१] स्नायु—ये छोटी छोटी स्नायु पर्शुकामुण्डों में लगी रहती हैं।

[२] पर्शुकार्वुदों की कशेरुवों के वाहुप्रवर्धनों के साथ सन्धियां 'युक्तप्रतर'[२] नाम की हैं। इनको मिलाने वाली स्नायु चार प्रकार की हैं। यथा—

(क) पर्शुकावाहुका अग्रिमा[३]—ये स्नायु पर्शुका-ग्रीवाओं को कशेरुवों के वाहुप्रवर्धनों से मिलाती हैं। इनको भेद करके पर्शुकानुगा सिरा, धमनी और नाड़ीयां छाती के अन्दर जा कर फैलती हैं।

(ख) पर्शुकावाहुका मध्यमा[४]—ये स्नायु पर्शुका के कोणों को कशेरुवों के वाहुप्रवर्धनों के अग्र भाग से मिलाती हैं।

(ग) पर्शुकावाहुका पश्चिमा[५]—ये स्नायु कशेरुवों के वाहुप्रवर्धनों के अग्रभागों से आरम्भ करके पर्शुकावुर्द तक लगी हुई हैं।

(घ) अर्बुदकोषिका[६]—ये स्नायु पर्शुकार्बुदों को कशेरुवों के वाहुप्रवर्धनों में स्थित स्थालकों से मिलाती हैं, और चारों ओर से घेर कर रखती हैं। इनके भीतर श्लेष्मधरा कलायें हैं।

५३वां चित्र—पर्शुका-पृष्ठ सन्धि।

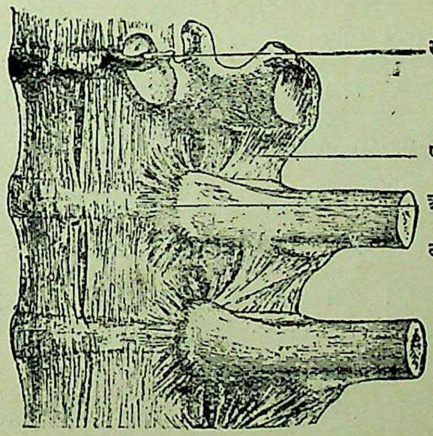

[† इस चिन्ह से स्नायु समझना चाहिये]

---

१ Inter-articular Lig. २ Costo-Transverse Articulation. ३ Anterior Costo-Transverse Lig. ४ Middle (do). ५ Posterior (do). ६ Capsular.

पर्शुका-पूर्वसन्धि।

पर्शुका-पूर्वसन्धि[१] या उरःपर्शुका सन्धि पर्शुका, उपपर्शुका और उरःफलक के मिलने से होती है। ये चार प्रकार की हैं। यथा—

(१) पर्शुकाओं की उपपर्शुकाओं के साथ सन्धि,

(२) उपपर्शुकाओं की उरःफलक के साथ दोनों ओर की सन्धि,

(३) उपपर्शुकाओं की परस्पर सन्धि,

(४) उरः फलक के भिन्न भिन्न खण्डों की परस्पर सन्धि

इनमें—

(१) सव (वारह) पर्शुकाओं की सव (वारह) उपपर्शुकाओं के साथ स्थिर सन्धि हैं। ये पर्शुकाओं के अग्रभाग में स्थित स्थालकों ऊपर उपपर्शुका मूलों के दृढ़ रूपसे जुड़ने से वनती हैं। यह संयोग पर्शुका को घेरने वाली अस्थिधरा नामकी कलाके उपपर्शुकाओं के ऊपर तक आ जाने से होता है।

(२) उपपर्शुकाओं की उरः फलक के साथ सन्धियां प्रत्येक पार्श्व में सात हैं। पहली से ले कर सातवीं उपपर्शुका तक इनकी सन्धि उरःफलक से होती है। इनमें प्रथम उपपर्शुका की सन्धि सर्वथा स्थिर है, शेष सन्धियों में श्लेष्मधर कलापुटक हैं।

प्रत्येक सन्धि के चारों ओर उपपर्शुका और उरःफलक को मिलाने वाली चार स्नायु हैं। यथा—अग्रिमा, पश्चिमा, कोषाकारा, और सन्ध्यन्तरीया। इनका स्पष्टीकरण इनके नाम से ही हो जाता है।

(३) उपपर्शुकाओं की परस्पर सन्धि—उपपर्शुकान्तराला नाम के कुछ स्नायुसूत्रों से होती है। ये सूत्र पांचवी से लेकर दशवीं उपपर्शुका के सन्मुख में देखे जा सकते हैं। इनमें पांचवीं छठी से तनिक जुड़ती है, छठी से दसवीं तक सव उपपर्शुकायें आपस में दृढ़ता से जुड़ी हैं।

ग्यारहवीं और बारहवीं पर्शुकायें आगे में उपपर्शुकाओं से मिली होने पर भी सन्मुख में विमुक्ताग्र अर्थात् किसी से नहीं जुड़ी हैं। अतः इनकी संज्ञा "विमुक्ताग्रा" है, यह कह चुके।

---

१ Articulations of the Cartilages of the Ribs with the Strnum.

५४वां चित्र—पर्शुका और उरकी सन्धि।

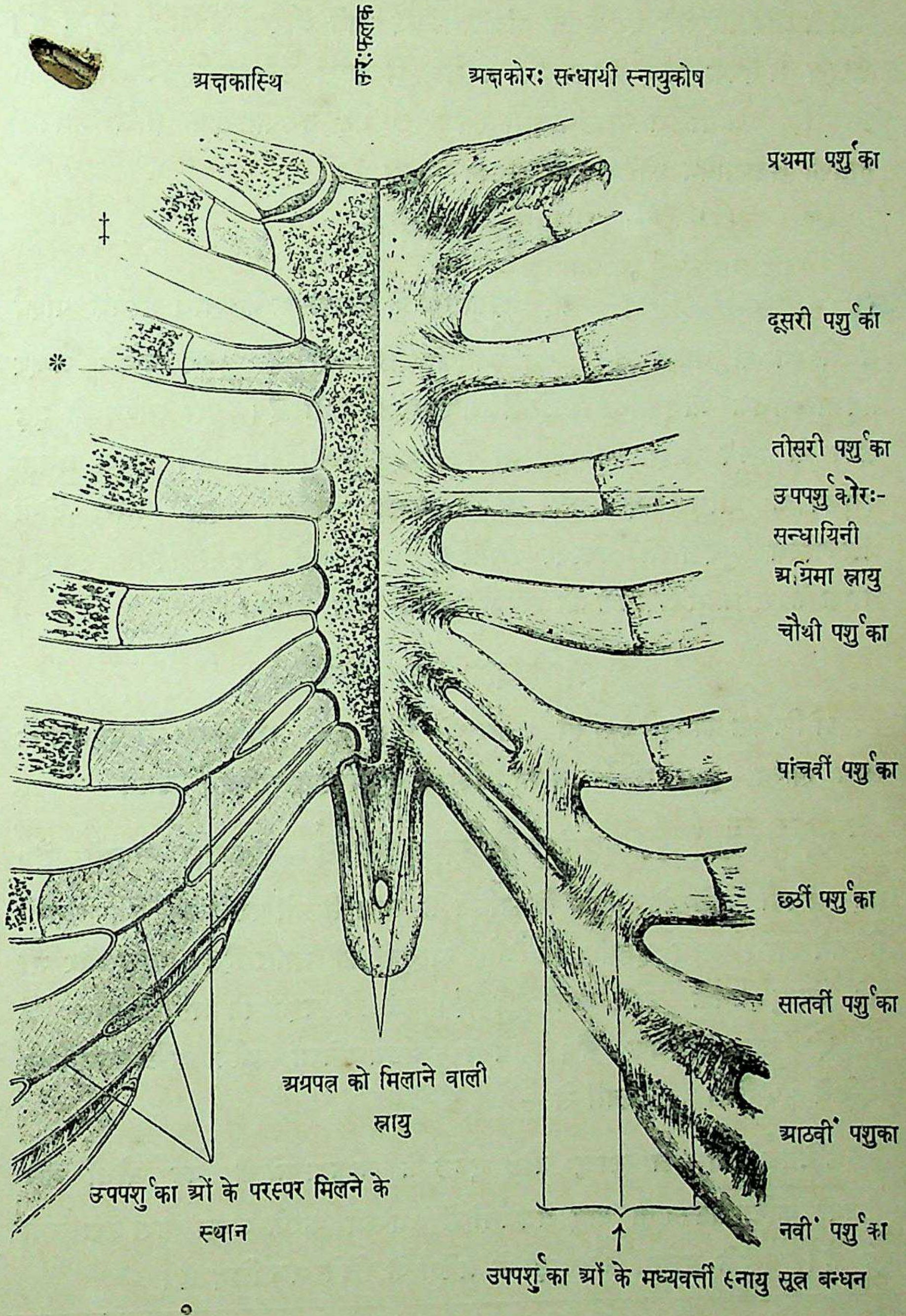

‡ उरःफलक और उपपर्शुका की सन्धि। * उरः फलक के खण्डों के मध्यस्थ सन्धि।

(४) उरःफलकान्तरीय सन्धि—ग्रैवेयक, मध्यफलक और अग्रपत्र नामके तीन खण्डों के परस्पर दृढ़ मिलने से होती है। यहां पर चार स्नायु हैं, यथा—अग्रिमा और पश्चिमा उरःफलक संयोजनी, ये आगे और पीछे की दो स्नायु हैं। तीसरी ग्रैवेयक और मध्यफलक के मध्य में स्थित उरःफलकान्तराला [illegible] की स्नायु है। चौथी अग्रपत्रसंयोजनी स्नायु है, यह उरःफलक के नीचे 'अग्रपत्र' नामकी तरुणास्थि को बांधकर लटका रखती है।

अक्षकोरःसन्धि।

अक्षकोरःसन्धि[१]—यह अक्षकास्थि के उरःफलक के साथ प्रत्येक पार्श्व में मिलने से बनती है। यह स्नायुकोष से बनी है, और उसके अन्दर तरुणास्थिचक्र और मध्य में दोनों ओर कला होती है। इस सन्धि को दृढ़ करने के लिये यहां पर और भी दो स्नायु देखी जाती हैं। एक प्रथम पर्शुका के साथ अक्षक को बांधने वाली चकोर स्नायु, दूसरी दोनों अक्षकास्थि मुण्डों को परस्पर मिलाने वाली आड़े रूप से स्थित स्नायु। अक्षक के साथ अंसफलक का सन्धान आगे कहा जायगा।

श्रोणिचक्र की सन्धियां।

श्रोणिचक्र की सन्धियां दो प्रकार की हैं। एक—श्रोणिचक्र की पृष्ठवंश के साथ सन्धि, दूसरी श्रोणिचक्र की अस्थियों की परस्पर सन्धि। इनमें---

श्रोणिचक्र की पृष्ठवंश के साथ सन्धि[२]—दृढ़प्रतर नामकी है। यह पांचवीं कटिकशेरुका के त्रिकास्थि के साथ मिलने पर बनती हैं। इनको मिलाने वाली स्नायु पृष्ठवंश की और स्नायुवों की भाति हैं। परन्तु और भी कई स्नायु उनके साथ लगी हुई हैं। जैसे यहां पर प्रत्येक पार्श्व में दो दो स्नायु अधिक हैं। यथा—कटिजघनिका और कटित्रिकान्तिका (देखिये ५५ चित्र)। इनमें से—

कटिजघनिका[३]—स्नायुरज्जु चौडे गुच्छे के आकार की है, यह चौथी और पांचवी कटिकशेरुका के बाहु प्रवर्धनों से आरम्भ करके जघन धारा तक लगी हुई है। इसके मध्यमें कटिनाड़ी के प्रवेश के लिये एक छिद्र है।

---

१ Sterno-clavicular Articulation. २ Sacro-vertebral articulation.
३ Ildo-lumbar Ligament.

कटित्रिकान्तिका[1]—दृढ़, त्रिकोण, पट्टिका के आकार की स्नायु है। यह पांचवी कटिकशेरुका के साथ त्रिकास्थि को और श्रोणिफलक में स्थित त्रिक[illegible]लक की परिधि को बांधकर रखती है।

श्रोणिचक्र की अस्थियों की परस्पर सन्धि—चार प्रकार की हैं। यथा—

(१ त्रिकास्थि की जघन कपाल के साथ,

(२) त्रिकास्थि की कुकुन्दरास्थि के साथ,

३) त्रिकास्थि की अनुत्रिक के साथ

(४) भगास्थियों की परस्पर में

[५५ चित्र—श्रोणिचक्रसन्धियां]

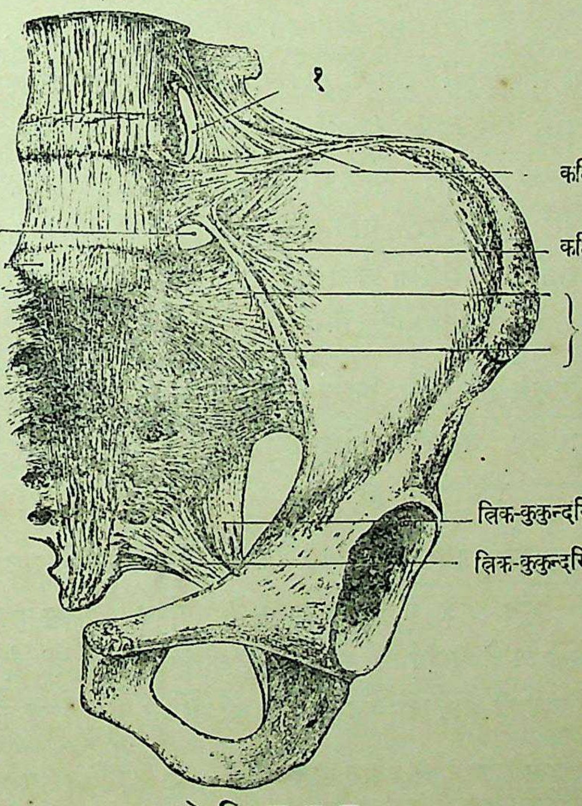

† यह चिन्ह स्नायु का बोधक है। १, २, कटि नाड़ीयों के निकलने के द्वार। वांये आधे भागमें जिस प्रकार की स्नायु दिखाई गयी हैं, दक्षिण आधे भागमें भी उसी प्रकार समझना चाहिये।

---

१ Lumbo-Sacral Ligament.

(१) त्रिक और जघन कपाल की सन्धि[1]—'दृढप्रतर' नाम की है। यह त्रिकास्थि के दोनों पार्श्वों के जघन कपालों से जुड़ने से वनती है। यहां पर जघनकपालस्थ तरुणास्थि पत्र से मढे हुवे 'त्रिकस्थालक' के साथ त्रि[illegible]स्थि के पार्श्वस्थ स्थालक की सन्धि होती है। यहां पर प्रायः श्लेष्मधरा कला नहीं दिखाई देती। परन्तु गर्भिणी के त्रिकस्थालकों में नई श्लेष्मधरा कला वन जाती है, क्यों कि गर्भ के वढ़ने के कारण दोनों श्रोणिफलक कुछ गतिशील वन जाते हैं।

त्रिक और जघन को मिलाने वाली—'त्रिक-जघनिका' नाम की दृढ़ पट्टी के आकार की स्नायु चार हैं। अर्थात् एक एक ओर आगे और पीछे दो दो—अग्रिमा और पश्चिमा नामकी हैं।

(२) त्रिक और कुकुन्दरास्थिकी संयोजनी स्नायु[2] चार हैं—ये प्रत्येक पार्श्व में क्रम से लध्वी और गुर्वी नाम की दो दो हैं। इन के यथास्थान लगने पर क्रम से 'गृध्रसी द्वार' और 'कुकुन्दर द्वार' नाम के दो द्वार वनते हैं। इन में गृध्रसी द्वार से 'गृध्रसी' नाम की नाड़ी और उसकी सहचरी सिरा-धमनीयां आदि और 'शुण्डिका' नाम की पेशी निकलती है। कुकुन्दर द्वार से अन्तःस्था श्रणिगवाक्षिणी पेशी तथा इस के साथ जानेवाली सिरा-धमनी-नाड़ीयां वस्तिगुहा में प्रविष्ट होती हैं।

लध्वी त्रिक-कुकुन्दरसंयोजनी[3] स्नायु—सन्मुख में है। यह पतली और प्रायः त्रिकोणाकार है। यह त्रिक और अनुत्रिक की पार्श्व धारा से आरम्भ करके कुकुन्दरकण्टक तक लगी हुई है। और

गुर्वी त्रिक-कुकुन्दर[4] संयोजनी स्नायु—प्रायः त्रिकोणाकार तथा पीछे की ओर स्थित है। भूल जड़ में जघनकपाल के पश्चिम निम्न-कूट से और त्रिकास्थि के निचले आधे पार्श्व से एवं अनुत्रिकास्थि से जुड़ती है। अग्रिम भाग में कुकुन्दर पिण्ड से और श्रोणिगवाक्ष की सामने की परिधि से जुड़ती है।

३। त्रिकानुत्रिकसन्धा[5]यिनी स्नायु चार हैं। यथा—अग्रिमा, पश्चिमा, और दो पार्श्वगा। यहां पर सन्धि के वीच में तरुणास्थिचक्र दिखाई देता है।

---

१ Sacro-iliac Articulation. २ Sacro-ischiatic Ligaments. ३ Lesser Sacro-sciatic Ligament. ४ Great Sacro-sciatic Ligament. ५ Sacro-coccygeal Ligaments.

अनुत्रिकास्थि चार छोटे कशेरु खण्डों से मिल कर बनती है, यह पहिले कह चुके हैं। स्त्रियों में प्रसव के समय श्रोणिद्वार के विस्तृत होने के कारण इन कशेरुखण्डों की भिन्नता देखी जाती है।

४। भगास्थियों की परस्पर सन्धि[1]—मध्यरेखा में अपने मुण्डों के मिलने से होती है। ऐसे मिले हुवे दोनों खण्डों को प्राचीनों ने 'भगास्थि' नाम दिया है। 'भगपीठ' अथवा 'लिङ्गपीठ' संज्ञा भी कहीं कहीं देखने में आती है। यह सन्धि यद्यपि 'दृढ़प्रतर' है, तथापि गर्भिणी में दोनों भगास्थिमुण्ड कुछ अलग हो जाते हैं।

इस सन्धि को मिलाने वाली 'भगसंयोजनी' नामकी चार स्नायु हैं, जिन के नाम क्रम से—उत्तरा, अधरा, अग्रिमा, और पश्चिमा हैं। सन्धि के बीच में तरुणास्थि चक्र होता है। यहां पर श्लेष्मधरा कला का सर्वथा अभाव है।

अंसचक्र की सन्धियों का वर्णन अंससन्धि में देखिये।

अथ शाखासन्धियां।

शाखायें चार हैं,—दो बाहु और दो सक्थि। प्रत्येक बाहु में सात स्थानों पर सन्धियां हैं। यथा—अंस में, कूर्पर में, प्रकोष्ठान्तराल में, मणिवन्ध में, कर-कूर्च्चास्थियों में, करतल में, और करांगुलियों में। इसी प्रकार प्रत्येक सक्थि में भी सात सन्धियां हैं। यथा—(क्रम से) वंक्षण में, जानु में, जंघान्तराल में, पादसन्धि में, पादकूर्च्चास्थियों में, पादतल में और पादांगुलियों में।

ऊर्ध्वशाखा की सन्धियां।

अंससन्धि।

अंससन्धि—अक्षकास्थि, अंसफलक और प्रगण्डास्थि के मिलने से वनती है। अक्षक और अंसफलक की सन्धिका नाम 'अंसचक्र सन्धि' है। प्रगण्डास्थि और अंसफलक की सन्धिका नाम 'अंसोदूखल सन्धि' या 'वक्षा सन्धि' है। इन सन्धियों को मिलाने वाली स्नायु अनेक हैं। इनमें—

---

१ Symphysis Pubes.

अंसचक्र सन्धि[1]—अक्षकास्थि के वहिःप्रान्त से अंसकूट के अग्रभाग के मिलने से वनती है। यह सन्धि 'चलप्रतर' नाम की है। कहीं कहीं इस सन्धि में तरुणास्थिचक्र भी होता है। इसको जोड़ने वाली चार स्नायु हैं। यथा—'अंसाक्षकवन्धनी'[2]—'उत्तरा' और 'अधरा' नाम की दो स्नायु और 'तुण्डाक्षक-वन्धनी'[3]—'त्रिकोणिका' और 'चतुरस्रा' नाम की दो स्नायु। इन में से प्रथम दोनों स्नायु अंसचक्र को जोड़ती हुई क्रमसे ऊपर और नीचे स्थित हैं। पिछली दोनों स्नायु अंसतुण्ड के पश्चार्द्ध से आरम्भ करके अक्षकास्थि के वाह्य प्रान्त के ऊपर और नीचे के तल में लगती हैं।

[५६ वां चित्र—अंससन्धि]

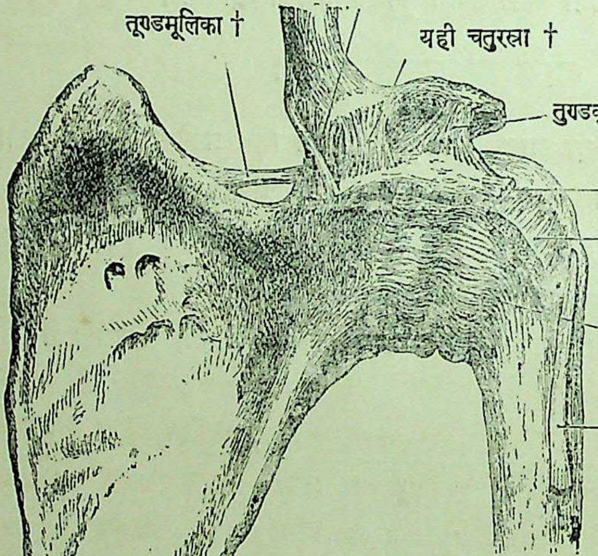

† यह चिह्न स्नायुबोधक है।

---

१ Acromio-clavicular Articulation. २ Superior and Inferior Acromio-clavicular Ligaments. ३ Coraco-clavicular Ligaments (Conoid and Trapezoid).

अंसफलकान्तरीया[1] स्नायु क्रम से 'तुण्डमूलिका'[2] और 'तुण्डकूटिका'[3] नाम की हैं। इन में से प्रथम स्नायु अंसतुण्डमूल में अंसविवर के ऊपर लगी है [illegible] दूसरी अंसतुण्ड के बाहर के आधे भाग से आरम्भ करके अंसकूट के अगले भाग तक लगी है।

अंसोदूखलसन्धि (कक्षासन्धि[4])—प्रगण्डास्थि मुण्ड के साथ अंसपीठ में स्थित ऊखल के आकार वाले स्थालक के मिलने से बनती है। यह स्थालक अपनी परिधि में तरुणास्थिमय स्नायुचक्र के जुड़ने से गहरा हो जाता है। अस्थियों को बांधने वाली स्नायु यहां पर दो हैं यथा—'अंसोदूखलिक स्नायुकोष' और 'तुण्डप्रगण्डिका'। इनमें—

अंसोदूखलिक स्नायुकोष[5] लम्बा और ढीला है। यह ऊपर अंसोदूखलके चारों ओर से नीचे प्रगण्डास्थि की ग्रीवा तक वेष्टन करके है। इस स्नायुकोष में तीन छिद्र हैं जिनमें से तीन कण्डरायें श्लेष्मधरा कला से वेष्टित हो कर सन्धिके भीतर से बाहर जाती हैं। ये कण्डरायें—'अंसान्तरिका' और 'अधरा अंसपृष्ठिका' नामकी दो पेशीयों के प्रान्त और 'द्विशिरस्का' पेशीकी दीर्घ शिखा हैं। इनमें से अन्तिम कण्डरा सन्धि के अन्दर दूर तक घुसी हुई है।

तुण्डप्रगण्डिका[6]—नाम की स्नायु अंसतुण्ड से आरम्भ करके प्रगण्डास्थिके महापिण्डक तक पंहुची है और स्नायुकोष के एक पार्श्व से लगी हुई है।

कक्षासन्धि के चारों ओर निम्न लिखित पेशियां लगी हैं—ऊपर में 'अंसपृष्ठिका उत्तरा'। नीचेमें 'त्रिशिरस्का' की दीर्घ शिखा। अन्तःपार्श्व में 'अंसान्तरिका'। वाह्य पार्श्व में 'अंसपृष्ठिका अधरा' और 'अंसाधरिका लध्वी'। स्नायुकोष के वीच में 'द्विशिरस्का' की दीर्घ शिखा। सम्पूर्ण अंससन्धि और अंसचक्र को ढांप कर 'अंसच्छदा' पेशी।

चेष्टायें—इस सन्धिको आश्रय करके नाना प्रकार की चेष्टायें यथा—आगे, पीछे, अन्दर और बाहर खींचने की होती हैं। यहां पर प्रगण्डास्थि का मुण्ड यथेष्ट घूमता है। इस लिये सव चल सन्धियों में कक्षा सन्धि ही मुख्य है।

---

१ Proper Ligaments of the Scapula. २ Transverse Ligament. ३ Coraco-Acromial Lig. ४ Shoulder-Joint. ५ Capsular Ligament. ६ Coroco-humeral Lig.

कूर्परसन्धि।

कूर्परसन्धि[1] या कफोणिसन्धि प्रगण्डास्थि के साथ प्रकोष्ठास्थियों के मिलने से वनती है। यह सन्धि 'सन्दंश कोर' नाम की है, क्यों कि यह सन्दंश के आकार वाले अन्तःप्रकोष्ठास्थि के दोनों कूटों के अन्दर प्रगण्डास्थि के 'डमरुक' नामक भागके जुड़ने से वनती है। यहां पर वहिःप्रकोष्ठास्थि का कोरमध्य मुण्ड प्रगण्डास्थि के कन्दली भाग पर मिलता है। इस सन्धि के अन्दर दोनों प्रकोष्ठास्थियां भी परस्पर संयुक्त हो कर घुसी हैं।

कूर्पर सन्धि को वांधने वाली स्नायु चार हैं—अग्रिमा, पश्चिमा, वहिः-पार्श्विका और अन्तःपार्श्विका। प्रकोष्ठास्थियों के ऊर्ध्वप्रान्त को परस्पर जोड़ने वाली 'मुण्डवेष्टनिका' नाम की स्नायु आगे कही जाय गी। पहली तीन स्नायु के साथ इस का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनमें—

५७ वां चित्र—कूर्परसन्धि (अन्तःपृष्ठ)

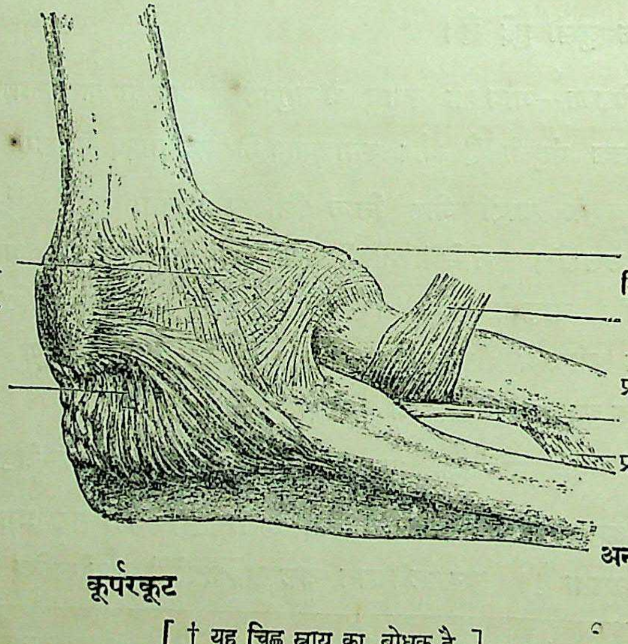

[† यह चिह्न स्नायु का वोधक है]

---

1 Elbow-Joint.

अग्रिमा कूर्परसन्धिवन्धनी—प्रगण्डास्थि के आन्तर अर्बुद और सामने के तल से उत्पन्न हो कर अन्तःप्रकोष्ठास्थि के चञ्चुप्रवर्धन की परिधि में लगती है और मुण्डवेष्टनिका स्नायु से सम्बद्ध है।

पश्चिमा कूर्परसन्धिवन्धनी—प्रगण्डास्थि के कूर्पर खात के समीप से उत्पन्न हो कर अन्तःप्रकोष्ठास्थि की कूर्पर कूट की परिधि में लगती है।

वहिःपार्श्विका—प्रगण्डास्थि के वाह्य अर्बुद से उत्पन्न हो कर मुण्ड-वेष्टनिका स्नायु में बंधी है।

अन्तःपार्श्विका—प्रगण्डास्थि के आन्तर अर्बुद से उठ कर अन्तः प्रकोष्ठास्थि के दोनों कूटों की अन्तः परिधि में लगती है।

इन सब स्नायुवों के परस्पर मिल कर एक हो जाने से एक स्नायुकोष वनता है। परन्तु कूर्परपृष्ठ में कोई स्नायु नहीं है, वह स्थान केवल त्वचा से ही ढंपा हुवा है।

चेष्टायें—कूर्परसन्धि में संकोच, प्रसार, अन्तर्विवर्त्तन और वहिर्विवर्त्तन—ये चार प्रकार की चेष्टायें होती हैं। इन में बाहु का प्रसार की सीमा भुजाके दण्ड की भांति सीधे होने तक है।

श्लेष्मधरा कला—कूर्पर सन्धि के अन्दर एक श्लेष्मधरा कला है, जिसकी एक शाखा प्रकोष्ठास्थियों की ऊर्द्ध्व सन्धिके अन्दर तक पहुंची हुई है।

प्रकोष्ठान्तरीय सन्धि।

प्रकोष्ठास्थियों की परस्परसन्धि[१]—तनिक चेष्टाशील है। यहां ऊपर और नीचे के प्रान्तों में 'कोर' नामकी सन्धि तथा मध्य में 'प्रतर' नामकी सन्धि है। ये सन्धियां तीन स्थानों में दीखती हैं—अर्थात् ऊपर, नीचे और मध्यमें।

उर्ध्वप्रकोष्ठसन्धि—वहिःप्रकोष्ठास्थि का मुण्ड अन्तःप्रकोष्ठास्थि के 'चक्रनेमि' खात के साथ जुड़ने से बनती है। इसको घेरने वाली स्नायु

१ Radio-ulnar Articulations.

मुण्डवेष्टनिका नामकी है, जो कि वहिःप्रकोष्ठास्थि के मुण्ड को घूमने देती है। यहां पर नीचे में प्रकोष्ठतिरश्चीना नामकी और भी एक तिरछी स्नायु लगी है।

अधःप्रकोष्ठसन्धि—यहां अन्तःप्रकोष्ठास्थि का 'मणिमुण्ड' वहिः-प्रकोष्ठास्थि के अधःप्रान्त के पार्श्व से जुड़ता है। इस का बन्धन मणिवन्ध-संन्धि के वीचमें रहने वाली त्रिकोण तरुणास्थि से तथा आगे और पीछे की स्नायु द्वारा होती है। इन स्नायुवों का नाम 'प्रकोष्ठाधरीया' है।

मध्यप्रकोष्ठसन्धि—दोनों प्रकोष्ठास्थियां मध्य देशमें अलग ही रहती हैं परन्तु वीच में 'प्रकोष्ठान्तराला' नाम के दृढ़कला द्वारा संयुक्त हैं। अर्थात् साक्षात् रूपसे एक प्रकोष्ठास्थिसे दूसरी का स्पर्श नहीं होता।

मणिवन्धसन्धि।

मणिवन्धसन्धि[१]—यह खल्लकोर नाम की सन्धि है, जो कि वहिः-प्रकोष्ठास्थि के अधःप्रान्त में स्थित खल्लकोर भाग में 'अर्द्धचन्द्र' और 'नौनिभ' नाम की कूर्च्चास्थियों के मिलने से वनती है। अन्तःप्रकोष्ठास्थि का अधःप्रान्त साक्षात् कूर्च्चास्थियां से नहीं मिलता। इस की सन्धि त्रिकोण तरुणास्थि को वीच में रख कर 'उपलक' नाम की कूर्च्चास्थि से होती है।

मणिवन्ध को वांधने वाली चार स्नायु हैं। यथा—वहिःपार्श्विका, अन्तः-पार्श्विका, अग्रिमा और पश्चिमा। इनमें—

वहिःपार्श्विका—नामकी स्नायु वहिःप्रकोष्ठास्थि के 'वहिर्मणिक' प्रवर्धन से आरम्भ कर 'नौनिभ' और 'पर्य्याणक' नाम की कूर्च्चास्थियों के एवं 'कङ्कणिका'[२] नाम की स्नायु के पार्श्व तक लगी है।

अन्तःपार्श्विका—स्नायु रज्जु के आकार की है। यह अन्तःप्रकोष्ठास्थि के 'अन्तर्मणिक' प्रवर्धन से उत्पन्न हो कर उपलक और वर्त्तुलक नाम की कूर्च्चास्थियों के एवं कङ्कणिका नाम की स्नायु के दोनों पार्श्वों में लगी है।

१ Wrist-Joint. २ Annular Ligament of the wrist.

अग्रिमा—स्नायु फैली हुई पट्टी के आकार की है। यह प्रकोष्ठास्थियों के अधःप्रान्तों के सन्मुख पृष्ठ से उत्पन्न हो कर नौनिभ, अर्द्धचन्द्र और उपलक नाम की कूर्च्चास्थियों के सामने के तल तक बंधी हुई है।

पश्चिमा—स्नायु भी इसी भांति फैली है। यह केवल वहिःप्रकोष्ठास्थि के अधःप्रान्त के पृष्ठ से उत्पन्न हो कर नौनिभ, अर्द्ध चन्द्र और उपलक नाम की कूर्च्चास्थियों की पीठ पर लगती है।

५८ वां चित्र—मणिबन्ध सन्धि (सम्मुख भाग)

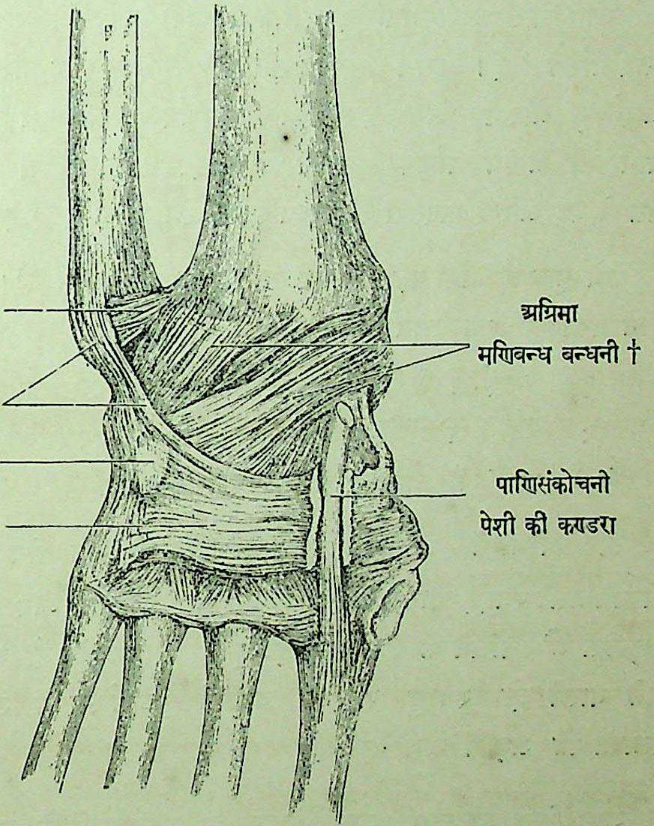

[† यह चिह्न स्नायुका वोधक है]

श्लेष्मधरा कला—मणिवन्धसन्धि की श्लेष्मधरा कला विशेष रूप से ढीली तथा प्रचुर श्लेषक श्लेष्मा से भरी है, जिस कारण से मणिवन्धसन्धि विशेष रूप से चल है।

चेष्टायें—इस सन्धिमें—आगे, पीछे, अन्दर और बाहर को ओर नानाप्रकार की चेष्टायें होती हैं। इस सन्धि की शिथिलता और स्थितिस्थापकता भार को धारण करने को सुगमता के लिये है।

करकूर्च्चान्तरीय[१] सन्धियां।

आठ करकूर्च्चास्थियां दो पंक्ति में खपी हुई हैं। प्रत्येक श्रेणी में चार चार अस्थियां हैं। इनमें से ऊपर की पंक्ति में स्थित चार अस्थियों में से नौनिभ, अर्द्धचन्द्र और उपलक—यह तीन अस्थि मणिवन्ध सन्धि में घुसी हैं। वर्त्तुलक नाम की अस्थि मणिवन्ध सन्धि से बाहर है। किसी किसी शारीरज्ञ के मत से यह अस्थि कण्डरा की मध्यस्थित चणकास्थि है, यह पहिले कह चुके।

इन कूर्च्चास्थियों की परस्पर सन्धि 'प्रतर' नामका है। इस की व्याख्या तीन प्रकार से की जाय गी। यथा—

(१) ऊर्द्ध श्रेणी में स्थित अस्थियों की परस्पर सन्धि,
(२) अधः श्रेणी में स्थित अस्थियों की परस्पर सन्धि,
(३) ऊर्द्ध और अधः श्रेणी की परस्पर सन्धि

ऊर्द्ध श्रेणी में—नौनिभ अर्द्धचन्द्र ओर उपलक—इन तीन अस्थियों को परस्पर मिलानेवाली स्नायु चार हैं। यथा—पुरोगा, पृष्ठगा, और दो कूर्च्चान्तरीया। वर्त्तुलक को बांधने के लिये एक पृथक् ही स्नायुकोष है, और उसके सामने जाने वाली दो स्नायु 'फणधर' नामकी कूर्च्चास्थि में तथा कनिष्ठा मूलशलाका की जड़ में लगी हुई हैं।

अधःश्रेणी को चारों कूर्च्चास्थियां पांच स्नायुवों के द्वारा परस्पर मिली हैं। इनमें से—आगे और पीछे की ओर दो स्नायु हैं, और कूर्च्चान्तरीया स्नायु तीन हैं।

---

१ Carpal Articulations.

ऊर्द्ध और अधः श्रेणी की कूर्चास्थियों को परस्पर मिलाने वाली चार स्नायु हैं। यथा—अग्रिमा, पश्चिमा, अन्तःपार्श्विका और वहिःपार्श्विका।

यह सब स्नायुजाल परस्पर के बीच में घुसे होने से कहीं घन स्वरूप और कहीं झरोंखे की भांति खुली हैं। इन स्नायुवों से सम्बद्ध सब कूर्च्चास्थियों को मिला कर एक 'शलाकाधिष्ठान' वनता है, यह संज्ञा की प्राचीनों है।

करतलसन्धियां।

करतल सन्धियां मुख्यरूप से करतल को वनानेवाली मूलशलाका ओं से वनती हैं, ये सन्धि 'कोर' नाम की हैं। इन को तीन स्थानों पर देखनी चाहिये। ऊपर में—पर्य्याणक, कूटक, मध्यकूट और फणधर नामक चार कूर्च्चास्थियों से।[1] नीचे में—अंगुलि पश्चिमनलकों से।[2] और मूलों में परस्पर।[3] इन के जुड़ने का प्रकार अस्थि खण्ड में देखिये।

करतल में सन्धि ओं को वांधने वाली स्नायु ऐसी हैं—एक स्नायु पर्य्याणक और अंगुष्ठमूलशलाका को वांधने वाली कोषरूपा है जिस में पृथक् श्लेष्मधरा कला रहती है। यह सन्धि 'परस्परकोर' नाम की है, यह कह चुके हैं। शेष स्नायु अन्य मूलशलाकाओं को कूर्च्चास्थियों से वांधने के लिये १६ हैं। यथा—छः पृष्ठगा, आठ पुरोगा और दो सन्ध्यन्तरीया।

इन सन्धियों में एक ही श्लेष्मधरा कला कनिष्ठादि चारों मूलशलाकाओं के मूल और कूर्च्चास्थियों के अन्तराल में फैली हुई हैं। वर्त्तुलक सन्धि में अलग श्लेष्मधरा कला रहती है। करांगुलियों के पश्चिम नलकों की सन्धियां अंगुलियों की और सन्धियों की भांति हैं।

मूलशलाका ओं की परस्पर सन्धियां अंगुष्ठ की शलाका को छोड़ कर अन्य मूलशलाकाओं के मूलों मे होती हैं। यहां पर जोड़ने वाली स्नायु तीन प्रकार की हैं—पूर्वगा, पृष्ठगा और शलाकान्तरीया। मूलशलाकाओं के अन्तरालों

---

१ Carpo-Metacarpal Articulations. २ Metacarpo-phalangeal Articulations. ३ Inter-Metacarpal Articulations.

में 'शलाकान्तरीया' नाम की दृढ़ स्नायु हैं। शलाकाओं के परस्पर स्पर्श न होने पर भी मूलशलाकाओं के अग्रभाग इन स्नायुवों से परस्पर दूर दूर बंधे रहते हैं।

करांगुलिसन्धियां।

करागुंलियों की सन्धियां[1] अगुंलीनलकों के चौदह होने से चौदह हैं—अर्थात् प्रत्येक अंगुली में तीन तीन और अंगूठे में दो सन्धियां हैं। ये सन्धियां 'कोर' नाम की हैं।

प्रत्येक अंगुली सन्धि में तीन ही स्नायु हैं—यथा पुरोगा, अन्तःपार्श्विका और वहिःपार्श्विका। यहां पर पृष्ठगा स्नायु पृथक् नहीं दीखती हैं—क्यों कि 'प्रसारणी' नाम की पेशियों की कण्डराओं से उनका प्रयोजन सिद्ध हो जाता है।

चेष्टायें—अंगुलियों की सङ्कोच, प्रसार, अन्तःकर्षण और बहिःकर्षण —ये चेष्टायें होती हैं और अंगुष्ठ के द्वारा इनके सिवाय मन्लजप भी किया जा सकता है।

निम्न शाखा की सन्धियां।

निम्नशाखा की सन्धियां प्रायः उर्द्ध शाखा की सन्धियों की भांति होती हैं। परन्तु कुछ विशेषतायें स्थान भेद से होते हैं। इन सन्धियों में प्रथम—

वंक्षण सन्धि।

वंक्षणसन्धि या वंक्षणोदूखल सन्धि—यह सन्धि तरुणास्थि-चक्र से मढ़े हुवे श्रोणिफलकस्थ वंक्षणोदूखल में ऊर्व्वस्थि मुण्ड के जुड़ने से बनती है। इस के अन्दर फैली हुई वड़ी श्लेष्मधरा कला है। यहां पर सन्धि को बांधनेवाला एक महान् स्नायुकोष है, जो कि वंक्षणोदूखल परिधि से उत्पन्न हो कर ऊर्व्वस्थि की ग्रीवा के चारों ओर तथा 'शिखरान्तराला' नामकी रेखाओं में बंधा हुवा है। यह स्नायुकोष श्रोणिफलक को बनाने वाली तीन अस्थियों से उत्पन्न तीन दृढ़ स्नायुरज्जुवों से मजबत किया गया है, यही इसमें विशेषता है।

---

१ Phalangeal Articulations.

[५६ वां चित्र—वंक्षणसन्धि]

(स्नायुकोष को काट कर दिखाई गई है)

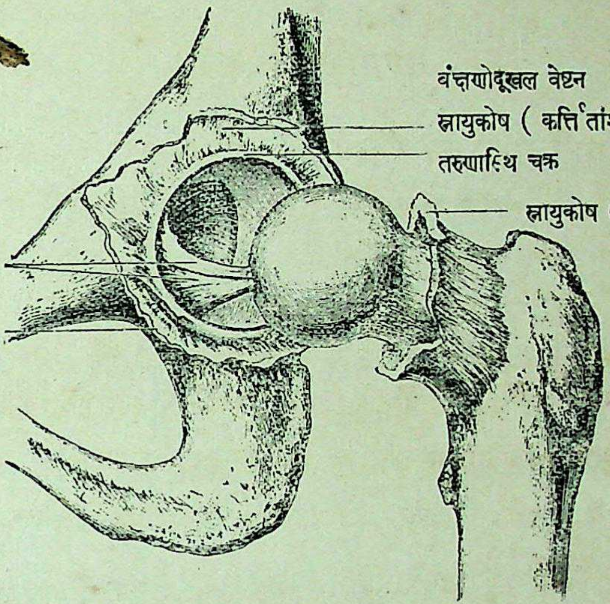

[* इन कर्त्तितांशों को मिलाने से एक ही स्नायुकोष बनता है जो वंक्षणसन्धि को ढांपता है]

यहां स्नायुकोष के अन्दर विशेषरूप देखने योग्य 'वंक्षणसन्ध्यन्तरीया'[१] नामकी दृढ़ स्नायुरज्जु है। यह वंक्षणोदूखल के मध्यवर्त्ती गम्भीर कोटर से उत्पन्न हो कर ऊर्व्वस्थिमुण्ड में स्थित गर्त्त में बंधी रह कर सन्धि को दृढ़ बनाती है।

जानुसन्धि

जानुसन्धि[२]—ऊरु, जानु और जङ्घास्थियों के जुड़ने से बना है। यह सन्धि बहुत प्रकार से बंधी होने पर भी चेष्टाशील है। यहां ऊरु और जङ्घास्थि के सन्धि के सामने जानुकपाल तिरता है, इस लिये यह 'प्रतर' नामकी सन्धि है। ऊरु और जङ्घास्थि की परस्पर सन्धि 'कोर' नाम की है। स्मरण रखना चाहिये कि अनुजङ्घास्थि जानुसन्धि में भाग नहीं लेती।

---

१ Ligamentum Teres. २ Knee-Joint.

३० वां चित्र—जानुसन्धि।

(नीचे से ऊपर काट कर दिखाई गई है)

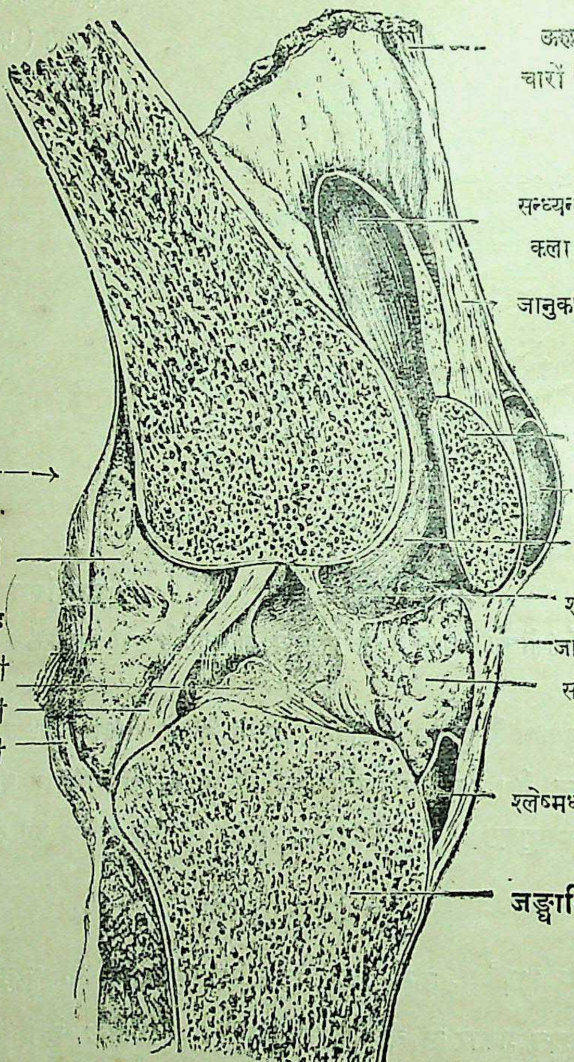

[† यह चिह्न स्नायु का द्योतक है]

ऊरु, जानु और जङ्घास्थि की यह सन्धि बडा और दृढ स्नायुकोष से ढांपी जाती है। इसको दृढ़ करने के लिये और भी चार स्नायु हैं, जो सन्धि के बाहर रहती हैं। यथा—

(१) पुरोगा—जानुकपालवन्धनी[1] नामकी स्नायु जानुकपाल की परिधि से उत्पन्न होती है। इसका निचला आधा भाग जङ्घास्थिके ऊर्ध्वप्रान्त के स[...] अर्बुद में लगा है। ऊपर का आधा भाग ऊपर को जाने वाली 'ऊरुप्रसारणी' [...]म की पेशियों को सम्मिलित कण्डरा से मिल जाती है और मिली हुई स्नायु स्नायुकोष के गात्र में बंधी रहती है।

(२) पश्चिमगा जानुपृष्ठिका[2] नामकी स्नायु ऊर्वस्थि के दोनों महार्बुदों के पश्चिम अन्तरालसे उत्पन्न हो कर 'कलाकल्पा' नामकी पेशी की कण्डरा के अन्तिम भागसे दृढ रूपसे बंधी है और जङ्घास्थि के ऊर्ध्वप्रान्त के पृष्ठ में लगी है। इसका एक अंश तिर्य्यग भावसे फैला है और धमन्यादि के निर्गम के लिये छिद्रयुक्त है।

(३) अन्तःपार्श्विका[3]—नामकी स्नायु ऊर्वस्थि के आन्तर महार्बुद के पार्श्व से उत्पन्न हो कर जङ्घास्थि के आन्तर उभार के पार्श्व तक लगती है।

(४) वहिःपार्श्विका[4] नामकी दो स्नायु (दीर्घा और ह्रस्वा) ऊर्वस्थि के वाह्य महार्बुद के पार्श्व से उठ कर जङ्घास्थि के ऊर्ध्वप्रान्त में लगती हैं।

इनके अतिरिक्त जानुसन्धि के अन्दर पांच स्नायु और योजनी रज्जु से बंधी हुई दो अर्द्धचन्द्राकार तरुणास्थियां[5] देखने में आती हैं। ये तरुणास्थियां जङ्घास्थि के शिर में स्थित द्विमुख कण्टक के साथ प्रान्तों में बंधी हैं।

[३१ वां चित्र—जानुसन्धि के अभ्यन्तर भाग]

(आगे से पीछे तक अनुप्रस्थ काटकर दिखाया हुआ)

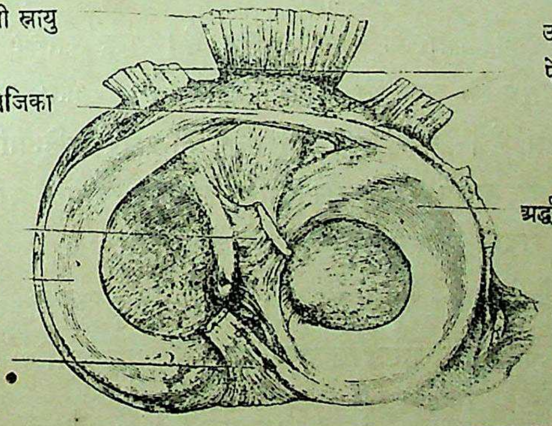

१ Ligamentum Patellæ. २ Popliteal Ligament & Lig. of Winslow. ३ Internal Lateral Lig. ४ External Lateral Lig. ५ Semilunar Cartilages.

पूर्वोक्त पांच स्नायु यथा—

जानुस्वस्तिका[1]—अग्रिमा और पश्चिमा नामकी दो स्नायु, जो जङ्घास्थि के शिर में स्थित द्विमुख कण्टक के समीप से उत्पन्न हो कर क्रमशः ऊर्वस्थि की बाह्य और आन्तर कन्द में बंधती हैं। और श्लेष्मधरकला वन्धनी तीन ... जिनमें से एक सामने जानेवाली त्रिकोणाकार है, और दो ... के आकार की हैं और पीछे से अर्द्धचन्द्राकार तरुणास्थियों के प्रान्तों में लगी हुई हैं।

जानुसन्धि में श्लेष्मधरकला दो प्रकार की हैं। प्रथम सन्ध्यन्तरीया, जो कि सन्धि के अन्दर ऊर्ध्वशाखावाली, विशाल एवं पूर्वोक्त तीन स्नायुवों से वंधी हुई है। और द्वितीय दो कलापुटक, जो कि सन्धि के वाहर हैं। इनमें से सन्धि के वाहर का एक कलापुटक त्वचा और जानुकपाल के वीच में स्थित 'त्वाच' नामक है। दूसरा जानुकपालवन्धनी स्नायुरज्जु की पीछे रहकर कण्डरा के साथ साथ जाता है। सन्धि के अन्दर आगे और पीछे श्लेष्मधरा कला से ढंपे हुवे दो मेदःपिण्ड भी देखना चाहिये।

चेष्टायें—जानुसन्धि की चेष्टायें दो प्रकार की हैं—सङ्कोच एवं प्रसार। इन में सङ्कोच पूरा होता है। परन्तु प्रसार दण्ड की भांति सीधे होने तक होता है।

जङ्घान्तरीय सन्धि।

जङ्घास्थि और अनुजङ्घास्थि की परस्पर सन्धि तीन स्थानों पर हैं—ऊपर, नीचे और मध्य में। इनमें—

उर्ध्वसन्धि[2]—यहां अनुजङ्घास्थि का ऊर्ध्वप्रान्त जङ्घास्थि के ऊर्ध्व प्रान्त में स्थित वाह्य उभार के साथ जुड़ता है। यह सन्धि 'प्रतर' नामकी है और जानुसन्धि से सर्व्वथा वाहर रहती है। अतः कूर्पर सन्धि से इस की विलक्षणता है। यहां पर जानुसन्धि के वाहर वहिःपार्श्विका नामकी दीर्घा और ह्रस्वा दो स्नायु हैं। इस सन्धि को दृढ़ वनाने वाली और भी तीन स्नायु हैं। यथा—अग्रिमा, पश्चिमा एवं कोषाकारा।

अधःसन्धि[3]—'कोर' नाम की है। यह जङ्घास्थि के अधःप्रान्त की वहिःसीमा में स्थित कोर और त्रिकोण प्रदेश में अनुजङ्घास्थि के वहिर्गुल्फ

---

१ Crucial Ligaments. २ Superior Tibio-fibular articulation. ३ Inferior Tibio-fibular articulation.

नामक अधःप्रान्त के मिलने से वनती है। यहां पर जोड़नेवाली स्नायु चार हैं। यथा—अग्रिमा, पश्चिमा, वलयिका और सन्ध्यन्तरीया। इस प्रकार जुड़ी हुई जङ्घास्थि एवं अनुजङ्घास्थि के साथ कूर्चशिर नाम की कूर्चास्थि मिलती है, जिससे गुल्फसन्धि या पादसन्धि वनती है।

मध्यसन्धि[1]—जङ्घास्थि और अनुजङ्घास्थि की मध्यसन्धि केवल दृढ़ कला द्वारा होती हैं, जिसको 'जङ्घान्तराला कला' कहते हैं। यहां अस्थियों का परस्पर स्पर्श नहीं होता है।

६२ वां चित्र—जंघास्थियां।

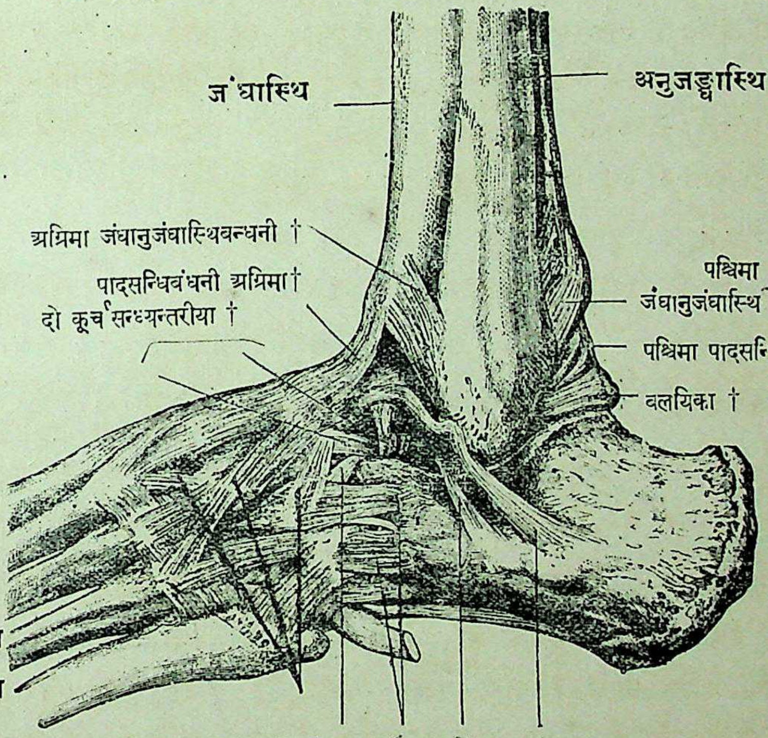

(† यह चिन्ह स्नायुवोधक है।)

गुल्फसन्धि।

गुल्फसन्धि या पादसन्धि[2]—यह खल्लकोर नामकी सन्धि है, जो कि जङ्घास्थि और अनुजङ्घास्थि के संयुक्त अधःप्रान्तों के साथ कूर्चशिर के

---

१ Middle Tibio-fibulor articulations. २ Ankle-Joint.

मिलने से बनती है। दोनों जङ्घास्थियों के अधःप्रान्त (गुल्फ) पर खल्लकोर स्थालक हैं, जिनके आश्रय से, कूर्चशिर को बीच में रखते हुवे पांव आगे, पीछे, अन्दर एवं बाहर की ओर घूमता और मुड़ता है। इस लिये इसको पादसन्धि भी कहते हैं।

गुल्फसन्धि को बांधनेवाली चार स्नायु हैं। यथा—

अग्रिमा[1]—जङ्घास्थि के अधः[illegible]कोर की सामने की स्नायु।

पश्चिमा[2]—इन्हीं की पश्चिम परिधियों में लगी पतली गुच्छी सी स्नायु।

अन्तःपार्श्विका अथवा **गुल्फत्रिकोणिका**[3]—जङ्घास्थि के अधःप्रान्तीय अन्तर्गुल्फ से उत्पन्न हो कर नौनिभ, कूर्चशिर और पार्ष्णि नामकी तीन कूर्चास्थियों की अन्तःसीमा में बंधी हुई स्नायु।

बहिःपार्श्विका[4]—अनुजङ्घास्थि के अधःप्रान्तीय बहिर्गुल्फ से उत्पन्न हो कर कूर्चशिर और पार्ष्णि नाम की कूर्चास्थियों की बाह्य सीमा में बंधी हुई स्नायु।

पादकूर्चान्तरीय सन्धि[5]।

पादकूर्चास्थियों के सन्धि प्रकार का वर्णन अस्थिखण्ड आ चुका है। एवं इनको जोड़नेवाली स्नायु अनेक हैं। इनके परस्पर के बीच में घुसे होने से दृढ़ भाव से पादकूर्चास्थियों को जोड़ने के कारण पादकूर्चास्थि समूह एक संघात सा दीखता है। इस कूर्चास्थिसंघ[6] को भी प्राचीनों ने (कर-कूर्चास्थि संघ के सदृश) 'शलाकाधिष्ठान' संज्ञा दी है।

इन स्नायुवों में मुख्य स्नायु ये हैं,—

(१) पार्ष्णि और कूर्चशिर को जोड़नेवाली तीन स्नायु यथा—अन्तःपार्श्विका, बहिःपार्श्विका और पश्चिमा।

(२) घन और पार्ष्णि को जोड़नेवाली चार स्नायु यथा—दो पादतलिका (दीर्घा और ह्रस्वा) और दो पादपृष्ठिका। इनमें से दीर्घा पादतलिका स्नायु दीर्घा पाद विवर्त्तनी नामकी पेशी की कण्डरा से मिलती है।

(३) नौनिभ और पार्ष्णि को जोड़नेवाली दो स्नायु—उत्तरा और अधरा।

---

१ Anterior Lig of Ankle-joint. २ Posterior Do ३ Internal Lateral or Deltoid Lig. ४ External Lateral Lig. ५ Tarsal Articulations. ६ Tarsus.

[६३ वां चित्र—पादतल सन्धि।]

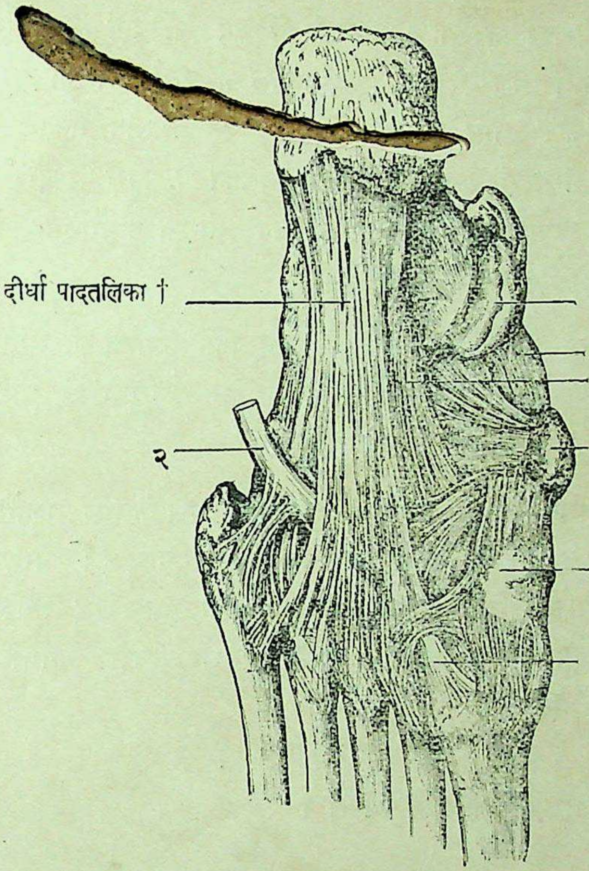

[† यह चिह्न स्नायुबोधक है]

[१ दीर्घा अंगुष्ठ संकोचनी पेशीको कण्डरा धारण करने की सीता।
२—२ दीर्घा पादविवर्त्तनी पेशी की कण्डरा]

(४) नौनिभ और कूर्च शिर को परस्पर बांधने वाली तीन स्नायु यथा—पादतलिका, पादपृष्ठगा और सन्ध्यन्तरीया।

(५) बहिःकोणक, मध्यकोणक और अन्तःकोणक—इन तीनों कूर्चास्थियों को परस्पर मिलाने वाली इसी भांति की तीन स्नायु।

(६) घन और बहिःकोणक को मिलाने वाली इसी भांति और तीन स्नायु।

पादतल सन्धियां।

पादतल के पश्चिम भाग को आश्रय कर के स्थित सन्धियों क[illegible]र्णन कूर्चान्तरीय सन्धि वर्णन में कह चुके हैं। पादतल के पर्व[illegible] के [illegible]ादमूल शलाकाओं की सन्धियां 'कोर' नाम [illegible] हैं। [illegible] सन्धि तीन प्रकार से होती है। यथा—सामने में पादांगुलियों के पश्चिम नलकों से, मूल पार्श्वों में परस्पर और पीछे तीन कोणकास्थियों से तथा 'घन' नामक कूर्चास्थि से। इनका सन्धि प्रकार पहिले लिखा जा चुका है।

सम्मुख भाग में पश्चिम नलकों की सन्धि अंगुलियों की सन्धि की भांति हैं। पीछे कूर्चास्थियों के साथ सन्धियां तीन प्रकार की स्नायुवों से बंधी हैं। यथा—पादतलगा, पादपृष्ठगा और सन्ध्यन्तरीया।

मूलशलाकाओं की परस्पर सन्धियां अंगुष्ठ को छोड़ कर औरों के मूल पार्श्वों-से होते हैं। यहां पर भी पूर्व को भांति तीन प्रकार की स्नायु हैं। परन्तु आगे में मूलशलाकाओं के मध्यवर्त्तिनी शलाकान्तरीया नामकी दृढ स्नायु अधिक हैं। यहां पर शलाकाओं के परस्पर स्पर्श न होने पर भी उनके अग्रभाग आपस में मिले से दिखाई देते हैं।

पादांगुलि सन्धियां।

पादांगुलि सन्धियां—हाथ की अंगुलियों की सन्धियों की भांति चौदह पादांगुलि नलकों में चौदह हैं। अर्थात् प्रत्येक अंगुली में तीन तीन और अंगुष्ठ में दो हैं। ये सन्धियां 'कोर' नाम की हैं।

यहां की स्नायु करांगुलि सन्धियों की स्नायुवों की भांति हैं।

चेष्टायें—पांव की अंगुलियों में किञ्चित् मात्र सङ्कोच, प्रसार, अन्तःकर्षण और बहिःकर्षण—ये चार प्रकार की चेष्टायें होती हैं। पांव के अंगूठे में हाथ के अंगुठे की भांति जप आदि कर्म्म करने का सामर्थ्य नहीं है।

सन्धि-स्नायुखण्ड समाप्त हुवा।

॥ प्रथम भाग समाप्त ॥

हिन्दी प्रत्यक्षशारीर

प्रथम भागका शुद्धिपत्र।

(पृष्ठ । पंक्ति)	(अशुद्ध)	(शुद्ध)
[illegible]	शरार	शरीर
१।५ [illegible]	उपायां	उपायों
३।२४ [illegible]	[illegible]	[illegible]
३।२४	कपाल	कपाल
४।३	स्थ ल	स्थूल
५।६	पार्श्वरसि	पार्श्वोरसि
५।१३	स्नायुर्भिड्ढीकृता:	स्नायुभिर्दृढीकृता:
५।१६	प्रचीन	प्राचीन
६।१४।२१	शब्दसे	शब्दका
७।३	स्रातांसि	स्रोतांसि
७।१६	रक्तमित्यभि	रक्तमित्यभि
७।१८	कहा लाता है	कह लाता है
७।२०	सर्वता	सर्वतो
८।२	जौकं	जोंक
८।७	सम्पूण	सम्पूर्ण
९।२	विभागां	विभागों
९।१४।२८	अग्नाशय	अग्न्याशय
१०।७	वणन	वर्णन
१०।२१	काय	कार्य
१०।२६	कण	कर्ण
११।८	भ्र	भ्रू
११।८	उध्वहनु	ऊर्ध्वहनु
११।२३	शिरा:स्थ	शिर:स्थ
१२।१०	सवावयवशो	सर्वावयवशो
१३।४	उपदान	उपादान
१३।२२	टटी	टूटी
१३।२७	जो	जिसके
१३।२९	धन	घन
१४।११	क्षाषि	क्षषि
२०।२०	क्रे	के
२३।६	यङ्घास्थि	जङ्घास्थि
२३।१७	ओर	और

(पृष्ठ । पंक्ति)	(अशुद्ध)	(शुद्ध)
२४।५	ओर	और
२४।२२	ऊरुपिण्डिका	ऊरुपिण्डिका
३२।४	अद्ध	अर्द्ध
३३।५	अन्त:प्रकाष्ठास्थि	अन्त:प्रकोष्ठास्थि
३३।२२	पाश्व	पार्श्व
३४।२१	असंाधरिका	अंसाधरिका
३६।७	वाह्यार्वंद	वाह्यार्वुद
३९।१३	प्रवधन	प्रवर्धन
४०।१४	चड़ावलया	चूड़ावलया
४४।३३	दखी	देखी
४५।१९	सम्पूण	सम्पूर्ण
४७।२	ओर	और
४८।२४	ऊरुसंव्यूहना	ऊरुसंव्यूहनी
५१।२	घमता है	घूमता है
५७।३१	गया	गयी
५८।२०	भवौ	भवौ
६६।२	भवों की	भ्रुवों की
६८।११	सान्धि	सन्धि
६८।१७	ओर	और
६८।२१	भवोंके	भ्रुवोंके
६९।१०	कणमूल	कर्णमूल
७०।९	पवत	पर्वत
७१।१०	वक्त्रनाड़ी	वक्रनाड़ी
७१।१७	स्पशमाव	स्पर्शमाव
७२।१२	झझगास्थि	झर्झरास्थि
७५।१२	झझरास्थि	झर्झरास्थि
७८।१	ऊध्वहन्वस्थियां	ऊर्ध्वहन्वस्थियां
८०।२०	योवनावस्था	यौवनावस्था
८१।३	अर्ध्यपाव	अर्घ्यपात
८१।१४	झझरका	झर्झरका
९१।१	अद्धचन्द्राकार	अर्द्धचन्द्राकार
९२।१९	ओर	ओर

(पृष्ठ । पंक्ति)	(अशुद्ध)	शुद्ध)
९२।२३	पाश्वसामन्त	पार्श्वसीमन्त
९४।१८	चकोर	चौकोर
९७।१	ऊध्वतल	ऊर्ध्व तल
९८।१	दीर्घिका	दीर्घिका
९८।६	नाड़िंयांकी	नाड़ियोंकी
९८।१४	शंखास्थियां से	शंखास्थियों से
९८।१७	चाक्षषी	चाक्षुषी
९९।१३	सुषुम्नाशीषक	सुषुम्नाशीर्षक
९९।१५	दोनां	दोनों
१००।१	सुषुम्नशीर्षक	सुषुम्नाशीर्षक
१००।१८	कगठःआदि	कगठआदि
१००।२१	आर	और
१००।२१	को	को
१०१।१८	दोनां	दोनों
१०१।१८	ऊध्व	ऊर्ध्व
१०४।९	मूल जतुका	मूल जतूका
१०५।१५	ऊध्व सीमा	ऊर्ध्व सीमा
१०७।५	पर्यिमार्वद	पर्यिमार्बुद
१०७।११	दशनीय	दर्शनीय
११०।३	गलपाश्वच्छदा	गलपार्श्वच्छदा
११०।५	धत्तर	धतूर
११०।२२	ओर	और
१११।४	ओर	और
११५।१	जतकास्थि	जतूकास्थि
११५।९	जतका	जतूका
११८।२१	घमता है	घूमता है
११८।२३	घमना	घूमना
११९।५	स्र्पश	स्पर्श
११९।१०	सन्धियांमे	सन्धियों में
११९।१८	होन पर	होने पर

(पृष्ठ । पंक्ति)	(अशुद्ध)	(शुद्ध)
१२०।३	ओर	और
१२०।१४	चेष्टाशिल	चेष्टाशील
१२१।४	जङ्घास्थियां के	जङ्घास्थियों के
१२२।१८	कहंगे	[illegible]
२२३।९	प्राचीनां के	प्राचीनों के
१२३।[illegible]	नाचे	नीचे
१२४।१	इनका	इनके
१२४।१८	चड़ावलया	चूड़ावलया
१२६।५	शेषाइं	शेषाई
१२६।१०	चड़ावलया	चूड़ावलयाः
१२७।४	ओर	और
१२७।१८	अनुलाम्बांश	अनुलम्बांश
१२७।१९	दन्तचड़ा के	दन्तचूड़ाके
१२८।२	ओर	और
१२८।१३	स्थितिस्थपकता	स्थितिस्थापकता
१३०।२०	कशेरुपिगडा	कशेरुपिगडों
१३२।१०	पशुका	पर्शुका
१३२।२१	उपपशुका	उपपर्शुका
१३४।१५	श्रणीचक्र	श्रोणीचक्र
१३६।१६	श्रणिगवाहिणी	श्रोणिगवाहिणी
१३७।२०	ऊध्वशाखा	ऊर्ध्व शाखा
१४०।९	ऊध्वप्रान्त	ऊर्ध्व प्रान्त
१४२।१३	प्रकाष्ठास्थि	प्रकोष्ठास्थि
१४४।१८	ओर	और
१४५।२	अन्तपाश्विका	अन्तःपार्श्विका
१४५।९	स्थानों	स्थानों
१४६।२५	मजवत	मजवत
१४९।९	इसाका	इसीका
१५०।२०	यह्वां	यहाँ
१५२।२	याव	पाँव

सटीक

सिद्धान्त-निदानम् ।

रोग-विज्ञान विषयक सचित्र नवीन संस्कृत ग्रन्थ।

माधव [illegible] आदि प्राचीन निदान ग्रन्थों में जिन विषयों का अभाव है, चरक, सुश्रुत आदि आ[illegible] विषयों की तथा वात-पित्त-कफ तत्व तथा रोगपरीक्षा प्रभृति अत्यवाश्यक विषयों की यथाशास्त्र सङ्कलन और परिवर्धन करके उनके ऋषिमतानुमोदित नवीन संस्कृत व्याख्या के साथ यह नया ग्रन्थ लिखा गया हैं। और भी, इसमें प्लेग, न्युमोनिया, टाइफयेड् ज्वर, सिफिलिस और गनोरिया (सुजाक) आदि रोगों का वर्णन विशेषरूप से किया गया है। यह ग्रन्थ भी तीन भाग में समाप्त हुआ है। पहला भाग प्रकाशित हो चुका है।

मूल्य प्रत्येक भाग २) दो रुपये। विद्यार्थियों से १॥) रुपया।

=ग्रन्थ प्रशंसा=

डाक्टर रडल्फ हर्नलि, एम-ए, पी-एच, डि, सी, आई, ई, महोदयका पत्र :—

"आपका प्रगाढ़ पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ 'प्रत्यक्षशारीर' विशेष प्रशंसा का योग्य है। आयुर्वेद का शारीरस्थान नष्टप्राय हो गया था, उसके पुनरुद्धार कार्य में आपने असाधारण बुद्धि और विद्वत्ता दिखलायी है। आपकी संस्कृत रचना प्राचीन संस्कृत रचना के तुल्य है" (अङ्गरेजीका अनुवाद)

सी, एच, टनी, एम-ए, पी-एच, डि, सी० आई० ई०

महाशयका पत्र :—

"आपने 'प्रत्यक्षशारीर' नामक महाग्रन्थ लिखकर देशका वड़ाही उपकार किया है। चिकित्सा के कार्य्य में बहुत कम अवकाश मिलने पर भी आप इतना वड़ा ग्रन्थ लिख सके हैं, इससे मुझे आश्चर्यान्वित होना पड़ा है। यथार्थ में आपने संसार में ज्ञान विज्ञान की नयी रोशनी फैलायी है।"

बंगालके पुरुषसिंह डाक्टर कर्नल सुरेश प्रसाद सर्वाधिकारी एम-डी, आइ, एम, एस, सी० आइ० ई० लिखते हैं---

"आपने आयुर्वेद के लिये जो कुछ उपकार किया है, वह दूसरे के लिये कठिन —वलिक असाध्य है। सहस्त्रों वर्ष के विलुप्त ज्ञान-गौरवका आपने उद्धार किया है। आपके ग्रन्थकी साफ रोशनी में संस्कृत साहित्य आज चमक उठा है। सभी स्वदेश-वासी आपका ग्रन्थ को दिखाकर अपने देशके पाण्डित्यपर गर्व कर सकते हैं।"

निखिल भारतीय पञ्चम वैद्य-सम्मेलन के सभापति प्राज्ञवर

डाक्टर कर्नेल के, आर, कीर्त्तिकर, आई, एम, एस,

महाशयका पत्र :—

"आपकी तीक्ष्णवुद्धि, प्रतिभा, पाण्डित्य और गंभीर गवेषणा देख [illegible] मुझे आश्चर्य हो रहा है। आपके ग्रन्थ से आयुर्वेद का एक [illegible] अभाव दूर हुआ है।"

वम्बई के प्रसिद्ध विद्वान् और श्रेष्ठ वैद्य और "आयुर्व्वेदीय ग्रन्थमाला"के तथा अनेक रसग्रन्थों के सम्पादक

निखिल भारतीय वैद्यसम्मेलन के सभापति

आयुर्वेदमार्त्तण्ड पं० यादवजी त्रिकमजी आचार्य्य

महाशय लिखते हैं :—

"कविराजजी के ग्रन्थसे वर्त्तमान समय के आयुर्वेद शास्त्र की वड़ी भारी त्रुटि पूर्ण हुई है। ऐसे कार्य्यको ठीक ठीक सम्पादन करने में इस समय सम्पूर्ण भारत खण्ड में एकमात्र श्रीयुक्त गणनाथ सेनजी ही समर्थ हैं; क्योंकि आयुर्वेदके विद्वान् जितने जहां है, वे लोग शारीरके विषयोंको प्रत्यक्ष नहीं देख चुके, और जो जहां वड़े वड़े डाक्टर हैं वे लोग आयुर्वेदके मर्म्मको नहीं जानते हैं और संस्कृत में ऐसे अपूर्व ग्रन्थ वनानेका सामर्थ्य भी उनमें नहीं है। कविराज श्रीयुक्त गणनाथ सेनजी डाक्टरी और आयुर्वेद—दोनों विद्याओं के मर्मज्ञ हैं और आपने शारीर तत्त्वोंको प्रत्यक्ष करके देखा है—अथच संस्कृत गद्य पद्य रचनामें भी आप विशेष निपुण हैं। * * * जव भारतवर्षमें "प्रत्यक्ष शारीर"के सदृश ग्रन्थोंका पठन पाठन प्रचलित हो जायगा,—तव ही आयुर्वेदका पुनरुद्धार होगा।" (संस्कृतका अनुवाद—आयुर्वेदीय ग्रन्थमाला—अप्रेल, १९१३)।

चम्पारन रत्नमालाके प्रसिद्ध विद्वान्

अनेक धर्म्मार्थ आयुर्वेदीय औषधालयोंके संस्थापक

चिकित्सकचूड़ामणि कविवर

पं० श्रीयुक्त चन्द्रशेखरधर मिश्रजी लिखते हैं—

"सचित्र शारीरका निर्माण कर आपने वर्त्तमान आयुर्वेद शास्त्रके एक प्रधान विकल अङ्ग को सुन्दर और सम्पूर्ण वनाया है, इस लिये समग्र वैद्यजगत् आपके पास चिर कृतज्ञ रहेगी।"

इसी प्रकार के अनेक प्रशंसापत्र और 'अभिनन्दनपत्र' मिले हैं।

"अभिनन्दन माला" संस्कृत मूल ग्रन्थ के साथ छपी है।